सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

|| सारस्वत श्रमण ||

पूर्वनाम	-	पं. अशोक कुमार जैन "शास्त्री"
जन्म	-	23.10.1976 को, प्रकाशित अमावश्या दीपावली
स्थान	-	किशनपुरा (सागर)
पिताश्री	-	श्रावक रत्न श्री लखमीचन्द्र जैन
माताश्री	-	श्राविका-रत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन
शिक्षा	-	इण्टर संस्कृत शास्त्री प्रथमवर्ष
धार्मिक शिक्षा	-	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान	-	श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि. जैन महाविद्यालय, मोराजी, सागर (म. प्र.)
वैराग्य	-	9 अक्टूबर 1994 को ब्रह्मचर्य व्रत लिया
क्षुल्लक दीक्षा	-	28 जनवरी 1996, देवेन्द्र नगर, पन्ना (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	-	23.02.1997, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
मुनि दीक्षा	-	14.12.1998, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
दीक्षागुरु	-	गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज
आचार्यपद	-	31 मार्च 2007, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष	-	जैन आगम रूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञा श्रमण की प्रवचन शैली जन-जन द्वारा हृदय-ग्राह्य है।
अलंकरण	-	'सारस्वत श्रमण' एवं 'सारस्वत कवि' जबलपुर में 2009
रुचि	-	पठन-पाठन, काव्य सृजन, चिंतन, मनन
कृतियां	-	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 55 कृतियों की सर्जना की गई है जो इसी पुस्तक में सूचीबद्ध है।

इष्टोपदेश शास्त्र

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

आचार्य पूज्यपाद् स्वामी रचित स्टोपदेश पर प्रवचन टीका

इष्टोपदेश शास्त्र

रचयिता

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

॥ सारस्वत श्रमण ॥

पूर्वनाम	-	पं. अशोक कुमार जैन ''शास्त्री'
जन्म	-	23.10.1976 को, प्रकाशित अमावश्या दीपावली
स्थान	-	किशनपुरा (सागर)
पिताश्री	-	श्रावक रत्न श्री लखमीचन्द्र जैन
माताश्री	-	श्राविका-रत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन
शिक्षा	-	इण्टर संस्कृत शास्त्री प्रथमवर्ष
धार्मिक शिक्षा	-	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान	-	श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि. जैन महाविद्यालय, मोराजी, सागर (म. प्र.)
वैराग्य	-	9 अक्टूबर 1994 को ब्रह्मचर्य व्रत लिया
क्षुल्लक दीक्षा	-	28 जनवरी 1996, देवेन्द्र नगर, पन्ना (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	-	23.02.1997, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
मुनि दीक्षा	-	14.12.1998, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
दीक्षागुरु	-	गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज
आचार्यपद	-	31 मार्च 2007, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष	-	जैन आगम रूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञा श्रमण की प्रवचन शैली जन-जन द्वारा हृदय-ग्राह्य है।
अलंकरण	-	'सारस्वत श्रमण' एवं 'सारस्वत कवि' जबलपुर में 2009
रुचि	-	पठन-पाठन, काव्य सृजन, चिंतन, मनन
कृतियां	-	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 55 कृतियों की सर्जना की गई है जो इसी पुस्तक में सूचीबद्ध है।

इष्टोपदेश शास्त्र
सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

आचार्य पूज्यपाद स्वामी रचित स्टोपदेश पर प्रवचन टीका

इष्टोपदेश शास्त्र

रचयिता

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

|| सारस्वत श्रमण ||

पूर्वनाम	-	पं. अशोक कुमार जैन ''शास्त्री'
जन्म	-	23.10.1976 को, प्रकाशित अमावश्या दीपावली
स्थान	-	किशनपुरा (सागर)
पिताश्री	-	श्रावक रत्न श्री लखमीचन्द्र जैन
माताश्री	-	श्राविका-रत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन
शिक्षा	-	इण्टर संस्कृत शास्त्री प्रथमवर्ष
धार्मिक शिक्षा	-	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान	-	श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि. जैन महाविद्यालय, मोराजी, सागर (म. प्र.)
वैराग्य	-	9 अक्टूबर 1994 को ब्रह्मचर्य व्रत लिया
क्षुल्लक दीक्षा	-	28 जनवरी 1996, देवेन्द्र नगर, पन्ना (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	-	23.02.1997, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
मुनि दीक्षा	-	14.12.1998, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
दीक्षागुरु	-	गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज
आचार्यपद	-	31 मार्च 2007, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष	-	जैन आगम रूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञा श्रमण की प्रवचन शैली जन-जन द्वारा हृदय-ग्राह्य है।
अलंकरण	-	'सारस्वत श्रमण' एवं 'सारस्वत कवि' जबलपुर में 2009
रुचि	-	पठन-पाठन, काव्य सृजन, चिंतन, मनन
कृतियां	-	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 55 कृतियों की सर्जना की गई है जो इसी पुस्तक में सूचीबद्ध है।

इष्टोपदेश शास्त्र
सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

आचार्य पूज्यपाद स्वामी रचित स्टोपदेश पर प्रवचन टीका

इष्टोपदेश शास्त्र

रचयिता

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी विरचित इष्टोपदेश ग्रन्थोपरि

श्रमणाचार्य विभवसागर कृत

प्रवचनात्मक टीका

इष्टोपदेश शास्त्र

प्रवचनकार

सारस्वत कवि, श्रमणाचार्य

श्री विभवसागर मुनिराज

ग्रन्थ	–	**इष्टोपदेश शास्त्र**
मूल लेखक	–	**आचार्य पूज्यपाद स्वामी**
आशीर्वाद	–	**प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज**
शुभाशीष	–	**पट्टाचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज**
प्रवचनकार	–	**प.पू. श्रमणाचार्य श्री विभवसागर जी महाराज**
सम्पादक	–	**श्रमण शुद्धात्म सागर जी**
आलेखन	–	**श्रमणी आर्यिकारत्न ओम्श्री माताजी**
पावन प्रसंग	–	**ग्रीष्म वाचना, 2019 इन्दौर**
प्राप्ति स्थान	–	**टी. के. वेद-9425154777**
		प्रतिपाल टोंग्या-इन्दौर (म.प्र.)
		9302106984, 9799245280, 6260834939
		आचार्य संघ
प्रवचन स्थल	–	**गुमास्ता नगर इन्दौर (म.प्र.)**
विमोचन प्रसंग	–	**पट्टाचार्य महोत्सव, सुमतिधाम, इन्दौर (म.प्र.)**
		विशेष जानकारी के लिये - VIBHAVSAGAR.IN
विमोचन	–	
संस्करण	–	**प्रथम**
प्रतियां	–	**1000**
भावमूल्य	–	**स्वाध्याय**

मुद्रक :
नवजीवन प्रिन्टर्स
'नवजीवन कॉम्पलेक्स' निवाई (टोंक-राज.) भारत
Ph. : 01438-222127, 9414348316
Email : navjeewan.jain@gmail.com

प्रस्तुति

—श्रमणाचार्य विभवसागर

भारतीय प्राच्य विधाओं में प्रारम्भ से ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विद्या आध्यात्मिक विद्या रही। यह विद्या आत्मशांति को अनुभूत कराने में आत्मनिष्ठ विद्या है। यह विद्या पूर्ण स्वाश्रित विद्या है। श्रमण संस्कृति में यह विद्या आत्मविद्या के नाम से जानी जाती है। प्रत्येक आत्मतत्त्व का जिज्ञासु सत्पुरुष इस विद्या का आश्रय लेकर आत्म तत्त्व का अन्वेषण एवं अनुभव कर चिरकालीन व्यथा को शांत कर आत्मोन्नति के महान मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

भेदविज्ञान मूलक यह विद्या तीर्थंकर आदि महान साधकों से उत्कृष्ट.सिद्ध होती है फलस्वरूप साधक शुक्ल ध्यान ध्याकर कैवल्य दशा एवं निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं।

अध्यात्मविद्या के अभाव में साधक कठिन परिषह एवं घोर उपसर्ग नहीं सह सकता। अतएव मार्ग से विचलित न होने के लिए तथा यथार्थ लक्ष्य पर अग्रसर रहते हुए मनुष्य जीवन में उत्कृष्ट आत्मीय आनंद की अनुभूति के लिए अध्यात्मविद्या अनिवार्य है।

श्रमण संस्कृति के उन्नायक आध्यात्मिक संत महानाचार्य श्री कुन्दकुन्द भगवान ने इस विद्या पर अपनी लेखनी चलाकर समयसारादि—अध्यात्मपरक ग्रन्थों का सृजन किया। पथानुगामी परवर्ती आचार्यों ने अपनी कलम चलाकर विभिन्न ग्रन्थों का प्रणयन किया।

उसी श्रेष्ठ परम्परा के दैदीप्यमान ध्रुव नक्षत्र आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश नामक अध्यात्मशास्त्र रचा।

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ जय जय जय नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु !! नमोऽस्तु !!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।1।।

अविरल-शब्दघनौघ, - प्रक्षालित-सकलभूतल मल कलङ्का।
मुनिभि-रुपासित-तीर्थान्, सरस्वती हरतु नो दुरितम्।।
अज्ञान-तिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः सकलकलुष विध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं भव्य-जीवमनः प्रतिबोध-कारकमिदं शास्त्रं श्री (ग्रन्थ का नाम) नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्त्तारः श्री गणधर-देवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसार मासाद्य श्री पूज्यपाद आचार्येण विरचितं, श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।
सर्व मङ्गल्य- माङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	श्लोक सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1	1	मंगलाचरण	15
2	2	निमित्तेपादान से सिद्धि	33
3	3	व्रतों की सार्थकता	36
4	4	शिवप्रद भावों से स्वर्ग सहज ही	44
5	5	स्वर्ग का सुख कैसा	52
6	6	इन्द्रिय सुख–दुःख भ्रान्ति मात्र	56
7	7	मोहावृत ज्ञान वस्तु–स्वरूप नही जानता	59
8	8	मोही पर पदार्थ को अपना मानता है।	65
9	9	संसार परिचय संसारी जीव का कुटुम्ब	70
10	10	अहितकर के प्रति क्रोध व्यर्थ	78
11	11	संसार में जीव किस कारण घूमता है।	82
12	12	संसार विपदाओं का घर	87
13	13	हर स्थिति में धन दुःखकर	90
14	14	अज्ञानी आपदा न देखता	94
15	15	लोभी को धन इष्ट है।	98
16	16	त्याग के लिए संग्रह उचित नही	102
17	17	हर स्थिति में भोग कष्टकर	108
18	18	अपवित्र शरीर की कामना व्यर्थ	110
19	19	उपकारक/अपकारक	113
20	20	विवेकी किसमें आदर करें	117
21	21	आत्मध्यान करने का उपाय	123
22	22	आत्मध्यान करने का उपाय	128
23	23	जो है उसी का दान	135
24	24	आत्म–ध्यान का फल	140
25	25	एकत्व में सम्बन्ध नहीं	145
26	26	बन्ध और मुक्ति के कारण	147
27	27	निर्ममता की सिद्धि योग्य विचार	149

क्र.सं.	श्लोक सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
28	28	सम्बन्धो को त्यागने की प्रेरणा	154
29	29	पौद्गलिक परिणति मेरी नहीं	161
30	30	ज्ञानी की अनासक्त बुद्धि	167
31	31	सभी अपना प्रभाव बढ़ाते हैं	175
32	32	आत्मोपकारी बनने का उपदेश	180
33	33	भेद विज्ञान का उपाय और फल	184
34	34	निजात्मा ही गुरु है।	190
35	35	निमित्त सहायक मात्र है	192
36	36	निजात्य चिन्तन कौन, कैसे?	196
37	37	आत्म संवत्ति की पहिचान	206
38	38	आत्म संवत्ति की पहिचान	206
39	39	अनुभूति बढ़ने पर विचार परिणति	215
40	40	योगी की निर्जन प्रियता	218
41	41	स्वरूप निष्ठ योगी की विशेषता	220
42	42	योगी की निर्विकल्प दशा	226
43	43	जो जहाँ रहे, वहाँ रम जाता	234
44	44	साम्यभावी योगी कर्मो से छूटता है	238
45	45	सुख दु:ख के आधार	241
46	46	पर के अनुराग का फल	246
47	47	स्वरूप निष्ठता	253
48	48	आनन्द का कार्य	257
49	49	मुमुक्षु क्या करे?	266
50	50	तत्त्व का सार	270
51	51	पाठन–पाठन का फल	272
52		परिशिष्ट	278
		1. भाग्य एवं पुरुषार्थ	
		2. पुण्य–पाप समीक्षा	278
53		इष्टोपदेश पाठ 1 श्लोक से 51 श्लोक	305
		परिशिष्ट–3	313

शास्त्र रचयिता परिचय

देवनन्दी अपर नाम पूज्यपाद

पूज्यपाद आचार्य महान पुरुष हुए हैं – जिन्होंने दिगम्बर जिनागम में प्रणीत सात तत्त्वों का विस्तारपूर्वक कथन किया है। उमास्वामी आचार्य ने संस्कृत में तत्त्वार्थ सूत्र नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें सात तत्त्वों का कथन किया है। उन संक्षेप सूत्रों के गूढ रहस्य को अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से समझकर उन सूत्रों के विशेष अर्थ का उल्लेख कर आपने मन्दबुद्धि वालों का उपकार किया है।

कवि, वैयाकरण और दार्शनिक इन तीनों व्यक्तियों को एकत्र समवाय देवनन्दी पूज्यपाद में पाया जाता है। आदिपुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन ने इन्हें कवियों में तीर्थकृत लिखा है।

कवीनां तीर्थकृद्देव: किं तरां तत्र वर्ण्यते।
विदुषां वाङ्मलध्वंसि, तीर्थं यस्य वचोमयम्।। अदिपुराण १/१२

जो कवियों में तीर्थंकर के समान थे, अर्थात् जिन्होंने कवियों का पथप्रदर्शन करने के लिए लक्षण ग्रन्थ की रचना की थी और जिनका वचनरूपी तीर्थ विद्वानों के शब्द सम्बन्ध ी दोषों को नष्ट करने वाला है, ऐसे उन देवेनंदि पूज्यपाद का वर्णन कौन कर सकता है।

ज्ञानार्णव के कर्ता आचार्य शुभचन्द्र ने इनकी प्रतिभा और वैशिष्ट का निरूपण करके इनका स्मरण किया है।

अपाकुर्वन्ति यद्वाच:, कायवाक्चित्तसम्भवम्।
कलङ्कमङ्किना सोऽयं, देवनन्दी नमस्यते। ज्ञानार्णव – १/१५/

जिनके वचन प्राणियों के शरीर, वचन और चित्त में उत्पन्न सभी प्रकार के दोषों को दूर करने में समर्थ हैं, उन देवनन्दी आचार्य को मैं नमस्कार करता हूँ।

आचार्य देवनन्दी का स्मरण हरिवंशपुराण में प्रथम जिनसेन ने किया है उन्हें लिखा है।

इन्द्र चन्द्रार्क जैनेन्द्र, व्यापि व्याकरणेक्षिण:।
देवस्य देववन्द्यस्य, न वन्द्यन्ते गिर: कथम्।।

जो इन्द्र, चन्द्र, सूर्य जैनेन्द्र व्याकरण का अवलोकन करने वाली है, ऐसी देववन्द्य देवनन्दि आचार्य की वाणी वन्दनीय क्यों नहीं हैं? अवश्य है।

इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य देवनन्दी प्रसिद्ध वैयाकरण और दार्शनिक विद्वान् थे और विद्वन्मान्य थे।

नम: श्रीपूज्यपादाय, लक्षणं यदुपक्रमम्।
यदेवात्र तदन्यत्र, यत्रास्ति न तत्क्वचित्।।

जिन्होंने लक्षणशास्त्र की रचना की है, मैं उन आचार्य पूज्यपाद् को प्रणाम करता हूँ। उनके इस लक्षणशास्त्र की महत्ता इसी से स्पष्ट है कि जो इसमें है वह अन्यत्र भी है। और जो इसमें नहीं है, वह अन्यत्र भी नहीं है। धनंजय नाममाला में धनंजय कवि ने पूज्यपाद के लक्षणशास्त्र को अद्वितीय बताया है –

प्रमाणमकलंकस्य, पूज्यपादस्य लक्षणं।
द्विसन्धानकवे: काव्यं, रत्नत्रयमपश्चिमं।।

अकलंकदेव का प्रमाण, पूज्यपाद का लक्षण और द्विसंधान कवि का काव्य – ये अति उत्तम तीन रत्न हैं। उनके साहित्य की स्तुति धनञ्जय, वादिराज आदि। अनेक विद्वानों वा आचार्यों ने भी की है तथा पूज्यपाद् की ज्ञानगरिमा और महत्ता का उल्लेख उक्त स्तुतियों में विस्तृत रूप में आया है। उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है।

पूज्यपाद् द्वारा रचित निम्नलिखित रचनाऐं उपलब्ध हैं –

1. दश भक्ति :– सिद्ध भक्ति, श्रुत भक्ति, चारित्र भक्ति, योगि भक्ति, आचार्य भक्ति, नन्दीश्वर भक्ति और चैत्य भक्ति ये दश भक्तियाँ लिखी हैं। सिद्ध भक्ति में नौ पद्य हैं। उनमें सर्वप्रथम सिद्धों के स्वरूप का कथन करके सिद्धों को नमस्कार किया है और सिद्धि का अर्थ है – स्वात्मोपलब्धि, उसकी प्राप्ति सिद्धों की भक्ति से ही होती है। अन्यथा नहीं–ऐसा कहा है। दूसरे पद्य में नौ अधिकारों में जीव के स्वरूप का कथन करके बौद्ध, नैयायिक, सांख्य आदि के द्वारा कथित सिद्धों (मोक्ष) के स्वरूप का खण्डन कर जैन दर्शन के अनुसार मोक्ष के स्वरूप का कथन किया है। अन्य भक्तियों में उनके नामानुसार ही वर्णन है। काव्य की दृष्टि से ये भक्तियाँ बड़ी ही सरस और गंभीर हैं।

इष्टोपदेश – आचार्य श्री पूज्यपाद देव रचित अध्यात्म प्रधान लघु रचना है, मात्र इक्वावन श्लोक में निबद्ध हैं, भाव प्रमेय अनंत है। आत्म साधकों के लिए प्रतिदिन पठनीय अनुकरणीय अध्यात्म प्रवेशिका एवं श्रेष्ठ मोक्षमार्ग दर्शिका इसी कृति का आचार्य विभवसागर जी महाराज ने 2019, मई माह में इन्दौर नगर में अध्यात्म वाचना का आधार ग्रन्थ बनाया प्रस्तुत है वही इष्टोपदेश प्रवचन टीका शास्त्र।

—————

इष्टोपदेश वाचना

(शास्त्रारंभ)

प्रिय आत्मन् !

श्री तीर्थंकर भगवान की त्रिलोक हितकारिणी समवशरण सभा में निःसृत, आत्म–कल्याणकारिणी, परम पवित्र देशना, पूर्वाचार्यों के क्रम से पूज्यपाद जी को प्राप्त हुई। पूज्यपाद जी ने अन्य जीवों के हित के लिए उपदेश दिया। यह ग्रंथ इष्टोपदेश है। जगत में तीन तरह के देव होते हैं और जीव तीन तरह के देव को मानते हैं। आपने सुना कुल देवता, इष्ट देवता, अधिकृत देवता। पंचस्तिकाय की टीका में आचार्य भगवन् ने लिखा कुल देवता, इष्ट देवता, अधिकृत देवता। उसी तरह उपदेश भी तीन तरह का होता है। कुल उपदेश, इष्टोपदोश, अधिकार उपदेश (प्रसंग उपदेश)। आचार्य कहते हैं – कुल का उपदेश आप देने में कुशल हो, कुल की व्यवस्था कैस चले? वह देने में श्रावक कुशल है, ''**परस्परं आचरन्तः** अमृतचन्द्र आचार्य लिखते हैं–प्रत्येक जीव अपने–अपने घर में आचार्य है। कुंदकुंद आचार्य भगवन ने समयसार में लिखा कि श्रुत, परिचित, अनुभूत, काम, भोग, बंध की कथा में तो प्रत्येक जीव आचार्य हैं इसलिए कुल का उपदेश इसमें नहीं दिया। फिर प्रसंगानुसार उपदेश नहीं दिया। ये इष्ट का उपदेश है। वीतराग देव हमारे इष्ट देव हैं। इष्ट देव के द्वारा दिया गया उपदेश इष्टोपदेश है। हमारे इष्ट के लिए किया गया उपदेश, इष्टोपदेश है। जो पूज्यपाद आचार्य भगवन् के लिए इष्ट अनुभव हुआ, वह उपदेश दिया, इसलिए भी इष्टोपदेश है। ग्रंथ का जो नामकरण है, बड़ा प्यारा है–इष्टोपदेश। वीतराग देव, इष्ट देव हैं। इष्ट देव के द्वारा किया गया उपदेश इष्टोपदेश है। इष्ट कार्य हमारा क्या है? सिद्ध, निर्वाण पद की प्राप्ति, परमात्म पद की प्राप्ति जिस उपदेश से होती है, वह उपदेश इष्टोपदेश है। ये प्रश्न है इस ग्रंथ का नाम इष्टोपदेश ही क्यों रखा? हमारे लिए इष्ट क्या है? सिद्ध स्वरूप, निज स्वभाव को प्रकट करना हमारे लिए इष्ट है। उस स्वभाव को प्रकट कराने वाला उपदेश इष्टोपदेश है। इसमें 51 कारिका हैं। कहीं से भी कोई कारिका आपका अनिष्ट नहीं कर सकती। तत्त्वार्थ सूत्रकार ने लिखा–

मिथ्योप–देश–रहोभ्याख्यान–कूटलेखक्रिया–न्यासापहार–साकार–मंत्र भेदा:॥ 7/26 तत्त्वार्थसूत्र में ये सत्याणुव्रत के अतिचार हैं। जो सत्याणुव्रत में लगाते अतिचार हों, ओ कार्य आचार्य उद्‌बोध नहीं कर सकते, इसलिए मिथ्या उपदेश नहीं है, इसमें रहोभ्याख्यान नहीं है, कूटलेखक्रिया नहीं है, जो अनिष्ट कर सकता है, वह उपदेश इसमें है ही नहीं। जो सिर्फ आत्मा का कल्याण कर सके, वही उपदेश है।

महानुभाव ! आप बाजार से औषधि लेते हैं, उस औषधि में ऐसी सम्भावना है, कि लगाने वाली औषधि यदि कोई खा ले तो नुकसान हो जाए, भैया! घुटने में लगाने वाली औषधि है, उसको किसी ने खा लिया तो अनिष्ट हो जायेगा। क्या करते हो? बच्चों की पकड़ से दूर रखते, क्योंकि उसमें अनिष्टपना है। लेकिन इसमें कहीं भी अनिष्टपना नहीं है, इसको आप बच्चों की पकड़ से दूर नहीं रखना। ध्यान देना। कहीं औषधि पर लिखा रहता, ये एविल गोली है। 25mg, 50mg,100mg, किसके लिए, कितनी मात्रा में देना? लेकिन यहाँ पर ये उतना ही है, तो सबको एक समान रूप में दिया जा सकता है। कुछ औषधि ऐसी होती है, जो सबको समान रूप में दी जा सकती है। जैसे त्रिफला। तो ये उपदेश ऐसा है, कि यही तिर्यंचों, ये मनुष्यों के लिए भी काम आयेगा, ये देवों के लिए भी है और यदि नारकी जीव भी सुनले, तो उसके लिए भी है। क्यों? चतुर्गति के जीवों के लिए, उपदेश है। चतुर्गति के जीव अपना इष्ट चाहते हैं, कल्याण चाहते हैं और ये उपदेश चतुर्गति के जीवों के कल्याण के लिए है। तीर्थंकर भगवान का उपदेश, इष्टोपदेश है। भगवान का समवशरण लगा। बारह सभाओं में जीव विराजे, असंख्यात जीवों ने देशना को सुना, उसके बाद कैसा अनुभव किया? अच्छा अनुभव किया। कैसा उपदेश रहा? इष्टोपदेश रहा। कैसा उपदेश रहा? इष्ट रहा। इसलिए आचार्य भगवन् ने कहा – उपदेश औषधि की तरह होता है। वैद्यजी की औषधि होती है, कुछ औषधि ऐसी होती, आयुर्वेदिक में, की फायदा नहीं करेगी, तो नुकसान भी नहीं करेगी। त्रिफला, आज से लेकर जीवनपर्यंत तक भी लेते रहो तब भी नुकसान नहीं करेगा, फायदा ही करता जायेगा। हर्र, बहेरा, आँवला तीन फलों का समूह त्रिफला है। तो ये औषधि है, प्रतिदिन व्यक्ति जितना–जितना त्रिफला को खाता जाए, वह उतना–उतना स्वस्थ बलवान होता जाये। उसी तरह जिनवाणी है। प्रतिदिन–प्रतिदिन

त्रिफला एक ही है, अब कोई सोचे जो त्रिफला कल खाया था, उसी त्रिफला को खाने को वैद्यजी आज क्यों बता रहे? कल जो खाया था वह आपके अंदर जो शक्ति दे रहा था, आज का त्रिफला अपूर्व शक्ति प्रदान करेगा कल की अपेक्षा आज कुछ अपूर्व होगा। उसी तरह णमोकार मंत्र आपने एक बार पढ़ा, द्वितीय बार के णमोकार मंत्र मे कुछ अपूर्व होगा। परीक्षामुख में लिखा है–

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् (1)

जो अपूर्व अर्थ का निर्णय कराये, तो प्रत्येक समय आप णमोकार मंत्र भी पढ़ेंगे, तो आत्मा में, अपूर्व–अपूर्व अभूतपूर्व विशुद्धि जागृत होती है। इसलिए आचार्य भगवान् कहते हैं– ये इष्टोपदेश बारम्बार अभ्यास के लिए है। देखों दवाई की गोली छोटी सी, पुड़िया छोटी सी, लेकिन खाना रोज है, प्रतिदिन खाना है। इसी तरह इष्टोपदेश छोटा है, लेकिन इसका अभ्यास रोज करना। अब कल्पना करो, दवाई छोटी हो, व्यक्ति एक ही दिन खाके रह जाये, तो क्या वह दवा, अपना पूरा फायदा दे पायेगी? इसी तरह छोटा समझ के, जीव पन्द्रह मिनिट में पढ़ ले, छोड़ दे, तो ये क्या फायदा पहुँचायेगा? इस ग्रंथ का महत्त्व समझ में आ जाये, छोटी सी गोली में अनेक वृक्षों का रस तत्त्व, अनेक वनस्पतियों का रस तत्त्व समाया होता है, उसी तरह छोटे से लघु ग्रंथ में द्वादशांग का सार समाया हुआ है, जिनवाणी का सार समाया हुआ है।

प्रिय बंधुओ!

आध्यात्मिक संत आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के सकल अध्यात्म शास्त्रों, अध्यात्म सूत्रों को, आगम रहस्यों को आत्मसात करके आचार्य भगवंत श्री पूज्यपाद अपर नाम जिनेन्द्र बुद्धि अपर नाम देवनंदी जी स्वामी ने मन शुद्धि के लिए संक्षेप बुद्धि वालों के लिए अध्यात्म भाषा में दो ग्रन्थ लिखे पहला–इष्टोपदेश दूसरा–समाधि तंत्र।

इष्टोपदेश शब्द परिमाण में अल्पतम किंतु भाव प्रमेय की अपेक्षा अनंतता को प्राप्त है। परमार्थ प्रदायिनी सर्वोषधि संजीवनी समाहित उपदेश दवा है। इसमें आचार्य कुन्दकुन्द रूप कल्पवृक्ष के पुष्प फलों का रस, रसायन भरा हुआ है। अतः आत्म पिपासुओं, जिज्ञासुओं के लिए इष्टोपदेश प्रातः स्मरणीय आदरणीय लघूत्तम, श्रेष्ठतम, सरलतम, कृति है।

प्रथम श्लोक प्रस्तुत है – मंगलाचरण

यस्य स्वयं स्वभावाप्ति, रभावे कृत्स्न कर्मणः।
तस्मै संज्ञान रूपाय, नमोस्तु परमात्मने।।

सम्पूर्ण कर्मों के अभाव होने पर, जिन्हें अपने आप स्वभाव प्रकट हुआ, उन सम्यग्ज्ञान स्वरूप परमात्मा के लिए मेरा नमस्कार हो।

तत्त्वार्थ सूत्र में – आ. उमा स्वामी ने मोक्ष का स्वरूप दर्शाया –

।। कृत्स्न कर्म विप्रमोक्षो मोक्षः।। त.सू.10

आत्म स्वभाव की प्रकटता अपने भीतर से हुई यह स्वात्मोपलब्धि है। यह स्वभाव सदा से शक्ति रूप में विद्यमान था, परन्तु स्वभाव कर्मों से ढका था, कर्मों के हटते ही स्वभाव प्रकट, परमात्म दशा प्रकट हो गई।

स्वभाव का प्रकट होना निज परमात्मा का प्रकट होना है। जैसे-माटी हटने पर पानी प्रकट हो गया।

प्रिय आत्मन्! यस्य शब्द षष्ठी एकवचन सर्वनाम है। जो स्वामी संबंध को दर्शा रहा है; कि स्वभाव के स्वामी परमात्मा। अधूरे नहीं पूरे स्वभाव के। पर नहीं, निज भाव के।

प्रश्न- पहले कर्म अभाव हुआ कि स्वभाव प्रकट हुआ?

समाधान- पहले कर्म अभाव होने पर पश्चात् स्वभाव प्रकट हुआ।

कर्म नाश के लिए साधना की जाती स्वभाव तो प्रकट हो जाता है। पहले गुणस्थान में दर्शन मोह का क्षय करके चतुर्थ गुणस्थान में क्षायिक सम्यक्त्व स्वभाव प्रकट हो आया।

परीक्षा के बाद परीक्षा परिणाम आया कर्मनाश के बाद स्वभाव जगा। कौन सा? ज्ञान स्वभाव जगा! केवलज्ञान रूप संज्ञान है।

।। सर्वद्रव्यपर्यायेषुकेवलस्य।।

केवलज्ञान का विषय सर्वद्रव्य की सर्वपर्यायों में है।

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावश्चिदचितः।
समं भान्ति ध्रौणंय व्ययजनि लसंतो अंत रहिताः।।
जगत् साक्षी मार्ग प्रकटन परो भानुरिवयो।
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।

जिनकी चेतनारूपी दर्पण में समस्त चेतन-अचेतन पदार्थ प्रत्यक्ष झल है। ऐसा विशद अर्थात् ज्ञान रत्न के धनी हैं। सूरज के समान प्रकाश पुंज हैं। वह भगवान महावीर स्वामी मेरे नयनों के पथगामी होवें।

संज्ञान रूप वह परमात्मा सर्वज्ञ कहाता है –

सर्वज्ञ का स्वरूप प्रतिक्रमण शास्त्र में कहा –

यः सर्वाणि चराचराणिविधिवद्, द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूत भावि भवितः, सर्वान् सदा सर्वदा।।
जानीते युगपद् प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः।।1।।

जो त्रिकालवर्ती चेतन-अचेतन द्रव्यों तथा उनके गुणों को एवं पर्यायों को भी सदा प्रतिक्षण एक साथ जानता है वह सर्वज्ञ कहलाता है। उन सर्वज्ञ वीर के लिए में नमस्कार करता हूँ।

ऐसे जिनेन्द्र हमारे मोक्ष मार्ग के नेता हैं – पथ दृष्टा हितोपदेष्टा हैं –

तुम्हें छोड़कर अन्य न कोई, शिवपुर पथ बतलाता है।
किन्तु विपर्यय मार्ग बताकर, भव-भव में भटकाता है।।
तुम्हीं आद्य, अक्षय, अनन्त हो, एकानेक तथा योगीश।
ब्रह्मा, ईश्वर या जगदीश्वर, विदित योग मुनीनाथ मुनीश।।

एकीभाव स्तोत्र में-इसी भाव को दिखाते हैं –

प्रच्छन्नः खल्वयमघमयै रन्धकारैः समन्तात्।
पन्था मुक्तेः स्थपुटित पदः क्लेश गर्तै- रगाधैः।।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी।
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद् भारती रत्न दीपः।।
आ.वादिराज।।14।।

तीर्थंकर का तीर्थ किसके द्वारा चलेगा? वक्ता, श्रोता, आचरण कर्ता, आपको दो जिम्मेदारी श्रोता और आचरण कर्ता। श्रोता भी आपको बनना है, और आप में से ही कोई, आचरण कर्ता बनेगा, साधु संत कहाँ से आते? इसी समाज में से निकल के आते हैं, हर व्यक्ति संत तो नहीं बन सकता, तो जितना आचरण कर सके, रात्रि भोजन का त्याग हैं, प्रतिमा का धारण हैं, अथवा अपनी-अपनी योग्यता के अनुरूप जो आचरण हैं, वहाँ से हम आचरण की शुरुआत करते हैं! तो क्या चलता हैं? धर्म का तीर्थ चलता है। तीर्थ माने जिनवाणी! ये है, जिनवाणी – जिनवाणी में लिखी हैं, आचरण की बात। तो उस आचरण की बात को प्रयोग कौन करेंगा? श्रोता करेगा? तो तीर्थ चलेगा। ऐसे धर्म तीर्थ को चलाने के लिए, हम प्रथम कारिका लेते हैं :–

1

मंगलाचरण

यस्य स्वयं स्वभावाप्ति, रभावे कृत्स्न कर्मण:।
तस्मै संज्ञान रूपाय, नमोस्तु परमात्मने।।1।।

अन्वयार्थ – (**यस्य**) जिस भगवान् के (**कृत्स्नकर्मण:**) समस्त कर्मों का (**अभावे**) अभाव हो जाने पर (**स्वयं**) अपने आप (**स्वभावाप्ति:**) स्वभाव की प्राप्ति हो गयी है (**तस्मै**) उस (**संज्ञानरूपाय**) अनन्तज्ञान स्वरूप (**परमात्मने**) परमात्मा के लिए (**नम: अस्तु**) नमस्कार हो।

बोलो! नमोस्तु परमात्मने, परमात्मा के लिए नमस्कार हो, नमः नमस्कार (अस्तु) हो किसके लिए, परमात्मने चतुर्थी विभक्ति का एक वचन, परमात्मने, (परमात्मा के लिए नमस्कार हो।)

जैसे – अपन लिखते हैं, ''नमः वीतरागाय'' अब सिद्ध हो गया, नमोस्तु परमात्मा के लिए क्यों? हम जैसा होना चाहते हैं वैसा जो हो चुके हैं। उनके लिए नमस्कार! मैं परमात्मा होना चाहता हूँ! तुम परमात्मा हो चुके हो, इसलिए तुम्हें नमस्कार हो।

नमोस्तु परमात्मा, कैसे परमात्मा? **संज्ञान रूपाय – सम्यग्ज्ञान स्वरूप, केवलज्ञान स्वरूप, परमात्मा, ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्म मल, वर्जित सिद्ध महन्ता। ते हैं, निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनंता।** ज्ञान स्वरूपाय, ज्ञान ही जिनकी आत्मा है, शरीरी (आत्मा) शरीरी, जिसमें शरीर हो वह आत्मा, तो कैसा? ज्ञान स्वरूप, अंतिम पद क्या हैं?

कृत्स्न कर्मण: अभावे, त्रिविध कर्म मल वर्जित

तीन प्रकार के कर्म होते हैं :–

1. द्रव्य कर्म मल 2. भाव कर्म मल 3. नो कर्म मल

तीनों तरह के मल से रहित, कर्मों के अभाव हो जाने पर सप्तमी विभक्ति, अभाव हो जाने पर स्वभाव प्रकट हुआ है। स्वभाव पाया नहीं है, प्रकटाया है। दोनों में अंतर क्या होगा? पाया अथवा प्रकटाया? कोई व्यक्ति कहते पाया, कोई कहते प्रकटाया यहाँ पर क्या लिखा? प्रकटाया। भगवान् ने सुख नहीं पाया नहीं प्रकटाया है।

आप सुख पाना चाहते हो? कभी नहीं मिलेगा। पाने वाले को नहीं मिलता। मिलेगा भी तो छूट जायेगा, सुनो इसमें लिखा है, आप्ति आप्ति का मतलब है, प्रकटाया।

प्रकटाया और पाया दोनों में क्या अन्तर है? ऊपर पानी की टंकी है, नीचे पानी का कुआँ है, टंकी में पानी आया दिनभर यूज आया, शाम को खाली क्यों हो गया? टंकी ने पाया है, और कुएँ ने प्रकटाया है। जो प्रकटाता है, उसका स्थाई रहता है, इन्द्रियों से सुख पाया जाता है। संसार का सुख पाया जाता है और आत्मा का सुख प्रकटाया जाता हैं। दोनों में अंतर आ गया, गर्मी लग रही, पंखा चालू कर दो, क्या हुआ, लाइट चली गयी, क्या हुआ? सब छूट गया। पाया तो छूटा, लेकिन प्रकटाया तो स्थिर हो गया। क्योंकि आत्मा का सुख, आत्मा ने प्रकटाया इसलिए आत्म सुख प्रकटाया जाता है। और इन्द्रिय सुख पाया जाता है।

भोजन परोसना, जरा सा नमक डाल देना! क्या हुआ? सुख पाया जा रहा है, और नमक डालने वाले ने ज्यादा नमक डाल दिया तो, क्या हो गया? ये पाया था न, सो चला गया? जो सुख पाया जाता है, वह छूट जाता है, जो प्रकटाया जाता है, वह स्थिर हो जाता है।

सिद्धों ने सुख प्रकटाया है, अरिहंतों ने सुख प्रकटाया है, हम और आपने सुख पाया है, पाया सुख स्थिर रहने वाला नहीं है।

अभी आप रसगुल्ला खायेंगे आप को मीठा लगेगा। लेकिन आज रसगुल्ला रसगुल्ला ही खाओ, आप कुछ देर में थक जाओगे! दो, चार, छः, आठ कितने खा पाओगे? थक जाओगे! सुख पाया था, छूट जायेगा! लेकिन जब आप स्वाध्याय करते हो, सामायिक करते हो, ध्यान करते हैं। तो सुख भीतर से प्रकट होता है, जो भीतर से सुख प्रकट होता है, वह

सदा शाश्वत रहता है, स्थिर रहता है।

आज आप प्रवचन सुन रहे। आप को स्पर्शन इन्द्रिय का सुख मिल रहा क्या? रसना इन्द्रिय का सुख मिल रहा क्या? नहीं मिल रहा। घ्राण इन्द्रिय का सुख मिल रहा क्या? नहीं मिल रहा। चक्षु इन्द्रिय का सुख मिल रहा क्या? नहीं। कर्ण इन्द्रिय का सुख मिल रहा क्या? नहीं मिल रहा। क्योंकि हम से अच्छे गाने सुनाने वाले मुम्बई में बहुत हैं, और यदि आपको अच्छा लगता है, कर्ण इन्द्रिय का सुख है, तो मैं आप को और सुनाता हूँ।

यार ज्ञान, शक्ति कोटी, सूर्य रन्नू मीर दे,
मत्तु यार दिव्य ध्वनि लोक हित व माडिदे,
मोरु लोक दल्ली यार, कीर्ति व्याप्त वागि दे,
अंत देव, देव रल्ली, रन्नतले उवागि दे।।

अच्छा लगा। लेकिन समझ में आया क्या? तो कर्ण इन्द्रिय का सुख तो बना लेकिन आत्मा का सुख इससे प्रकट नहीं होगा। आत्मा का सुख तो, जब ज्ञान मैं आता तो प्रकट होता, जो ज्ञान मैं आया, भावश्रुत ज्ञान हुआ। सुना – द्रव्यश्रुत। समझा भावश्रुत। हमने दिया, अचेतन। तुमने प्रकटाया सो चेतन। समझ लिया सो चेतन। सुना सो अचेतन। शब्द पुद्गल हैं। पुद्गल को सुना, अचेतन को सुना। समझा सो चेतन। सुना सो द्रव्यश्रुत ज्ञान, समझा सो भाव श्रुत ज्ञान। भाव श्रुत ज्ञान, भावश्रुतज्ञान सुनने से नहीं मिलता!

भैया! कितनी ही अच्छी गाय ले लेना, लेकिन घी नहीं देगी। दही नहीं देगी। गाय दूध ही देगी, दही नहीं देगी। उसी तरह से, चाहे वह तीर्थंकर हों, चाहे वह विभव सागर हों, आप को द्रव्यश्रुत ज्ञान ही देंगे, भाव श्रुत ज्ञान तो स्वयं बनाना पड़ेगा। श्रद्धान बनाओगे, समझ बड़ाओगे, तो वही ज्ञान भावश्रुतज्ञान हो जाता है। वही दूध घी बन जाता है।

उसी तरह से द्रव्य श्रुतज्ञान, भावश्रुत ज्ञान बन जाता है। जब श्रद्धा के साथ हम अपना लेते हैं, तो भाव श्रुत ज्ञान हो जाता है। तो स्वभाव को पाया कि प्रकटाया? स्वभाव प्रकटाया जाता है।

''उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव भाव हैं,''

कौन से भाव हैं? स्व (आत्मा) ये आत्मा के भाव हैं। मेरी आत्मा के भाव हैं, तुम्हारी

आत्मा के भाव हैं, यही लिखे हैं, जो लिखा है, वह भीतर में प्रकट होना चाहिए! इन्होंने क्या किया? स्वयं स्वभाव को प्रकट किया है, सो परमात्मा हो गये। और हम क्या कर रहे? विभाव को प्रकट कर रहे हैं। इन्होंने स्वभाव को प्रकट किया सो परमात्मा। विभाव को प्रकट करे सो बहिरात्मा। प्रकट दोनों कर रहे हैं, जब तक विभाव है, तो बहिरात्मा, स्वभाव प्रकटा तो परमात्मा। स्वभाव को प्रकटाने कि साधना करने वाला अंतरात्मा। विभाव को मिटाने का प्रयत्न, स्वभाव को प्रकटाने का जो प्रयत्न कर रहा वह अंतरात्मा। विभाव में लीन बहिरात्मा, स्वभाव में लीन परमात्मा और दोंनो के बीच विभाव को मिटाने का, स्वभाव को प्रकटाने का जो प्रयत्न कर रहा वह अंतरात्मा! अपन कौन हैं?

भैया – अपने अंदर एक लक्ष्य है, कि हमें विभाव को मिटाना है, और स्वभाव को प्रकटाना हैं। अपन क्या हैं? अंतरात्मा! आज आपके लिए इतना तत्त्वज्ञान उपलब्ध हुआ है, ये विषय बहुत मंगलकारी है, अकेले, मुम्बई नहीं पूरे विश्व का कल्याण कराने वाला है, तो धर्म का तीर्थ कौन चलायेगा हम चलायेंगे – हम चलायेंगे।

हम वक्ता बनेंगे, श्रोता बनेंगे और आचरण कर्ता बनेंगे, अब अपने जीवन में, कभी ये प्रश्न नहीं आना चाहिए, कि हम सभा में नहीं जायेंगे तो क्या हो जायेगा? धर्म तीर्थ का लोप हो जायेगा।

महानुभाव!

आप धर्म तीर्थ का लोप करना चाहते हैं क्या? इतनी बड़ी धर्म हत्या स्वीकार नहीं करेंगे, कि धर्म तीर्थ का लोप हो जाये, इसी महामंगल भावना के साथ हम सभी मिलकर तीनों मिलकर के, धर्म तीर्थ को चलायेंगे, इसी शुभ संकल्प के साथ! इष्टोपदेश का मंगलाचरण हुआ।

ओम् नमः

❑❑❑

प्रिय आत्मन्!

इष्टोपदेश अध्यात्म की कुंजी है। स्वरूपानुसंधान के निर्देशक पूज्यपाद आचार्य द्वारा प्रणीत यह पावन शास्त्र है। मंगलाचरण हुआ, मंगल और आचरण, दो शब्दों से मिलकर मंगलाचरण बनता है। मंगल शब्द मं का अर्थ होता पाप, गल का अर्थ गलना, जो क्रिया, जो आचरण – जो अनुष्ठान, जो भाव पद्धति हमारे पापों को गला दे, उसे मंगलाचरण कहते हैं।

मानसिक मंगलाचरण, मन से होने वाला मंगल जैसे–हम मंत्र जाप करते हैं, मन ही मन में, शुभ चिंतन चलता रहता है। **वाचनिक मंगलाचरण,** स्तुति, स्तोत्र, पूजा, पाठ भक्तियाँ पढ़ते हैं ये हमारा वाचनिक मंगलाचरण है। हाथ जोड़ना, विनय, व्यवहार करना ये हमारा **कायिक मंगलाचरण** है।

तीन तरह का मंगलाचरण – मन से मानसिक, वचन से वाचनिक, काय से कायिक

जब हम काय से मंगल करते हैं तो हमारा काय योग शुभ होता है। वचन से मंगल करते हैं तो हमारा वचनयोग शुभ होता है। मन से मंगल करते हैं तो मन योग शुभ होता है।

शुभ योग से पुण्य कर्म का आस्रव होता है। अपन कितनी अच्छी पद्धति से चल रहे हैं। कायिक मंगलाचरण हाथ जोड़ा पधारिये, विराजिये, हाथ से संकेत। वचन से बोल रहे, मन कि प्रसन्नता चहरे पर झलक रही, मन कि प्रसन्नता चहरे पर झलकती है। पानी गरम होता है, तो भाप ऊपर उठती है। आत्मा की प्रसन्नता चहरे पर झलकती है। स्वागत में कायिक मंगलाचरण, तीर्थंकर का स्वागत, सर्वज्ञ का स्वागत, परमात्मा का अभिनंदन कायिक मंगलाचरण।

''वंदे तं सव्वदा सिरसा''

उच्चारण करना वाचनिक मंगलाचरण, भावना भाना मानसिक मंगलाचरण, ये तीनों मन, वचन काय, को शुभ बनाते हैं। हमारे शुभ से शुभ होता है और तीनों के शुभ होने पर उपयोग में निर्मलता आती है। भावनाओं में निर्मलता आती है। उपयोग हमारा शुभ हो जाता है।

और परमात्मा गुणों के स्मरण में, उच्चारण में, चिंतन में, उपयोग जाना शुभ उपयोग है। कुंदकुंद भगवान ने प्रवचन सार में शुभ उपयोग का लक्षण लिखा।

देव जदि गुरु पूजा सु, चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासा दिसु रत्तो, सुहोव ओगप्पगो अप्पा।।69।। (प्र.सा.)

देव पूजा, गुरु पूजा, साधु पूजा में उपयोग है, दान में जो उपयोग है, शील पालन में जो उपयोग है उपवास में जो उपयोग है ये आपका शुभ उपयोग है।

विसय कसाय ओगाढो, दुस्सुदि दुच्चित्त दुट्ठ गोट्ठि जुदो।
उग्गो उमग्गपरो, उवओगो जस्स सो असुहो।।158।।

और विषय कषाय आदि में जो उपयोग है, दुष्ट गोष्टी, उन्मार्ग में गमन, अशुभ उपयोग है। अशुभ उपयोग से हटना, शुभ उपयोग में लगना यही तपस्या है। पंचम काल में, तपस्या और कुछ नहीं है। अशुभ का संवर और शुभ में प्रवृत्ति

''असुहादो विणिवित्ति, सुहे पवित्ति जाण चारित्तं''

आप सभी स्वाध्याय में आये स्वाध्याय में आना ये आचरण है। क्यों? जब तक स्वाध्याय में रहोगे तब तक आप विषय कषायों से दूर रहोगे।

शुभ में आपकी प्रवृप्ति होगी। अशुभ से हट गये शुभ में जुट गये, ये क्या हो गया? मंगलाचरण!

शुभ , मंगल, क्षेम, कुशल, आनंद, लाभ, धर्म, पुण्य , ये सब एकार्थ वाची हैं। पूत, पवित्र, पावन – ये पर्यायवाची नाम हैं।

जो पापों को गलाये वह मंगल है। मंगल चार होते हैं। पांचों पाप जिससे गलन को प्राप्त हो जायें, झड़ जायें, निकल जायें, टूट जायें, रूठ जायें, खंडित हो जायें, मिट जायें, जायें, समाप्त हो जायें वह मंगलाचरण है। वस्तुतः हम पाप को नहीं मिटाना चाहते, हम तो सिर्फ दुख को दूर करना चाहते हैं। दुख का कारण पाप है इसलिए हमने पाप को हटाया है। कोई सोरगुल करे तो अपन कहते हैं उठके चले जाओ उस व्यक्ति को भगाना नहीं चाहते, उसके शोरगुल को हटाना चाहते हैं।

पाप का फल दुख है। पुण्य का फल सुख है। हमने किसको हटाया? पाप प्रवृत्ति जो, शोरगुल कर रहा था, उससे निवेदन कर लिया। पाप दुख पैदा कर रहा था, उससे निवेदन

कर लिया, जाओ। मंगलाचरण करने से पाप नष्ट हो जाता है।

दूसरा लक्षण क्या है? मंग (सुख) जो उत्कृष्ट सुख ल=लाये वह मंगल। मंग (सुख) ल (लाये)

''मंगम् सुखम् तल्लाति इति मंगलम्''

जो सुख को लाता है, वह मंगल कहलाता है। अब प्रश्न ये आया कि मंगल ही करना है तो संपूर्ण शास्त्र मंगल है अलग से आपने परमात्मा का नाम क्यों लिया? तो आचार्य विद्यानंदि कहते हैं–

श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः, प्रासादात् परमेष्ठिनः।
इत्याहुस्तद्गुण स्तोत्रं, शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः।।२।। आप्त परीक्षा

परमेष्ठी के प्रसाद से श्रेयोमार्ग, कल्याण की सम्यक् प्रकार से सिद्धि हो जाये, माँ प्रसन्न हो जाये तो पसंद का खाना मिल जाये। भैया। जब माता–पिता प्रसंन होते हैं तो तुम्हें लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति होती है। इसलिए शास्त्र के प्रारंभ में गुण स्मरण रूप मंगलाचरण मुनि श्रेष्ठों ने कहा।

और यदि सेठ प्रसन्न हो जाये तो तुम्हें पैसा दे देगा, राजा प्रसन्न हो जाये तो हाथी दे देगा। किन्तु आचार्य कहते हैं।

''परमेष्ठि प्रसन्नम् श्रेयोमार्ग प्रदानम्''

यदि परमेष्ठि प्रसन्न हो गये तो तुम्हें कल्याण का मार्ग मिल जायेगा। आत्म कल्याण का मार्ग परमेष्ठि कि प्रसन्नता से मिलता है। इसलिए कहा गुरु को नाराज नहीं करना चाहिए। क्यों?

भत्तीए जिणवराणं, रवीयदि जं पुव्वसंचियं कम्मं!

आइरिय पसाएण विज्झा मंता य सिज्झंति।। 571 मू. आ.

आचार्य की प्रसन्नता से विद्या और मंत्रो की सिद्धि होती है। **विद्या लाभोगुरुवशात्** = विद्या का लाभ गुरु की प्रसन्नता से होता है। इसलिए परमेष्ठि के प्रसाद से कल्याण सिद्ध होता है। गोम्मटसार में लिखा है लेकिन गुरु के उपदेश से व्यक्ति गलत भी समझले तब भी सम्यक् दृष्टि है। गुरु का उपदेश उसे जैसा मिला, स्वीकार किया। भाई परमेष्ठि कितने

हैं? चार। सुना लिया श्रद्धान कर लिया, सम्यक दृष्टि है। गुरु का प्रसाद मान रहा था, जब गुरु बोल रहे थे, तो गुरु का अभिप्राय था संसार में परमेष्ठि चार, शिष्य ने सुन लिया, परमेष्ठि चार ही होते हैं।

अब वह शिष्य सम्यक् दृष्टि है कि मिथ्या दृष्टि? तो सम्यक् दृष्टि है। क्योंकि उसने गुरु के उपदेश से सुना है। उसे गुरु पर विश्वास है। श्रद्धा है। परमेष्ठि के प्रसाद से, सम्यक् सिद्धि होती है।

इसलिए हम किसी भी कार्य को करने के पूर्व क्या करते हैं? मंगलाचरण करते हैं। वीतराग परमात्मा का स्मरण करते हैं। णमोकार महामंत्र का स्मरण करते हैं, उच्चारण करते हैं। जब हम परमेष्ठि की आराधना करते हैं। तो हमारे परिणाम शुभ होते हैं। परमेष्ठि कि प्रसन्नता से अपने परिणामों का शुभ हो जाना कार्य होता है। परमेष्ठि का स्मरण करके अपने परिणाम पवित्र हो जाना यही परमेष्ठि कि प्रसन्नता समझना चाहिए। क्यों सिद्ध परमेष्ठि प्रसन्न होने आयेगे क्या? अरिहंत प्रसन्न होने आयेंगे क्या? नहीं आयेंगे तो इनको याद करने से हमारे भावों में जो निर्मलता आती है, उज्ज्वलता आती है, विशुद्धि आती है, विशुद्धि का जागरण ही परमेष्ठि कि प्रसन्नता है। भावों में निर्मलता आ जाना ही उनका आशीर्वाद है। मिल गया आशीर्वाद। हमने स्मरण किया आचार्य भगवान आशीर्वाद दीजिये। चित्त संतुष्टि हो गई। यही है। उनकी प्रसन्नता यदि परमात्मा को याद करके चित्त मे संतोष होता है तो यही उनकी प्रसन्नता और प्रसाद है।

नास्तिकत्व परिहारस्तु, शिष्टाचार प्रपालनम्।
पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नः, शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः।।2।। द्र.सं.टी.

मंगलाचरण करने के चार कारण हैं? **नास्तिकता का परिहार, शिष्टाचार परिपालन, पुण्य की प्राप्ति, कार्य की निर्विघ्न समाप्ति ।**

नास्तिकता का परिहार–कोई वक्तव्य शुरु कर दे लेकिन वह परमात्मा का गुणानुवाद न करे तो लोग सोचेंगे न जाने कौन बोलने लगा? और पहले ही णमोकार मंत्र बोला, सिद्ध हो गया ये जैन धर्म का वक्ता बोल रहा है। फिर गुरुदेव का जयकारा बोला, अमुक गुरु का शिष्य है।

आस्तिक है ये तो हमें भी आस्तिकता का पथ दर्शायेगा ही। और सीधा बोलना प्रारंभ कर दिया तो कैसा लगेगा? उसे चार रोकने वाले तैयार हो जायेंगे। और विधि वत मंगलाचरण करेगा, तो अपन क्या करेंगे? सम्मान के साथ कहेंगे बहुत बढ़िया। मंगलाचरण करने से नास्तिकता का परिहार होता है।

शिष्टाचार का पालन होता है। आपने प्रवचन को कहा था, मंगलाचरण करने को नहीं कहा था लेकिन फिर भी मैंने मंगलाचरण किया। क्योंकि यह मेरे शिष्टाचार का पहला लक्षण है। आपने हमसे प्रवचन का कहा था कि मंगलाचरण का? प्रवचन का। फिर हमने मंगलाचरण क्यों किया? क्योंकि शिष्टाचार से ही आगे का पथ प्रशस्त होता है। इसलिए–

प्रिय आत्मन्!

शिष्टाचार सज्जनता का पहला लक्षण है। और मंगलाचरण से कार्य शुरु करोगे तो संपूर्ण कार्य मंगलमय होगा। एक बार के णमोकार का प्रभाव अंतर्मुहूर्त तक रहता है। यानी भाव सहित णमोकार का स्मरण एक सेकेण्ड भी कर लिया तो उसका प्रभाव रहेगा अंतर्मुहूर्त तक। अंतर्मुहूर्त के बाद आप फिर से कर लीजिए। इससे शुक्ल लेश्या बनी रहती है यही कारण है कि यहाँ पर जीव जिस परिणामों के साथ मरता है उसी परिणाम, उसी लेश्या के साथ अगला जन्म होता है।

णमोकार के साथ मरोगे तो णमोकार के साथ जन्म लोगे।

महानुभाव! जरा मेरी ओर देखियेगा। मैंने कुछ कार्य किया है, क्या किया, ये पुस्तक है, इसमें कौन से नम्बर का पेज निकलेगा? आप बता सकते क्या? क्यों नही बता सकते? हाँ समझ गये कि मैंने छेपा लगाया उसी तरह परिणामों का प्रक्षेपण हम जब कर देते हैं, उसी परिणाम के साथ हम जन्म लेते हैं। आपने छेपा लगाके पुस्तक बंद कि जब पुनः निकालेगे तो वही निकलेगा। उसी प्रकार जिस परिणाम के साथ मरण हुआ है, उसी परिणाम के साथ जन्म भी होगा।

ये होता है परिणामों का प्रभाव। आप सोते समय जो विचार करके सोयोंगे जागते समय उन्हीं विचारों से जागेंगे। णमोकार कि जाप करके सोये थे तो जागने के साथ णमोकार आयेगा। यदि कोई तनाव, कोई टेंशन में सोयेंगे तो जागते समय भी तनाव रहेगा। इसलिए

आचार्य ने कहा प्रत्येक क्रिया का मंगलाचरण होता है। जागरण का मंगलाचरण, शयन का मंगलाचरण, भोजन का भी मंगलाचरण। हाँ हम सिद्ध भक्ति पूर्वक आहार शुरु करते हैं। पहले सिद्ध भक्ति पूर्वक आहार शुरु करते हैं। पहले सिद्ध भक्ति करते कायोत्सर्ग करते फिर आहार शुरु करते।

जिन परिणामों से आहार शुरु करते हैं, उन परिणामों से आहार पूर्ण करते हैं। पूर्ण होने के बाद फिर कायोत्सर्ग करते। आहार का भी मंगलाचरण करता हूँ। सोने के पहले कायोत्सर्ग करना है उसका मंगलाचरण करना। जागने के बाद मंगलाचरण णमोकार करता हूँ । आप तो आप तो केवल स्वाध्याय का मंगलाचरण करते हैं। आचार्य भगवान कहते हैं।

आओ तो मंगलाचरण, जाओ तो मंगलाचरण

सोना है तो मंगलाचरण, जागो तो मंगलाचरण

यहाँ शुद्धि से आते हैं, तब भी नौ बार णमोकार पढ़ते हैं क्योंकि मंत्र शुद्धि ही सबसे बड़ी शुद्धि है।

''या मुनेः यम नियम संयमया शुचि सः शुचि''

जो यम नियम और संयम के द्वारा पवित्र होता है वही पवित्र माना गया है। इसलिए मंगलाचरण परिणामों को पावन बनाता है। नास्तिकता का परिहार, शिष्टाचार का पालन अब क्या है? पुण्य की प्राप्ति। पुण्य (पावन परिणाम) पवित्र परिणाम

''आत्मनं पुनाति इति पुण्यं''

जो आत्मा को पावन कर दे, वह कौन हो सकता है, जो आत्मा को पावन कर दे वह अपना पवित्र भाव, पवित्र परिणाम, अच्छे विचार, उन अच्छे विचारों को पुण्य कहते हैं। पवित्र विचारों को पुण्य कहते हैं। भैया! ये कैसा कार्य चल रहा है? पुण्य कार्य। स्वाध्याय पुण्य कार्य है। प्रवचन पुण्य कार्य है। क्योंकि आत्मा को पवित्र कर रहा है। तो इस पवित्र कार्य में, पुण्य कार्य में सहयोग करो सबका सहयोग अपेक्षित है।

सभी अपना–अपना सहयोग करें। इस तरह से पुण्य कार्य, पवित्र कार्य, शिष्टाचार का पालन, पुण्य की प्राप्ति। चौथा कारण क्या है? निर्विघ्न समाप्ति, मंगलाचरण पूर्वक कार्य

किया तो कोई विघ्न नहीं आया। क्योंकि अच्छे कार्य में बहुत सारे विघ्न आते है। इसलिए मंगलाचरण को बढ़ाते जाते हैं, और विघ्न को टालते जाते हैं।

इसलिए जब बड़े अनुष्ठान होते हैं तो बड़ा मंगलाचरण होता है। प्रति दिन एक–एक स्तोत्र का विधान होता है। पंच कल्याणक में बाबूलाल जी पंडित पठा वाले थे। प्रतिदिन एक – एक विधान करते थे एक दिन कल्याण मंदिर विधान, एक दिन एकीभाव विधान साथ में पंचकल्याणक भी चल रहा, साथ में जाप अनुष्ठान भी कराते थे। ग्यारह हजार जाप, सवा लाख जाप, प्रतिदिन जाप भी कराते थे। यानि जितना बड़ा कार्य है उतना बड़ा मंगलाचरण। अधिकांशतः ऐसी हम और आपने ये मान लिया है मंगलाचरण माने कोई गीत, कोई गाथा जो अपने भावों को और समाज के सभासदों को पवित्र परिणाम पैदा कर दे ऐसे परमेष्ठी का स्तवन मंगला–चरण कहलाता है।

परमेष्ठी का स्तवन होना चाहिए, अन्यथा मंगलाचरण की बात की और बारह भावना सुना दी। परमेष्ठी का स्तवन मंगलाचरण। मंगल– जीव मंगल, अजीव, मंगल, जीव मंगल को सचित्त मंगल कहते हैं और अजीव मंगल को अचित्त मंगल कहते हैं। और जीवाजीव मंगल संचित्ताचित्त मंगल।

इस तरह तीन तरह का मंगल होता है। मैं जीव हूँ। मंगलमय हूँ अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये क्या है? जीव। ये पाँचों परमेष्ठी जीव मंगल है। इनकी प्रतिमायें अजीव मंगल हैं। जिनवाणी अजीव मंगल है। मैं घुवारा में था। आचार्य विशुद्ध सागर जी और मैं बैठा था, मैंने कहा महाराज श्री आप सभा में प्रतिदिन शास्त्र लेके जाते हो और हो प्रवचन के समय वहाँ पढ़ते तो नहीं। फिर क्यों ले जाते हो?

तो उन्होंने कहा शास्त्र मंगल है। उससे मांगलिक ओरा निकलता है, मांगलिक किरणें निकलती है। हमारे यहाँ कोई भी वस्तु व्यर्थ नहीं है। यदि हमारे टेबल पर शास्त्र रखा है भले ही हमने नहीं भी पढ़ा, तब भी मांगलिक ऊर्जा तो मिलेगी।

शास्त्र मंगल ऊर्जा के स्रोत है। दोसी जी इतने शास्त्र रखे हो, कौन पढ़ता है? शास्त्र को कोई न पढ़े, लेकिन शास्त्र का प्रभाव हम पर तो पढ़ता ही पड़ता है। तुम शास्त्र पढ़ते कि नही पढ़ते ये बाद की बात है लेकिन शास्त्र का प्रभाव, यंत्र के प्रभाव तरह पड़ता शास्त्र

क्या है। यंत्र का प्रभाव आप पर पड़ता है। कभी आपने यंत्र देखे। विनायक यंत्र, उन यंत्रों को पढ़ा क्या? वेदी पर यंत्र रखे रहते हैं, क्या आप पढ़ते हो? नहीं पढ़ते। तो उनका प्रभाव पड़ता कि नहीं पड़ता? पड़ता है। इसी तरह से शास्त्रों का भी प्रभाव पड़ता है। कुछ औषधियाँ हाथ में लेने से फायदा करती है। कुछ औषधियाँ खाने से फायदा करती है। कुछ ऐसी होती है कि एक जगह लटका दीजिए तब भी उसका प्रभाव पड़ेगा। इस तरह से कुछ लकड़ी ऐसी होती है। जिन लकड़ी का प्रभाव ऐसा होता है, कि अपने घर में टाँग दीजिए तो सर्प नहीं आयेगा।

उसी तरह आपने जिनवाणी माँ सामने विराजमान करली तो आपको कुविचार नहीं आयेंगे। नागदमनियाँ होती है, नागदमनियाँ को आप ने दरवाजे पर टाँग दिया, तो सामने से सर्प आ नहीं सकता उसी तरह से, इष्टोपदेश विराजमान है, जिनवाणी विराजमान है, कुविचार जन्म नहीं लेंगे, ये प्रभाव होता है।

सचित्त मंगल + अचित्त मंगल = सचित्ताचित्त मंगल, साधु भी विराजमान हैं, और जिनवाणी भी लिये हैं, तो क्या कहलाया? सचित्ताचित्त मंगल। ये मंगल के भेद हैं।

अभी आपने कलश स्थापन किया। कौन सा कलश? मंगल कलश। कलश भी पूरा भरा हो, भरा हुआ कलश मंगल है। क्योंकि जिस तरह से आत्मा में, ज्ञान परिपूर्ण है। आत्मा में ज्ञान कितना है? आप पूछ रहे थे कलश कितना भरना? बस जितने में पूरा भर जाये, उतना भर दो। कलश भी मंगल, हल्दी भी मंगल, सुपाड़ी फल भी मंगल, लवंग भी मंगल, मंगल में मंगल मिलाके उस कलश को भर दिया (चातुर्मास कलश को) क्यों? कलश भी नहीं रखा, खाली कलश मिले तो अमंगल और भरा मिले तो मंगल, किसी ने कहा महाराज कलश अपन वहीं भर लेंगे बोली के बाद भर लेंगे। मैंने कहा नहीं कलश यहीं से भरके ले जाना है।

मंगल भरके ले जायेंगे तो, मंगल भरके लायेंगे खाली लेके नहीं जाना, तो अपन पूरे भरे कलश ले गये थे। किसी ने कहा उसी परिवार के हाथ से द्रव्य भरवा देंगे। मैंने कहा नहीं, अपन पूरा मंगल करके देंगे उस परिवार को मंगलमय कलश ही देंगे। तो इस तरह से भरा हुआ।

जैसे आत्मा में, केवलज्ञान भरा हुआ है। मंगल कौन है? केवलज्ञान, आत्मा में केवलज्ञान मंगल है। उस मंगल का प्रतीक है, कलश मंगल। अच्छा आत्मा में कितने हिस्से में ज्ञान है? अखण्ड आत्मा है। अखण्ड आत्मा में संपूर्ण आत्म, प्रदेशों में ज्ञान है। यदि सम्पूर्ण में नहीं होता तो पाँव में काँटा, सुई, चुभने पर हमें दर्द नहीं होता।

जहाँ–जहाँ तुम्हें दर्द होता है, समझो वहाँ चेतना है। ज्ञान के बिना दर्द की अनुभूति कौन करेगा? और आनंद की अनुभूति कौन करेगा? आनंद हो रहा है, या दर्द अनुभूति कौन करेगा? ज्ञान होने का मतलब है कि आत्मा है। मृत का लक्षण क्या है? जो अनुभव न कर सके वह मृत है। जो अनुभव कर सके वह जीवित है। और अनुभव हमने पाँव पर चॉबी चलाई, और उसने अनुभव कर लिया। क्या हुआ? अभी यह चैतन्य वाला है। जीवित है। और सुई भी चला रहे, चाकू भी चला रहे, तब भी कोई अनुभूति नहीं हो रही हैं इसका मतलब है कि संवेदन नहीं हो रहा है। इसका मतलब है कि मृत है। आप अनुभव शील हैं।

''जो चेदा, सो णाणं'', ''जो चेदा सो आदा'' जो अनुभव करता है, वह आत्मा है, **''आदा णाण पमाणं'' णाणं णेयप्पमाण मुद्दिट्ठं। णेयं लोयालोयं, तम्हा णाणं सव्वगयं।।** आत्म ज्ञान प्रमाण है। जितना ज्ञान है, उतना आत्मा है। ज्ञान फिर कितना है? ''ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है'' जितना जानने योग्य है उतना ज्ञान है।

ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है। ज्ञेय फिर कितना है? जानने योग्य क्या है? ''णेयम् लोया लोयम्'' लोक अलोक जानने योग्य है तो ज्ञेय लोकालोक प्रमाण है। इसलिए आत्मा भी ''लोकालोक प्रमाण'' है। आत्मा ज्ञान प्रमाण है। ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है। ज्ञेय लोकालोक प्रमाण है। इसलिए आत्मा लोकालोक प्रमाण है।

लोक पूरण समुद्रघात की अपेक्षा, आत्मा के प्रदेश लोकालोक में फेल जाते हैं। हम प्रदेश कि अपेक्षा असंख्यात प्रदेशी हैं। लेकिन ज्ञान कि अपेक्षा सम्पूर्ण जगत को जान सकते हैं, इसलिए लोकालोक प्रमाण वाले हैं।

प्रिय आत्मन्!

कलश मंगल हो गया। अब दूसरा मंगल क्या है? **''दुग्धाभिषेकं करोमि स्वाहा''** दूध का अभिषेक करेंगे। क्यों करेंगे? भगवान तुमने शुक्ल ध्यान को ध्याया है। पवित्र ध्यान

को ध्याया है। उस पवित्र ध्यान धारा से हम भी अपने मन को पावन और पवित्र कर सकें। इसलिए आपका शुक्ल ध्यान मंगल है लेकिन शुक्ल ध्यान तो हमें नहीं हो सकता है लेकिन उस शुक्ल ध्यान का पावन प्रतीक यह दूध कि धारा देख लें, दूध को मंगल माना है। दही को मंगल माना है। दही में चिकनापन है। स्निग्धता है, उसी तरह आत्मा में ज्ञानपना है। दर्शनपना है मंगल है। दूध, दही, पीली सरसो मंगल है।

संस्कृत में सरसो को सिद्धार्थ कहते हैं। जो प्रयोजन को सिद्ध करे, सिद्धार्थ। और प्रयोजन को सिद्ध करने वाले सिद्ध भगवान हैं। सिद्ध भगवान, आपके प्रतीक ये पीली सरसो हैं। जिनकी पीत लेश्या होती है। उसके कार्य सिद्ध होते हैं। इसलिए पीत लेश्या के प्रतीक ये पीली सरसों है सफेद सरसों शुक्ल लेश्या के प्रतीक है।

पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्या शुभ होती हैं। और भैया! आप पीले कपड़े पहनके क्यों आये? पूजा करने आये। काले कपड़े नहीं, पीले कपड़े मंगल है। काले कपड़े नहीं पूजा में पीले कपड़े चलेंगे। क्योंकि पीले पीत लेश्या के प्रतीक है। पीत लेश्या शुभ लेश्या होती हैं।

द्रव्य मे शुभ लेश्या, धारण करना हमारा कार्य है। भाव लेश्या हम शुभ बनाना चाहते हैं। तो द्रव्य में शुभ लेश्या और भाव में शुभ लेश्या बनाने के लिए, भाव में पीत लेश्या बनाने के लिए हमने ये पीत लेश्या के वस्त्र धारण किये हैं।

स्वर्ग के जो इन्द्र होते हैं, उनकी विशेषता क्या है? उनकी द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या एक सी होती है। जो द्रव्य लेश्या होती है, वही उनकी भाव लेश्या होती है। लेकिन मनुष्यों में द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या में अंतर है। इसलिए हम इंद्र बनके अभिषेक करते हैं। क्यों? इंद्र बनके अभिषेक करने का कारण क्या है? क्योंकि इन्द्र की द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या एक समान होती है।

पीत लेश्या है तो पीत लेश्या द्रव्य में भी होगी, और भाव में भी। शुक्ल लेश्या होगी, तो शुक्ल लेश्या द्रव्य में भी होगी, और भाव में भी शुक्ल लेश्या सौधर्म आदि स्वर्गों में पीत, पद्म, शुक्ल तीन लेश्या पाई जाती हैं।

''आदितस्त्रिषु पीतान्त लेश्या:।'' त.सू. 4/2

आदि के जो तीन निकाय, भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिष, इनमें कृष्ण, नील, कपोत, पीत ये चार लेश्यायें पाई जाती हैं।

इंद्र बनने का मात्र तात्पर्य ये नहीं है मुकुट लगाके आगे खड़े हो जाना। ये है कि इंद्र के पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या पाई जाती है हम भी पीत, पद्म, शुक्ल के भाव धारण करके, हम पूजा करेंगे। पक्षपात से परे होकर के पूजा करेंगे। पीत, लेश्या, लक्षण दान–पूजा में रत। त्यागी, भद्र परिणामी, ये सब पद्म लेश्या के परिणाम हैं। शुक्ल लेश्या पक्षपात से रहित होना इत्यादि।

यदि आप पूजा भी कर रहे और नींद भी ले रहे, आलस भी कर रहे, कलह भी कर रहे, तो ये नील लेश्या के परिणाम हो जायेंगे। क्रोध भी कर रहे तो ये आपके कृष्ण लेश्या के लक्षण हो जायेंगे।

प्रिय आत्मन्!

पीत वस्त्र मंगल है श्वेत वस्त्र मंगल है। आओ इस तरह से छत्र मंगल होता है। चँवर मंगल होते हैं। अष्ट मंगल द्रव्य, दर्पण मंगल होता है। जैसे दर्पण में अपना चेहरा झलकता है वैसे ही केवलज्ञान रूपी दर्पण मे जगत के पदार्थ झलकते हैं। तो यथार्थ मंगल तो केवलज्ञान है लेकिन उसका प्रतीक दर्पण है, इसलिए मंगल के लिए कलश के ऊपर भी रखते हैं। दर्पण मंगल हैं।

ये जरूरी नहीं है कि आपके सिर पर बाल ही हो तो तब ही दर्पण देखो सिर पर बाल नहीं तब भी दर्पण देखके निकलते हैं। मंगल का प्रतीक है।

वर्तमान में अनेक प्रकार कि रंगोली बनाई जाती है। स्वस्तिक, कलश, नंद्यावर्त आदि भिन्न–भिन्न प्रकार कि रंगोली बनाई जाती है। उसमें ऊर्जा पायी जाती है वह अमंगल को दूर करती है और मंगल को प्रकट करती है। इस तरह से मंगल विषय देखा मंगल में नाम मंगल, स्थापना, द्रव्य मंगल, क्षेत्र मंगल, काल मंगल, भाव मंगल ये छः भेद और बन जाते हैं।

नाम मंगल – ऋषभ, अजित आदि नाम मंगल है।

स्थापना मंगल – मांगलिक आकार जैसे–यह ये सुमेरू पर्वत है। पाण्डुक शिला, शिखर

स्थापना मंगल है।

द्रव्य मंगल – ये जिनवाणी अजीव द्रव्य मंगल है। साधु जीव द्रव्य मंगल है। द्रव्य भी मंगलमय होता है। इसलिए हम जो पूजा करते हैं ये मंगल द्रव्यों से पूजा करते हैं निर्मल जल मंगल है। चंदन मंगल है। अक्षत मंगल है, पुष्प मंगल है। ये पूजा के अष्ट द्रव्य ही मंगल हैं।

और तीर्थंकर के पास पाये जाने वाले अष्ट द्रव्य भी मंगल होते हैं तो इस तरह से मांगलिक द्रव्यों से पूजा, द्रव्य मंगल। क्षेत्र मंगल, यहाँ पर तीर्थंकर आदि के कल्याणक हुये हैं तो ये क्षेत्र मंगल है। अथवा जिस स्थान पर तीर्थंकरों का उपदेश हुआ है, तीर्थंकरों की भूमि है, प्रतिमा विराजमान है तपस्वियों का समागम हुआ है, साधु संतों ने जहाँ सामायिक एवं ध्यान किया है वह क्षेत्र मंगलमय कहलाने लगता है।

ये परिसर क्या हो गया? क्षेत्र मंगल हो गया। अब काल मंगल जिस काल में शुभ कार्य हुये हैं। पंचकल्याणक आदि तो काल मंगल कहलाते हैं अथवा जिस काल में शुभ कार्य सम्पन्न हों जैसे प्रवचन हो रहा ये काल मंगल है क्योंकि इस काल में मंगल कार्य हो रहा है इसलिए काल मंगल है।

भाव मंगल – जो भाव आत्मा को पावन बनादे वह भाव मंगल है।

इस तरह से नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मंगल। मंगल के छः भेद हो गये। जीव, अजीव अपेक्षा दो भेद सचित्त, अचित्त और मिश्र की अपेक्षा तीन भेद हो गये।

अरिहंत मंगल, सिद्ध मंगल, साधु मंगल, और केवली प्रणीत मंगल, ये चार तरह के मंगल होते हैं। इस तरह मंगल के जगत में संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हैं। क्यों? अरिहंत स्वामी के प्रत्येक पल–पल के परिणाम मंगल हैं। प्रत्येक ज्ञान पर्याय मंगल है अभी हम सिद्ध चक्र विधान रच रहे हैं। सिद्ध चक्र का हमारा छठवा वलय चल रहा है। अर्हन् मंगल, अवधिज्ञान मंगल, मनः पर्यय ज्ञान मंगल, केवलज्ञान मंगल जितनी पुण्य प्रकृतियाँ है सब मंगल हैं।

जितने आपके द्वारा पुण्य कार्य किये सब मंगल है। मैंने सुबह–सुबह सिद्ध चक्र विधान देखा इस तरह के और असंख्यात मंगल हैं। जितने प्रकार के पावन परिणाम हो सकते वह सब मंगल हैं।

सत्य वचन मंगल है, सत्य महाव्रत मंगल इस तरह से महाव्रत मंगल है। समिति मंगल है, व्रत मंगल है, तप मंगल है, स्वाध्याय मंगल है, शास्त्र मंगल है। इस तरह से मंगल के अनेक भेद हो जाते हैं।

प्रिय आत्मन्!

ऐसे मंगलाचरण में हमने देखा था जिन्होंने स्वयं संपूर्ण कर्मो के अभाव से स्वभाव को प्रकट कर लिया है। कुछ प्रकटाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। परमात्मा को प्रकटाने के लिए कर्मों को खोना पड़ता। उन सम्यक ज्ञान स्वरूप, निर्मलज्ञान स्वरूप परमात्मा के लिए नमस्कार हो।

अरहंत णमोकारं भावेण य जो कुणदि पयद मदी।
सो सव्व, दुक्ख मोक्खं, पावदि आचिरेण कालेण।। 506।। मू.आ.

आचार्य कुंदकुद भगवान मूलाचार में लिखते हैं जो अरिहंत भगवान को नमस्कार करता है। कैसे? ''**भावेण** वह अल्प काल में दुःख से मुक्त हो जाता है। ये भाव के साथ नमस्कार करता है पयदमदि प्रयत्न पूर्वक नमस्कार करता है।

हम तो यहीं से बैठे–बैठे कर लें भैया! प्रयत्न भी तो करो। परिश्रम भी तो करो, भाव का प्रयत्न, द्रव्य का प्रयत्न, मन का प्रयत्न, वचन का प्रयत्न ये प्रयत्न भी होना चाहिए।

''भावेण य, कुणदि, पयदमदि''

जो प्रयत्न पूर्वक करता है वह सम्पूर्ण दुखों से मुक्त हो जाता है। थोडे ही काल में मुक्त होता है यहाँ परमात्मा को, नमस्कार करने का पावन फल बताया है। अब आचार्य कहते है लक्ष्य क्या है।

लक्ष्य है परमात्मा बनना, तो पहले निर्णय होना चाहिए कि हम परमात्मा बन सकते हैं। क्या आप परमात्मा बन सकते हैं? तो उसी प्रश्न का उत्तर दिया आचार्य पूज्यपाद ने अंगुली पकडी ले गये खदान की ओर कहाँ ले गये? उस खदान में सोना निकलता है ऊपर से दिखाया ये क्या पड़ा है। किट्टिकालिमा युक्त सोना जिसमें कालिमा है। ऐसा सोना इस खदान में पड़ा हुआ है। उस सोने को अग्नि पर तपाया गया, एक ताव दो ताव, तीन ताव, इस

तरह क्रम से सोलह ताव दिये गये, प्रत्येक ताव में थोडी–थोडी कालिमा निकलती गई सौलह ताव देने पर सोना शुद्ध हो गया और फिर दिखाया महाराज। हम आपके पास से काला ले गये थे ओर ये तो पीला हो गया। बस उन्होंने कहा अब इसे काला करके बताओ। बोले अब नहीं हो सकता काला, क्यों शुद्ध हो गया। बस यही बात है गृहस्थ अवस्था खदान में पड़े हुए सोने के समान है। सोना तो बहुत है लेकिन खदान में पड़ा है खदान में पड़े सोने में, किट्टी कालिमा लगी हुई है। और साधु का जीवन आग पर तपता हुआ सोना शुद्ध हो तप रहा है।

एक ताव, दो ताव, तीन ताव, चलते हैं। तप रहा है सोना छठवे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक बस तपते जाओ, तपते जाओ ये तपता हुआ सोना है। और सिद्ध भगवान शुद्ध सोने कि तरह है अब पुनः उसमें कालिमा लगने वाली नहीं है इस तरह से हमें अपनी दशा को निहारना है कि खदान में पड़े सोने में किट्टी कलिमा कब से है?

पयडी सील सहावो, जीवंगाणं अणाइ संबंधो।
कणयोवले मलं वा, ताणत्तित्थं, हवे सिध्दं।।2।। कर्म. का.

कर्म और आत्मा का अनादि से सम्बन्ध है अभी हम रिष्ट समुच्चय पढ़ रहे हैं, उसमें बताया कि आत्मा नया शरीर धारण क्यों करता है? पुर्नजन्म क्यों होता है? पुर्नजन्म होने का कारण क्या है?

महानुभाव!

अरे भाई बही खाते में नया खाता चालू क्यों होता है? कुछ न कुछ बाकी रह जाता तो नया खाता चालू हो जाता है उसी तरह पुराने कर्म चुकाने में कुछ बाकी रह गये। इसलिए उन कर्मों को भोगने के लिए, चुकाने के लिए नया शरीर धारण करना पड़ता है। जीव अपने काल में इतने कर्मों को बाँध लेता है कि इस शरीर को पाकर के पूरे कर्म नहीं चुका पाता है नहीं भोग पाता है तो उन कर्मों को भोगने के लिए चुकाने के लिए नया शरीर धारण करना पड़ता है।

महानुभाव!

जब खाता चुक जाता है तो बही में नया खाता खुलेगा क्या? नहीं खुलेगा। यदि कर्म पूरे चुक जाये तो नया शरीर धारण नहीं करना पड़ेगा। शरीर पाओगे, तो फिर इंद्रियाँ पाओगे, इन्द्रियाँ पाओगे, पाप करोगे तो दुख भोगना पडेगा। दुख भोगने के लिए शरीर

चाहिए। शरीर नहीं मिलेगा तो दुख कैसे भोगोगे? कोई न कोई साधन तो चाहिए, तो दुख को भोगने के लिए शरीर मिलता है।

प्रिय बंधुओ!

इस तरह से कर्म को भोगने के लिए कर्म को चुकाने के लिए जब तक पूरा कर्म चुक नहीं जायेगा तब तक शरीर मिलता रहेगा। सिद्धों को नया शरीर क्यों नहीं मिलता? क्योंकि उन्होंने कर्म पूरे नष्ट कर दिये थे। इसलिए उन्हें नया शरीर नहीं मिलता। और हमारा पुनर्जन्म होता है। क्योंकि हमने कर्म नष्ट नहीं किये।

कब तक जन्म मिलेगा? जब तक कर्म नष्ट नहीं करेंगे। कर्म को पूरा नहीं चुका देंगे। तब तक। भैया! आप दस साल बाद भी जाओगे तो आपके नाम का खाता चालू मिलेगा। बही बदलती जायेगी, लेकिन खाता बही में आ जायेगा हर दीवाली को खाता अगली वही में पहुँच जायेगा लेकिन ये समझो मिट जाये? मिटेगा नहीं।

क्यों? क्योंकि आपने चुकाया नहीं है। अभी एक बैंक में सिर्फ 15 पैसे चुकाने थे। क्योंकि बैंक का नियम था कि जब तक पूरा पैसा नहीं चुक जायेगा तब तक नया पैसा नहीं मिलेगा तो 15 पैसे का ब्याज बढ़ रहा था। अब वह कैसे चुकाया जाये। क्योंकि 15 पैसा चलता नहीं। तब उन्होंने फिर बैंक से बीस रूपये का फार्म लिया, फार्म लेने के पश्चात् फिर, बैंक में पैसे जमा किये फिर उसमें निवेदन लिखा कि आप इस पैसे में से 15 पैसा जमा करें शेष हमारे खाते में रखें। तात्पर्य ये है कर्म पूरा चुकेगा

रभावे कृत्स्न कर्मणा:

संपूर्ण कर्मों का अभाव होने पर आत्मा परमात्मा बन जाती है सोने का स्वभाव प्रकट हो गया है कालिमा निकल गई तो उसी तरह कर्म कि कालिमा निकलेगी तो अपना स्वभाव प्रकट हो जायेगा। यद्यपि उस खान के सोने में भी सोना था लेकिन कालिमा युक्त था इसलिए उसको वह वेल्यू (कीमत) नहीं मिल सकती थी उसी तरह से हमारे अंदर भी।

❑❑❑

2

निमित्तोपादान से सिद्धि

योग्योपादान योगेन, दृषद: स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसम्पत्ता वात्मनोप्यात्मता मता।।2।।

अन्वयार्थ – (**योग्य उपादान**) योग्य उपादान के मिलने से (**दृषद:**) जैसे स्वर्णपाषाण को (**स्वर्णता मता**) स्वर्णपना प्रकट होता माना गया है उसी तरह (**द्रव्यादिस्वादिसम्पत्तौ**) सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल आदि कारण रूप सामग्री के मिल जाने पर (**आत्मन: अपि**) संसारी आत्मा को भी (**आत्मता**) शुद्ध आत्म स्वरूप की प्राप्ति होना (**मता**) माना गया है।

जिस तरह सिद्ध भगवान सिद्धालय में है उसी तरह में इस संसार में हूँ। लेकिन अंतर क्या है? मुक्तजीव शुद्ध सोने की तरह, मैं संसारी जीव खदान के सोने की तरह हूँ। आओ तो फिर क्या हो सकता है?

योग्योपादान–उपादान भी योग्य हो हर, पाषाण में सोना नहीं निकलेगा। जिसमें विद्यमान है उसी में वह उपादान है। रोटी आटे कि बनेगी, रेत की नहीं बनेगी उपादान किसमें है? योग्य उपादान युक्ति सही होना चाहिए। योग्य उपादान, के योग्य से, युक्ति से पत्थर स्वर्णता को प्राप्त हो जाता है। क्यों? उसमें सोना विद्यमान था, तो युक्ति लगाई खदान से बाहर निकाला, निकाल के सोलह तापों पर तपाया ये सब युक्ति है। इस योग से क्या होगा स्वर्णता को प्राप्त हो गया। शुद्ध हो गया। उसी तरह से द्रव्य आदि, स्व द्रव्य, स्व क्षेत्र, स्व काल, स्वभाव। निज द्रव्य, निज क्षेत्र, निज काल, निज भाव ''सम्पत्तौ'' सम्पत्ति के होने पर। मोक्ष होता। कौन सी सम्पत्ति? आत्म द्रव्य आत्म क्षेत्र आत्म काल और आत्म स्वभाव सम्पत्ति।

''स्वभाव: एव सम्पदा''

स्वभाव ही सम्पदा आपका स्वभाव ही आपकी सम्पत्ति है। आचार्य भगवन् कहते हैं –सम्पत्तौ, सम्पत्ति के होने पर सप्तमी विभक्ति का एकवचन सम्पत्ति के होने पर कौन सी सम्पत्ति? द्रव्य सम्पत्ति, क्षेत्र सम्पत्ति काल सम्पत्ति, भाव सम्पत्ति।

मैं आत्मा हूँ। ये मेरी द्रव्य सम्पत्ति **''मोक्खस्स कारणं आदा''** मोक्ष का कारण आत्मा है क्यों है?

क्योंकि आत्मा को छोड़कर रत्नत्रय नहीं पाया जाता है। जैसे पानी भरने के लिए कलश कि आवश्यकता है वैसे ही मोक्ष के लिए आत्म द्रव्य की आवश्यकता है। क्षेत्र क्या है? आत्मा के असंख्यात प्रदेश क्षेत्र हैं। जिस काल में साधना करें वह काल है। भाव–उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि भाव हैं ऐसी सम्पत्ति होने पर आत्मा भी, परमात्म पने को प्राप्त हो जाता है। इसलिए द्रव्य, क्षेत्र, काल ये तीन साधन हैं। भाव साध्य है। भावों को अच्छा बनना है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल ये तीन तो अच्छे जुटाओ ये तीन साधन बनेंगे। भाव साध्य बनेगा।

प्रिय आत्मन्!

इस तरह से आचार्य भगवान ने द्रव्य सम्पत्ति आत्मा अंतरंग द्रव्य संम्पत्ति है। इसलिए स्व शब्द दिया आप सौदामठ जाते हैं वहाँ लिखा जैन वास्तु का नाम है ''स्वादि वसदि'' इसी शास्त्र से निकला है स्व (आत्मा) । अकलंक स्वामी ने लिखा

स्व: स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै, स्वस्मात् स्वस्याविनश्वरम्।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थ, मात्मानं परमं पदं।।25।। (स्व. सं.)

आत्मा, आत्मा को, आत्मा के द्वारा, आत्मा के लिए, आत्मा से आत्मा का, आत्मा में ध्यान करके, परमात्मा पद को प्राप्त कर लेता है।

अन्य सम्पत्ति नहीं चाहिए, आप लोग कोई गरीब नहीं हैं। जैन कभी गरीब नहीं हो सकता, सम्यक् दृष्टि कभी गरीब नहीं हो सकता, उसे पता है मेरी सम्पत्ति कभी नाश हो ही नहीं सकती। सुमेरु पर्वत के नीचे तुम्हें दबा भी दिया जाये, प्रद्युम्न कुमार को तो शिला के नीचे दबाया तब भी आत्मा का नाश नहीं है। आत्मा के अनंत गुण में एक गुण भी नष्ट होने वाला नहीं फिर हमारा क्या नाश होगा हैं? आपको मालूम है पं. टोडरमल जी के लिए हाथी

के पैर के नीचे दवा दिया। क्या हुआ? श्रद्धा पक्की थी द्रव्यादि स्वादि सम्पत्ति मेरी सम्पत्ति का नाश नहीं होगा। मेरी सम्पति मेरी आत्मा में है। मेरा द्रव्य मैं हूँ, मेरा क्षेत्र में हूँ, मेरा काल में हूँ, मेरा भाव में हूँ इसलिए मेरा जो भी है मेरा स्वभाव मेरे पास है। इसलिए मेरी सम्पत्ति मेरी समता है मेरी सम्पत्ति का नाश संसार में कोई नहीं कर सकता है। न चोर चुरा सकता है न भाई बांट सकता है। जड़ सम्पत्ति का बटवारा हो सकता है चेतन सम्पदा का बटवारा नहीं होगा। मात्र अंतर इतना है जो चेतन की सम्पदा को अपनी सम्पदा समझते हैं, वह परमात्मा बनते हैं।

जो जड़ सम्पत्ति को अपना समझते हैं वह जड़ के संग्रह में लगते हैं और वह पंच पाप करते हैं जो गुण सम्पदा को अपना समझते हैं उनके पंच कल्याण होते हैं। जो जड़ की सम्पत्ति को अपना समझते हैं, उनके पंच पाप होते हैं। सत्य है कि नहीं? पाँच पाप क्यों हो रहे? क्योंकि पुदगल कि सम्पत्ति को अपना माना सो पांच पाप होते हैं और चेतना कि सम्पदा को अपना मानेगे तो पंचकल्याण होगा।

तीर्थंकरों के कल्याणक हुये। क्योंकि उन्होंने स्व द्रव्य आत्मा को अपना माना, स्वक्षेत्र मेरा आत्म क्षेत्र कितना? असंख्यात प्रदेशी। आत्मा कहाँ रहेगा? अपनी आत्मा में ही तो रहेगा। निज आत्मा का वर्तमान निवास क्षेत्र, निज आत्मा। सर्वार्थसिद्धि में है। सत् संख्या (मैं आत्मा का कथन करता हूँ) संख्या आत्मा के निज प्रदेशी। मेरी आत्मा असंख्यात प्रदेशी है। आप कहाँ विराजमान हो अपनी आत्मा में विराजमान हो। अपने स्वभाव में विराजमान हो तो वर्तमान निवास मेरी आत्मा का असंख्यात प्रदेशी है।

इसलिए स्व द्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल स्वभाव इस तरह अपने चतुष्टय को जानना चाहिए। जो स्व चतुष्टय को जानता है वह अनंत चतुष्टय को प्राप्त कर लेता है। इसी मंगल भावना के साथ।

मैंने चरण छुये दो तेरे, तुमने हृदय छुआ।
मेरे आत्म प्रदेशों पर तब, अद्‌भुत असर हुआ।
तेरे गुण मुझमें प्रगटे ज्यों, सर इंदीवर हो।
मेरा अंतिम मरण समाधि तेरे दर पर हो। 156।

ॐ नमः

❑❑❑

3

व्रतों की सार्थकता

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाऽव्रतैर्वत नारकम्।
छायाऽतपस्थयोर्भेदः, प्रतिपालयतोर्महान्।।3।।

अन्वयार्थ– (**व्रतैः**) व्रतों के द्वारा (**दैवं पद**) देवपद पाना (**वरम्**) अच्छा है (किन्तु) (**अव्रतैः**) अव्रतों द्वारा (**नारकं**) नरक में उत्पन्न होना (**वत**) ओह ! (कष्ट खेद) (**न**) अच्छा नहीं है (**हि**) क्योंकि (**छायातपस्थयोः**) छाया और धूप में स्थित के समान (**प्रतिपालयतोः**) प्रतीक्षारत पुरुषों में (**महान् भेदः**) बड़ा भारी अन्तर है ।

वरं अच्छा है, क्या अच्छा है? **देवं पदं** देव पद, स्वर्ग पद **वरं** अच्छा है, स्वर्ग की प्राप्ति अच्छी है, लेकिन होती किससे है? साधन क्या है? कारण क्या है? वह सूत्र चित्त में बिठा लेना **'कारण कार्य विधानम्'** कारण क्या है? स्वर्ग पाना अच्छा है, हर व्यक्ति स्वर्ग पाना चाहता है, स्वर्ग जाना चाहता है। लेकिन स्वर्ग जाने का रास्ता, उपाय क्या है? व्रतैः। स्वर्ग प्राप्ति कार्य, तो स्वर्ग प्राप्ति का साधन क्या है? देखिए, इसमें स्वर्ग में जाने की विधि है, ये कारिका स्वर्ग की सीढ़ी है, इस कारिका का पहला चरण स्वर्ग की सीढ़ी है। कोई जीव कहे, मुझे स्वर्ग जाना है, पहले तीसरी कारिका का पहला चरण, **'वरं व्रतैः पदं दैवं'** हो गया स्वर्ग। ये स्वर्ग जाने की विधि, स्वर्ग जाने का मार्ग, स्वर्ग जाने की कला, **व्रतैः** अब **व्रतैः** शब्द, कौन सी विभक्ति का, कौन सा वचन? ये तृतीया विभक्ति का बहुवचन है, तो तृतीया विभक्ति कौन से कारक में होती है? यह समझना पड़ेगा, तृतीया विभक्ति करण कारक में होती है, साधकतम करण, यह साधकतम है, साधन है, करण किसे कहते हैं? **'साधकतमंकरणं** यानी व्रतों के द्वारा, तृतीया विभक्ति में अर्थ – के द्वारा, कर्ता ने, कर्म को, कारण ने, से,

के द्वारा, अर्थात् व्रतों के द्वारा, कितने व्रत के द्वारा? यदि सिर्फ **व्रतेन** लिखा होता तो एक व्रत, **व्रताभ्याम्** लिखा होता, दो व्रत, और यहाँ क्या लिखा है? **व्रतैः** तृतीया का बहुवचन है, बहुत से व्रतों के द्वारा। आचार्य भगवन् पूज्यपाद जी की दृष्टि निहारिए, **ओ उस युग में विराजमान थे,** जहाँ पर योगी, घर और मकान को छोड़कर कुटि बना रहे थे, जहाँ पर योगी संन्यास लेकर के कुटि बना रहे थे, जहाँ पर संन्यास लेकर के कुटि बनाकर के कोई खेती करता था। आचार्य को ध्यान था, एक व्रत तो इसने ले लिया, घर का त्याग कर दिया, लेकिन शेष व्रत इसके नहीं है, ऐसे व्यक्ति के लिए स्वर्ग नहीं है। एक व्रत नहीं कहा, दो व्रत नहीं कहे, **व्रतैः** बहुत से व्रत। देखिए व्रत कहते किसे हैं और होते कितने हैं?

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्म परिग्रहेभ्यो विरति–र्व्रतम् ॥7/1॥ (तत्त्वार्थसूत्र) यहाँ तत्त्वार्थ सूत्र, में उमास्वामी जी महाराज, क्या लिखते हैं? हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह। इन पाँच पापों से हटना, अपने आप को हटा लेना, अपने उपयोग को हटा लेना, अपने चित्त को हटा लेना व्रत है। रत्नकरण्डक श्रावकाचार में समन्तभद्र स्वामी लिखते हैं –

'हिंसा–नृतचौर्येभ्यो, मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।
पाप प्रणालिकाभ्यो, विरतिः संज्ञस्य चारित्रम्।।42॥ (र.श्रा.)

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह पाप प्रणालि, ये पाप की नाली है। इनसे पाप बढ़ता है। जैसे नाली होती है, नाली में से गंदा पानी बहता है, इसलिए इसको नाली कहा। इनमें से पाप बहते हैं। 'पाप प्रणालिका' यह पापों की पाँच नाली हैं, इनमें से पाप बहते हैं, और ये बाहर की ओर नहीं बहते। ये भीतर की ओर बहते हैं। जब बाहर की जमीन ऊँची हो और घर की जमीन नीची हो, तो बाहर का पानी भीतर आता है, उसी तरह पाप करने वाला व्यक्ति नीचा हो जाता है, पाप का पानी अंदर आ जाता है, **'पाप प्रणालिकाभ्यो विरति'** इनसे व्रत होना। व्रत कहो अथवा चारित्र कहो, तब वह देशव्रत और महाव्रत रूप से दो रूप हो जाता है। व्रतों के द्वारा, व्रत कौन से हैं? अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। आप व्रती हो जायेंगे, हिंसा से विरत हुए तो अहिंसा, असत्य से विरत हुए तो, सत्य, चोरी से विरत हुए तो अचौर्य और अब्रह्म से विरत हुए तो हो गया। अहिंसा व्रत, सत्य व्रत, अचौर्य व्रत, ब्रह्मचर्य व्रत, और अपरिग्रह व्रत। इन व्रतों के अभाव को अव्रत कहेंगे। प्रकाश के अभाव को क्या कहोगे? अंधकार। दिन के अभाव को रात, सुख के अभाव को

दु: ख, उसी तरह व्रत के अभाव को क्या कहोगे? अव्रत। जितने समय जिस जीव में व्रत नहीं है। उतने समय वह जीव क्या है? अव्रत है। ध्यान से समझना। इस कारिका को समझने के बाद यह समझ में आयेगा कि हम स्वर्ग की तैयारी कर रहे हैं। हम व्रत में जी रह हैं, या अव्रत में जी रहे हैं? ये स्वाध्याय दूसरे का नहीं है, अपनी आत्मा का अध्ययन है। जब तक स्वयं को सोचने में मजबूर न कर दे, तब तक स्वाध्याय नहीं हुआ। उपदेश वह है , जो आत्मा को सोचने में मजबूर कर दे। ओ हो!...मैं कहाँ था? सोते से जगा दे, देखो। **'अव्रतै: न वरं'** न शब्द लिखा, न वरं अच्छा नहीं है। क्या अच्छा नहीं है? **'नारकं, न वरं'** नरक अवस्था अच्छी नहीं है। सुनलो, ये शब्द क्या है? चेतावनी! नरक अच्छा नहीं है, नारकी अवस्था अच्छी नहीं है। नरक में

खेत्त जणिदं असादं, सारीरं माणसं च असुरकयं।
भुंजंति जहावसरं, भवट्ठिदि चरम समयोत्ति।।197॥ का.अ.

अर्थ– क्षेत्र जनित, शारीरिक, मानसिक, असुरकृत, त्रि.सार. ये चार प्रकार के दुःख यथावरसर जीवनकाल तक रहते है। इसलिए नरक अवस्था अच्छी नहीं है। भैया ! ये प्रश्न आया, नरक जीव कैसे जाता है? नरक का कारण क्या है? नरक का साधन क्या है? **अव्रतै: अव्रतों के द्वारा** हिंसा अव्रत, झूठ अव्रत, चोरी अव्रत, कुशील अव्रत, परिग्रह अव्रत। ये पाँच अव्रत है। इन पाँचों अव्रतों के द्वारा, **नारकं** इससे नरक होता है।

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्याऽयुषा:॥15/6॥ (तत्त्वार्थ सूत्र) बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह, अंतिम पाप का सूचक हो गया, इसलिए आदि दीपक **बह्वारम्भ,** अंत दीपक **परिग्रह** और अंत में तीन समाहित हो ही जायेंगे। इसलिए जहाँ बहुत आरम्भ है, बहुत परिग्रह है, वहाँ पाँचों पाप हो जाते हैं, इसलिए बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्याऽयुषाः ॥15/6॥ यह नरक आयु के आस्रव का कारण है। पाँच अव्रत हैं, बहुत आरम्भ, बहुत हिंसा, बहुत परिग्रह, आरंभ हिंसा से भी होता है, झूठ से भी होता है, चोरी से भी होता है, सभी पाप होते हैं।

अव्रतै: अव्रतों के द्वारा, **नारकं न वरं,** नरक पद पाना अच्छा नहीं है, श्रेष्ठ नहीं है। दशा देखो जीव की जिस जीव ने व्रतों को धारण नहीं कर पाया, वह जीव नरक में चला गया। रानी चेलना ने कितना समझाया? रानी चेलना ने श्रेणिक के जीव को कितना

समझाया? यदि राजा श्रेणिक ने उस समय व्रतों को धारण कर लिया होता तो बताओ क्या नरक में जाना पड़ता? नहीं जाना पड़ता। रानी चेलना स्वर्ग गई और राजा श्रेणिक नरक गया। जबकि दोनों साथी थे, आचार्य कहते हैं– जीवन में साथ तो हो सकता है लेकिन अगले जीवन में कौन साथ देगा? व्रत साथ देगा और कोई साथ नहीं देगा। धन साथ नहीं जायेगा, धर्म साथ जायेगा। व्रत जीव को स्वर्ग भेजता है, और अव्रत जीव को नरक भेजता है। रानी चेलना को स्वर्ग में किसने पहुँचाया? क्या गणधर की कृपा हुई, या तीर्थंकर की कृपा हो गई? हमारे यहाँ ऐसा नहीं है कि गाय की पूँछ पकड़ लो तो पार हो जाओंगे? नहीं। जैसे–आप साधन से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हो, इसी तरह व्रत इस भव से परभव में ले जाने वाला शुभ स्थान पर ले जाने का साधन है **'सुगइ गमणं'** सुगति में गमन, तो सुगति में गमन कैसे होगा? व्रतों के द्वारा। आचार्य भगवन् श्री विमलसागर जी कहते हैं–आप हमारे पास आये अच्छा लग रहा कि नहीं? बोलों अच्छा लग रहा। हमारे पास रहने से आपको अच्छा लग रहा कि नहीं? भैया ! आगे मेरे साथ रहोगे कि नहीं? हम स्वर्ग जायेंगे, तो तू हमारे साथ आओगे कि नहीं? आयेंगे। किस बल पर आओगे? हमने व्रत ध ारण किये हैं, तुम भी व्रत धारण करोंगे, तो स्वर्ग में हमारे साथ रहोंगे। भैया! जो टिकिट हमने ली है, जहाँ की टिकिट हमने ली है, वह टिकिट तुम ले लो। तब फिर वहाँ मिलेंगे। जिसने व्रत लिया है, वह व्रत के माध्यम से अपना रिजर्वेशन करा रहा है। तुम भी अपना रिजर्वेशन करा लो। यह है समझने की स्थिति । दोनों में अंतर कितना है? **''छाया, आतप स्थित ''**स्वर्ग और नरक। वस्तुतः हमें स्वर्ग नहीं जाना, हमें नरक भी नहीं जाना, हमारा लक्ष्य निर्वाण पद की प्राप्ति है, लेकिन प्रश्न आ गया पंचमकाल में मोक्ष होता नहीं है, तो फिर पंचमकाल में व्रत और धर्म का उपदेश? क्यों, इष्टोपदेश क्यों? आपको व्रत इष्ट है, पूज्यपद स्वामी व्रति थे, उनको व्रत इष्ट था। बहुत प्यारी बात, **इष्टोपदेश व्रतोपदेश,** पूज्यपाद स्वामी को व्रत इष्ट था। इसलिए उन्होंने व्रत का उपदेश दिया,**व्रतोपदेश**। ये व्रतोपदेश चल रहा है। आचार्य भगवन् कहते हैं छाया, आतप सुनो।

मित्र राह देखत खड़े, इक छाया, इक धूप।

व्रत पालन से देवपद, अव्रत दुर्गति कूप।।

दो मित्र प्रतीक्षा कर रहे हैं, मेरा तीसरा मित्र कब आयेग? एक मित्र ग्रीष्मकाल की, जेठ माह की तपती दोपहरी में धूप में खड़ा है। मेरा मित्र आयेगा, आकुलता कर रहा है और एक मित्र वटवृक्ष की छांव में खड़ा है, कि मेरा मित्र आ जाये। बोलो ! दोनों मित्र में से किसको आप बुद्धिमान कहोगे? प्रतीक्षा दोनों कर रहे हैं। एक धूप में खड़ा होके प्रतीक्षा कर रहा है, एक छाया में खड़ा होकर प्रतीक्षा कर रहा है। किसको कहोगे बुद्धिमान? छाया वाले को। आचार्य कहते हैं– जो व्रत पाल रहा है, वह छाया में खड़ा हुआ है और जिसने व्रत धारण नहीं किये हैं, वह धूप में खड़ा हुआ है। जो स्वर्ग में पहुँचा है, जो व्रत धारण किये, ये छाया की तरह, अभी मोक्ष तो चतुर्थकाल में ही जा सकते है, पंचमकाल में मोक्ष नहीं होता, व्रत का उपदेश क्यों? क्योंकि मोक्ष मार्ग तो होता है। पंचमकाल में मोक्ष नहीं, किंतु मोक्ष का साधन, मोक्ष मार्ग होता है।

अज्ज वि तिरयणसुद्धा, अप्पज्झाए वि लहइ इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं, तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।77॥ (मोक्खपाहुड)

आचार्य श्री कुंदकुंद देव लिखते हैं, आज भी तीन रत्नों से शुद्ध, रत्नत्रयधारी मुनिराज, आत्मा का ध्यान करके लौकांतिक देव होते हैं, और वहाँ से च्युत होकर के निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं, तो भैया! कितनी अच्छी बात है, कि आप इंद्र बने और लौकांतिक देवपने, को प्राप्त हो सकते हैं। इन व्रतों के माध्यम से नरक के दुःखों से बचाने का उपाय दे रहे हैं। भविष्य काल के अनन्त दुःखों से बचने का ये उपाय है। आज यदि किसी ने छोटा सा नियम लिया, कि हम तम्बाकू, गुटखा नहीं खायेंगे, तो भविष्य में कैंसर होने से बचा, और कैंसर से होने वाली पीड़ा से बचा। कैंसर में होने वाले व्यय से बचा, कैंसर से होने वाले पारिवारिक संकट से बचा। आचार्य कहते हैं–छोटे से त्याग में, बहुत बड़े संकट से बचाने की क्षमता है। एक छोटा सा व्रत आपको बहुत बड़े संकट से बचा लेता है। भैया! साइकिल का चक्का होता है, वह बड़ा होता है। अब बताइये, उस साइकिल के चक्र में, उस छोटी सी गिट्टी का क्या महत्त्व है? समझाइये, जो महत्त्व उसमें उस ब्रेक का है, वही महत्त्व जीवन में व्रत का है। घोड़ा कितना भी अच्छा क्यों न हो, यदि लगाम न हो, तो घोड़ा गिरा देता है, हाथी कितना भी बलवान, कितना भी बलिष्ठ क्यों न हो, लेकिन हाथी को वश में करने वाले महावत के पास अंकुश न हो तो, क्या हो? वस्तुतः अंकुश होना चाहिए। **हाथी को वश में**

करने के लिए अंकुश, घोड़े के लिए लगाम, वाहन के लिए ब्रेक और जीवन के लिए व्रत। पतंग कितनी भी ऊँची उड़ाओ, और यदि डोर हाथ में नहीं है, तो पतंग का पतन हो जाता है। आप किसी को दिखाना, और कहना मेरी पतंग उड़ रही है, लेकिन उसकी डोर आपके हाथ में न हो, तो लोग क्या कहेंगे? जिस पतंग की डोर ही आपके हाथ में नहीं है, उस पतंग का भविष्य क्या होगा? उसी तरह जीवन में यदि व्रत नहीं है, तो जीवन का भविष्य क्या होगा? पतंग और डोरी का साथ जब एक है, तभी तक पतंग है। कितनी भी ऊँची उड़ेगी, तब भी सुरक्षित है, यदि डोरी टूट जाये, तो पतंग का भविष्य नहीं है। उसी तरह अपन क्या बोलते हैं–

मेरे जीवन की डोरी
गुरु खींचों अपनी ओर

मैं ऐसी पतंग हूँ कि आप मेरी डोरी को पकड़े रहो। आचार्य कहते हैं कि तुम व्रत रूपी डोरी से बंध जाओ। यदि तुम्हारा जीवन पतंग है, तो तुम व्रत रूपी डोरी से बंध जाओ। यदि तुम हाथी हो, तो व्रत रूपी अंकुश को पास में रखो। यदि तुम घोड़े हो, तो संयम का लगाम अपने पास रखो। भैया ! **व्रतैः** इन व्रतों के द्वारा छाया मिलेगी, कष्ट नहीं होगा। थोड़ा सा कष्ट यदि होता भी है, तो वह कष्ट क्षणिक है। लोग बोलते हैं– महाराज! आप लोग इतना कष्ट कैसे सहन कर लेत है? हम लोग ऐसे सहन कर लेते, जिनवाणी में पढ़ते हैं, कि अनादि काल के दुःख मैंने अव्रतों के कारण भोगे, पँचपरावर्तन के दुःख, मैंनें अव्रतों के कारणा भोगे। मैंने माँ का इतना दूध पिया है, कि समुद्र भी भर जाए, लवण समुद्र के बराबर माँ का दूध पी लिया। भैया! मैंने इतना भोजन कर लिया कि सुमेरू पर्वत भी कम है। अब सोचिए, ये चिंतन चल रहा है, तो लगता है कि हमने सही पथ चुना। मैंने जो पथ चुना है, मुझे उस पथ की खुशी है, और जब व्यक्ति को अपने कार्य से प्रसन्नता होती है, तो कष्ट महसूस नहीं होते हैं। जब व्यक्ति कार्य सही करे, उस कार्य की प्रसन्नता उसे हो, तो कष्ट महसूस नहीं होता। देखो माताओ ध्यान से सुनना! एक माँ बिस्तर से नहीं उठ पा रही, उसे तकलीफ हो रही, लेकिन ज्योंहि समाचार सुने मुनिराज आ गये, अब क्या करना? अभी तक श्रीमान् जी के लिए उठके पानी नहीं दे पा रही थी, लेकिन समाचार मिला कि मुनिराज आ गए। अब क्या? अब तो चौका भी लगाना और चौके में चार घंटे का परिश्रम भी हो रहा

है, और परिश्रम करने के बाद पूछा तबियत कैसी है? आनन्द में है, खुश है, बोलो? सत्य है, कि नहीं? सत्य है। यह है, पवित्र कार्य का आनन्द, **पवित्र कार्य का आनन्द ऊर्जा देता है, उत्साह देता है, प्रसन्नता देता है। पुण्य की वर्गणायें देता है, उत्तम भविष्य को बनाता है** और यदि व्रत धारण नहीं किया, असंयम में जीवन बीत गया। भैया! एक बात को सुनिएगा ! नरक के नारकी में, तिर्यंचगति के तिर्यंच में, स्वर्ग के देव में और यहाँ के मनुष्य में क्या अन्तर है? नरक का नारकी पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक रहता है, असंयमी है, और यहाँ का जीव भी, पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान में है, तो दोनों के गुणस्थान की बराबर हुए ही नहीं, दोनों को असंयमी कहोगे कि नहीं, दोनों को अव्रती कहोगे कि नहीं? कहोगे। अंतर इतना है, नरक का नारकी पुनः नरक नहीं जा सकता है, और मनुष्य नरक जा सकता है। नारकी बीच में कोई न कोई पर्याय मनुष्य या तिर्यंच की लेगा तब कहीं नरक जा सकता है, लेकिन यदि पाप न छोड़े तो मनुष्य और तिर्यंच को नरक जाना पड़ता है। देव, नारकी नहीं हो सकता। नारकी, देव नहीं हो सकता, लेकिन मनुष्य और तिर्यंच नारकी भी हो सकते हैं और देव भी हो सकते हैं। इसलिए कहा, धर्म के प्रभाव से, व्रत के प्रभाव से श्वान देव हो गया। व्रतों को जो भी धारण कर ले, देखो एक शियार था, मुनिराज का उपदेश हो गया, उसे इष्टोपदेश मिल गया, व्रतोपदेश मिल गया और व्रत का उपदेश मिलते ही शियार ने व्रत ले लिया कि मैं रात्रि में, पानी नहीं पिऊँगा। जब कुँए में नीचे उतरा, तो अंधेरा दिखा, और ऊपर आया, तो प्रकाश दिखा, और फिर नीचे देखे तो अंध ेरा, ऐसा करते–करते रात हो गई, उतरते चढ़ते थक गया, प्राणांत हो गया, लेकिन उस शियार ने नियम नहीं तोड़ा। शियार बहुत होशियार था, उसने नियम नहीं तोड़ा। रात्रि के पानी का त्याग करने वाला शियार, स्वर्ग में देव हो गया। यह है, व्रत की महिमा। एक चाण्डाल ने नियम लिया, मैं अष्टमी, चतुर्दशी को कोई बध नहीं करूँगा। यमपाल चाण्डाल ने अपनी प्रतिज्ञा निभाई। परिणाम क्या हुआ? उस चाण्डाल को समुद्र में फेंक दिया, तब भी रक्षा हो गई। ये व्रत की महिमा देखो। व्रत के द्वारा समुद्र में भी रक्षा हो गई और सिंहासन पर बिठाकर देवों ने भी सत्कार किया। यह है, व्रत का सत्कार, गुण का सत्कार। भैया! आप नीचे बैठे, ये और ऊँचे बैठे, ये और ऊँचे बैठे, कौन बिठाये ऊँचा? आपने नहीं बिठाया, व्रत ने बिठाया। **आपका व्रत ही आपको, ऊँचे–ऊँचे बिठायेगा।** जितना ऊँचा व्रत होगा,

उतने ऊँचे पहुंच जाओगे। पाँचों पापों का पूर्णरूप से त्याग हो गया, महाव्रत हो गया। इसलिए **व्रतैः** व्रत छाया देते हैं, कष्ट नहीं देते, इस बात को ध्यान रख लेना, तत्काल में यदि कष्ट हो भी तो तात्कालिक कष्ट हो सकता है। आचार्य भगवन् कहते हैं – जिसका वैराग्य मजबूत होता है, उसे कष्ट महसूस नहीं होता है। जब वैराग्य में कमी होती है, अज्ञान पूर्वक आचरण होता है, तब कष्ट होता है, जब ज्ञान पूर्वक आचरण होता है, तब कष्ट नहीं होता है। यह तो कष्ट निवारण का उपाय है। कितनी महान कारिका है। **'प्रतिपालयतोर्महान्'** महान क्या है? दोनों में महान अंतर, अव्रत जमीन है, व्रत आसमान है, दोनों में महान अंतर है। व्रत अमृत है, अव्रत विषरूप है, दोनों में महान अंतर है। इस अंतर को जानकर के भीतर में श्रद्धा रखना चाहिए। जो व्रती बने हैं, वह महान हैं, जो महाव्रती बने हैं, वह महान है। व्रत हो तो महान हो। तृतीय कारिका आपको ये दर्शा रही है, कि पापाचरण को पूर्णरूप से त्याग करके, व्रतरूप आचरण को आप प्राप्त करते हैं, तो उपलब्धि हैं। चौथी कारिका का पावन प्रसंग, पृष्ठ भूमिका में ये कहती है, कि – भावों का फल

यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्धे किं स सीदति।।4॥

भावः शिवं दत्ते भाव मोक्ष को देता है। पहले थी स्वर्ग की सीढ़ी, अब है, मोक्ष का उपाय, इस मोक्ष के उपाय को हम यथासमय देखेंगे, जिसको मोक्ष पाने की विधि सीखना हो, वह आगे सुने।

॥ ऊँ नमः सिद्धेभ्यः ॥

❑❑❑

4

शिवप्रद भावों से स्वर्ग सहज ही

यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्धे किं स सीदति॥4॥

अन्वयार्थ – (**यत्र भावः**) आत्मा का जो भाव (**शिवं दत्ते**) मोक्ष प्रदान करता है उससे, (**द्यौः**) स्वर्ग (**कियद्दूरवर्तिनी**) कितनी दूर हो सकता है ? (**यः गव्यूतिं**) जैसे जो मनुष्य दो कोश तक (**आशु नयति**) भार को शीघ्र ले जाता है। (**सः**) वह (**क्रोशार्धे**) आधा कोश ले जाने में (**किं सीदति**) क्या दुःखी हो सकता है ? अर्थात् नहीं ।

प्रिय आत्मन् !

तत्त्वज्ञान की पवित्र अभिलाषा, तत्त्वज्ञान की रुचि, जिस जीव में प्रकट हो रही है, वह जीव निकट भव्य है। निकट भव्य का अर्थ यह है कि वह मोक्ष के आँगन में खेल रहा है। श्रुत के पथ में क्रीडा करते हुए हम सभी भव्य जीव आनन्द की जननी, माँ जिनवाणी की पवित्र आराधना करते हुए, इष्टोपदेश के चतुर्थ श्लोक में, प्रवेश कर रहे हैं–

यहाँ मोक्ष की कला बतायी जा रही है, शिव स्वरूप और शिवकार की, विधि बतायी जा रही है, तीसरी कारिका में, स्वर्ग की सीढ़ी बताई थी, चौथी कारिका में, मोक्ष के सोपान हैं। ये मोक्ष की सीढ़ी '**शिवं दत्ते**' शिव को देता है, शिव माने मोक्ष भी होता है, यहाँ मोक्ष ही लेना क्योंकि स्वर्ग की चर्चा पहले कर चुके, '**शिवं दत्ते**' शिव को देता है, मोक्ष को देता है। जब मोक्ष है, तो मोक्ष में होने वाले, सभी अनंत गुण आ गए कि नहीं?

अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतशक्ति, और भी जो अनंतगुण वह सभी गुण शिवं दत्ते, शिव को देता है, कौन देता है? भाव, (कर्ता कारक) कौन था? भाव, '**भावः**

दत्ते', भाव देता हैं। क्या देता है? शिव को देता है।

जो भाव मोक्ष को देने की सामर्थ्य रखता है, स्व शब्द आया था, **'द्रव्यादिस्वादि'** वहाँ पर स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, यहाँ स्वभाव सम्पदा की बात चल रही है। दूसरी कारिका में कहा था, सम्पत्ति होगी, तो मोक्ष मिलेगा। बिना सम्पत्ति वाले को संसार में कुछ नहीं मिलता, देखो कुछ भी चाहिए, तो सम्पत्ति चाहिए। तो द्रव्य सम्पत्ति, क्षेत्र सम्पत्ति, काल सम्पत्ति, भाव सम्पत्ति, तो भाव सम्पत्ति, पर भाव नहीं, स्वभाव सम्पत्ति, **स्वभाव सम्पदा, सबसे महान सम्पदा है।** (सर्वोत्कृष्ट सम्पदा) चक्रवर्ती षट्खण्ड का वैभव त्यागता हैं, विभाव को त्यागने के लिए, स्वभाव सम्पदा को पाने के लिए, विभाव दशा में रखने वाली, विभाव सम्पदा का त्याग करता है। क्या उद्देश्य था चक्रवर्ती का? मुझे स्वभाव सम्पदा की ओर जाना है। राजा ऋषभदेव 83 लाख वर्ष पूर्व तक राजा रहे, लेकिन स्वभाव सम्पदा की प्राप्ति के लिए त्याग किया। भरत चक्रवर्ती के पास नौ निधि, चौदह रत्न आदि सब वैभव था, फिर क्यों त्यागा? स्वभाव सम्पदा के लिए, भाव शिव देगा। शिव का अर्थ आनंद भी होता है, कल्याण भी होता है, मंगल भी होता है, शुभ भी होता है, क्षेम भी होता है, कुशल भी होता है। तिलोयपण्णित्ति में यह सभी अर्थ बताए हैं। तो यहाँ पर मोक्ष, मोक्ष के लिए निज भाव का आश्रय अनिवार्य है।

मोक्ष एक ही क्षण में नहीं होना, मोक्ष का साधकतम करण, चतुर्थ शुक्ल ध्यान में होने वाली, जो भाव परिणति है, वह स्वभाव परिणति मोक्ष का साधकतम कारण है, चौदहवें गुणस्थान के लिए, चौथे शुक्ल ध्यान के लिए, तीसरा शुक्ल ध्यान की परिणति कारण है। और तीसरे शुक्ल ध्यान की परिणति में दूसरे शुक्ल ध्यान की परिणति कारण है। और दूसरे शुक्ल ध्यान के लिए पहले शुक्ल ध्यान की परिणति कारण है। स्वभाव का आश्रय हम अभी से लेना शुरु कर दें, स्वभाव का ज्ञान, स्वभाव का श्रद्धान, अभी से हमें क्यों बताया जा रहा है? कि तुम स्वभाव की श्रद्धा करो, स्वभाव का ज्ञान भी करो? तुम्हें तुम्हारा स्वभाव ही भगवान बनाएगा। व्यक्तित्व का निर्माण दूसरे के गुणों से नहीं होता, अपने ही गुणों से होना है, और कृतित्व का निर्माण भी, अपने ही स्वभाव से होना है। प्रतिपल भाव को बनाना है। अब प्रश्न यह आता है, कि भाव यदि हम जीव के असाधारण भाव ले ले, तो पाँच होते हैं, औदयिक भाव, औपशमिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, क्षायिक भाव पारिणामिक भाव,

आप सब ने बार–बार सुना होगा कि भाव सुधारो, कभी आपके मन में ये आया। कौनसा भाव सुधारो? भाव के भेद तो 53 होते हैं। अच्छा स्वभाव में, तो सुधार होता नहीं है, स्वभाव में कुछ होता ही नहीं, तो आप कौन से भाव को सुधारेंगे? प्रश्न है, कि मैं कौन सा भाव सुध ाारूँ? तो सबसे पहले ये देखो, कौन से भाव से मोक्ष होता है? औदयिक भाव से मोक्ष होता क्या? नहीं होता। पारिणामिक भाव से,मोक्ष नहीं होता। जो सुधार अपन करते हैं, क्षायोपशमिक भाव में सुधार होता है, और क्षायिक भाव जब प्रकट होता है, तो जीव को मोक्ष होता है। अब क्षायिक भाव में सुधार की संभावना नहीं है, वो तो प्रकट होगा, तब क्षायिक बनेगा और पारिणामिक भाव में आप कुछ कर नहीं सकते हो, औदयिक भाव तो उदय से आ ही गया, वहाँ पर आपका कोई काम नहीं। आप मनुष्य गति में हो, क्या सुधार करोगे? वह तो उदय में चल रही है, आने वाला कोई भी आयेगा, उसका क्या कर सकते हो? उदय सें सुधार नहीं है। मात्र एक क्षायोपशमिक भाव ऐसा है, जिस भाव में सुधार होता है। आप समझ रहे, आप भाव सुधार करने की बात तो पल–पल सुनते हैं, कौन सा भाव सुधारना है? पाँच भाव में, सिर्फ एक सुधारना है। क्षायोपशमिक भाव की दशा दो हैं। देखना, कर्म का क्षयोपशम जीव को नरक भी ले जा सकता है, और कर्म को क्षयोपशम जीव को स्वर्ग और मोक्ष का कारण भी बनता है। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नरक का कारण बन सकता कि नहीं? आप स्वयं दिमाग लगाइए, आखिर कैसे बनेगा ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नरक का कारण? कुंदकुंद स्वामी ने स्पष्ट लिखा **'णाणं विणासन्ति'** ज्ञान विनाश करता है। क्षयोपशम प्रबल है, लेकिन ज्ञान कैसा है? क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद हैं, उन अठारह भेद में, तीन मिथ्याज्ञान भी हैं, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान तथा 363 मत ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से चले की क्षयोपशम के अभाव में चले? इस बात को अच्छी तरह समझ लेना, की ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम, अपने लिए और दूसरे के लिए नरक का कारण भी, बन सकता है। बिना ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम 363 मत नहीं चले। इसलिए सिर्फ क्षयोपशम की ओर मत झुक जाना, क्षयोपशम के साथ यह भी देखना पड़ेगा कि इसका ज्ञान सम्यक् है कि मिथ्या है? भाव शिव को भी देता है। लेकिन यदि वही भाव, मिथ्या विभाव हो गया तो, स्वभाव तो शिव को देता है। और विभाव। सम्यक् विभाव और दूसरा मिथ्या विभाव, जो मिथ्या विभाव रूप हो गया। कुमति, कुश्रुत कुअवधि रूप हो गया,

तो पर्वत कहाँ पहुँच गया? बोलो? ज्ञान नहीं था? ज्ञान का क्षयोपशम था, लेकिन दुरुपयोग किया। सातवें नरक अज्ञानी नहीं जाता, क्योंकि अज्ञानी पाप कहाँ से करेगा? पाप करने के लिए भी ज्ञान चाहिए और क्षयोपशम चाहिए, चोर को चोरी करने के लिए क्षयोपशम चाहिए। परिग्रह के संचय के बिनो यह कार्य नहीं होते। बुद्धि पूर्वक है, अबुद्धि पूर्वक दशा सातवें गुणस्थान में, छठवें गुणस्थान में सब बुद्धिपूर्वक, अध्यात्म की अपेक्षा सातवें गुणस्थान में अबुद्धिपूर्वक, सिद्धांत की अपेक्षा दसवें गुणस्थान से ऊपर अबुद्धिक पूर्वक, इस तत्त्व को समझो। कि बुद्धि पूर्वक, ये नाना प्रकार के पाप और पाप के साधन जुटाये जाते हैं, बुद्धिपूर्वक, तो ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम है, कि नहीं? जिस क्षयोपशम के आधार पर, वह धन कमा रहा है, उस धन के साथ पाप भी कमा रहा है, तो वह ज्ञान भाव है, कि नहीं? बोलो जीव का असाधारण भाव जीव को छोड़कर किसी में पाया नहीं जाता है, लेकिन वही भाव मेरे लिए नरक का भी कारण बनता है। इसलिए जो नरक, तिर्यंच गति का कारण है, अनन्त दुःख का कारण है ऐसा मिथ्याज्ञान है। वस्तुतः जब–जब कहा जाता है, भाव सुधारो, भाव सुधारो, तो सिर्फ व्यक्ति जब गुस्सा कर रहा हो, तो उससे कहेंगे, भाव सुधारो, सिर्फ अकेले गुस्सा करने वाले से कहते भाव सुधारो, भाव सुधारो और अन्य भावों पर तो किसी की नजर ही नहीं है। मिथ्या बिगड़ा हुआ ज्ञान है, कुमतिज्ञान सौ पापों में पहला पाप है। मतिज्ञानावरण, 100 पापों में पहला पाप है, इस भाव को कौन सुधारेगा? भाव किसका है? मेरा। सुधारेगा कौन? मैं। तभी तो आचार्य कह रहे हैं, भाव शिव को देता है, **'कियद्दूरवर्तिनी'** तो स्वर्ग कितना दूर है? जितना कुमतिज्ञान से सुमतिज्ञान दूर है। जितना कुश्रुत ज्ञान से श्रुतज्ञान दूर है, जितना कुअवधिज्ञान से सुवधिज्ञान दूर है। आपका ही भाव मोक्ष देता है, और आपका ही भाव नरक भी देगा, मोक्ष देने के लिए, क्षायिकभाव चाहिए, स्वर्ग के लिए सुधरा हुआ क्षायोपशमिक भाव चाहिए। क्षायोपशमिक भाव के 18 भेद हैं–

ज्ञानाज्ञान दर्शन–लब्ध्य–श्चतुस्त्रित्रि–पञ्च भेदाः
सम्यक्त्व–चरित्र–संयमासंयमाश्च॥5/2॥(त.सू.)

ज्ञान चार, अज्ञान तीन, तो तीनों अज्ञान–कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान, ये क्षायोपशमिक भाव के भेद हैं और ये भाव आपके असाधारण भाव हैं, इसलिए सबसे पहले

सुधार। मशीन कहाँ बिगड़ी? गाड़ी कहाँ अटकी? सबसे पहला भाव है, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान। ज्ञान को मिथ्या करने की शक्ति भी, जीव में ही है। यानी स्वर्ग ले जाने वाली शक्ति भी तुम्हारे पास है और नरक ले जाने वाले ज्ञान की शक्ति भी तुम्हारे पास है, सिर्फ ज्ञान सुधारना है। भैया! आपको कहाँ जाना? पहले ज्ञान में लाइए। अब गाड़ी कैसी घूमेगी, स्टेयरिंग कैसी घूमेगी? बोलो। पहले चारित्र सुधरता है, कि पहले ज्ञान? ड्राईवर को पहले आप स्थान बताते हो, कि कहाँ जाना है? उसके ज्ञान में फिट कर दिया, अब ड्राईवर वैसा चलेगा। उसी तरह आत्मा ड्राईवर है, शरीर गाड़ी है, यह शरीर कैसी चेष्टा करेगा? जैसा आत्मा रूपी ड्राईवर को आप बता दोगे। आप बताओंगे और ड्राईवर ही भ्रमित हो, तो गाड़ी तो। .....इसलिए सबसे पहले ड्राईवर को, तो सही पता हो, की, कहाँ जाना? मोक्ष जाना तो क्षायिक भाव, स्वर्ग जाना तो क्षायोपशमिक भाव, के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान ये नरक का कारण बन सकता है। इसलिए सुधार अब सुधार के साथ, यदि मतिज्ञान आदि, आपका मंद है तो हम अभ्यास के बल पर प्रकट कर सकते हैं। उसको विकसित कर सकते हैं, उसमें आप विकास भी कर सकते हैं, मिथ्या हो, तो उसको सम्यक् करो और सम्यक् हो, तो उसको विकसित करो। अभ्यास के बल पर। आप जब से धर्म सभा में, बैठे होंगे, तब से एक बात सुनी होगी, भाव सुधारो, आज आप किसी भी क्षेत्र में जाइए, सबसे पहले व्यक्ति के माइण्ड को कन्वर्ड किया जाता है और उसका माइण्ड जिस ओर कर दोगे, उसकी जीवन शैली वैसी बनेगी। सबसे पहले अपने ज्ञान को सम्भालिए, यदि ज्ञान मिथ्या होगा, तो पूरा जीवन बेकार। मिथ्याज्ञान पहले नम्बर रखा है। इसलिए सुधार के क्षेत्र में ध्यान रखो। भाव शिव को देता है, उदाहरण दे रहे हैं, जो व्यक्ति, **गव्यूति** अर्थात् दो कोश प्रमाण किसी वस्तु को ले जा सकता है। क्या वह व्यक्ति आधे कोश ले जाने में कष्ट उठायेगा? अर्थात् तुम्हारे भावों की जो निर्मलता मोक्ष दे सकती है, यदि मोक्ष इस काल में नहीं होता है, तो क्या वह भाव स्वर्ग नहीं देगा? देगा। क्या करो? स्वभाव का आश्रय लो। स्वभाव के आश्रय की प्रेरणा दी जा रही है कि तुम्हारा वह भाव तुम्हें स्वर्ग देगा। अब आगे चलो व्रत की बात करते हैं, व्रत भाव है कि नहीं है? क्षायोपशमिक भाव है व्रत, अव्रत पाँच पाप रूप है और व्रत भाव रूप है। व्रत सराग संयम है, ये भी क्षायोपशमिक भाव है, संयमासंयमाश्च में सराग संयम और

महाव्रत। संयम, यह आपके भाव हैं। अकेले भाव में सोचले गुस्सा मत करो, तो व्रत को ध
ारण करना भी क्षायोपशमिक भाव है, इन भावों को भी प्रकट करोगे, कि नहीं करोगे? कहने से मिल जाएगा भाव, आचार्य भगवन् ने एक शब्द में कह दिया भाव, लेकिन भाव के अठारह भेद भी समझना पड़ेगे। उन भावों में तीन भाव मिथ्या– ज्ञान छोड़ने के योग्य है, उसके पश्चात् चार सम्यग्ज्ञान है, वह ग्रहण के योग्य हैं। उनको आप चाहे, श्रुत के अभ्यास से ग्रहण करो, अभीष्टज्ञान उपयोग से ग्रहण करो, निरंतर श्रुत का अभ्यास करो, गुरुजनों का समागम करो। जिन्होंने शास्त्रों का अभ्यास किया, उनकी संगति करो, इस तरह से **मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्ययज्ञान,** फिर जो दर्शन है, चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अविधदर्शन, ये तीन क्षायोपशमिक दर्शन है। अब आपका चक्षु दर्शन इसलिए देवसेन आचार्य ने तत्त्वसार में लिखा है।

'सुसव्व सामग्गी मोक्खट्ठं'

उनसे पूछाँ आँख चक्षुइन्द्रिय किसके लिए? बोले आँख मोक्ष के लिए, सम्यग्दृष्टि की आँख, संयमी की आँख, मोक्ष के लिए है, और वही मिथ्यादृष्टि की आँख, आरम्भ–परिग्रह में लगी हुई आँख, नरक के लिए जहाँ आँख लग जाये, यदि वही आँख मोक्ष मार्ग में लग गई, तो मोक्ष के लिए, और वहीं आँख, बहुत आरम्भ–परिग्रह में लग गई तो नरक के लिए पर यहाँ चक्षुदर्शन निर्दोष है; प्रवृत्ति ज्ञानाधीन है।

'सुसव्व सामग्गी मोक्खट्ठं'

ये बात कहने का साहस, आचार्य देवसेने जी ने तत्त्वसार में किया है। ये आपका दर्शन जो है, क्षायोपशमिक भाव है, ये मोक्ष का साधन है, इस आँख के बिना आप ईर्या समिति का पालन नहीं कर सकते। आचार्य भगवन् शांतिसागर जी ने समाधि क्यों ले ली? आँखों की रोशनी कम होती जा रही थी। एषणा समिति का पालन नहीं हो सकता था इसलिए। जब तक आँख है, तब तक तुम संयम साधलो। ये आपका चक्षु दर्शन, आपको मोक्ष का साधन है। अब मोक्ष के साधन का आप दुरुपयोग करें तो करें। हमने भव–भव में भावना भायी थी, कि मोक्षमार्ग मिले, मोक्षमार्ग की सामग्री मिले। इसलिए इंद्रियाँ हमारे लिए मोक्ष की सामग्री हैं। अचक्षु दर्शन, चक्षु इंद्रिय को छोड़कर, स्पर्शन, रसना, घ्राण, कर्ण। ये शेष चार इंद्रिय भी आपके लिए मोक्ष का कारण हैं। सुधारना तो इन्हीं को है। आप चक्षु दर्शन

से गलत देख रहे, सही देखना प्रारम्भ कर दो सुधर गया पाप, अचक्षु दर्शन का आप गलत उपयोग कर रहे हैं, आप सदुपयोग करना प्रारम्भ कर दो। अवधिदर्शन देवों के होता है, तो हम सुधार क्या करें? तो जहाँ हम गलत कर रहे, वहाँ हम सुधार करेंगे। तो पहले, हम ये तो जाने की हम गलती कहाँ कर रहे? चक्षु दर्शन की गलती चल रही है, कि अचक्षु दर्शन से हम गलत कर रहे हैं। फिर लब्धि, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, ये दान लब्धि क्षायोपशमिक, दान, ये दान आपके मोक्ष का कारण बन रहा है। दान का भाव परम्परा से मोक्ष का कारण है, दान लब्धि आपकी परम्परा से मोक्ष का कारण है। दान, लाभ, भोग, अकेला इंद्रियों का ही भोग नहीं होता है श्रुत का भी भोग होता है, चेतन का भोग। आचार्य विद्यासागर जी ने एक किताब लिखी, ब्रह्मचर्य चेतन का भोग दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य और **च**, च माने, सम्यक्त्व और चारित्र ये क्षायोपशमिक भाव है, यदि ये मिथ्या हो, तो इसको सुधार लो, सम्यक् कर लो, सुधारो भाव, सम्यग्दर्शन भाव है, सम्यक्चारित्र भाव है, सम्यग्ज्ञान भाव है, कौन से भाव में सुधार? ये तीन भाव में सुधार लाना। अब कहो कि औदयिक भाव में क्या? तो कर्म का उदय अब आ ही गया है, तो उदय मे सुधार नहीं होता, और हम घबराते कब हैं? उदय में, अब तो आ ही गया, सुधार तो क्षयोपशम में है। भैया! उपशम तो सुधरा हुआ है। कौनसी त्रुटि है? उपशम तो सुधरा हुआ है, उपशम तो निर्मल है, स्वच्छ पानी है। मात्र यह कह सकते हैं, कि क्षायिक भाव और औपशमिक भाव में इतना अंतर है, कि एक स्फटिक मणि के बर्तन में रखा हुआ, निर्मल जल के समान है, इसकी तलहटी में कोई कचड़ा नहीं है। लेकिन उपशम भाव ऐसा है, उसके तल में कुछ कचड़ा बैठा है। औपशमिक का काल अर्न्तमुर्हूत उसके बाद........। लेकिन यहाँ पर क्षायोपशम का काल तो अधिक है। आज जो ज्ञान सुधार लोगे, तुम्हारा छियासठ सागर तक सुधरा रहेगा, आज सम्भल गए, तो छियासठ सागर तक सम्भले रहोगे और यह तुम्हारा सम्भला हुआ ज्ञान, तुम्हारे सिद्धालय जाने में कारण बन जायेगा, क्षायिक भाव में साधन बनेगा। क्यों? गुरुवर बोलते हैं, श्रुतज्ञान केवलज्ञान का पिता है। सम्भालना किसको है? श्रुतज्ञान को, और उत्पन्न क्या होगा? केवलज्ञान। श्रुतज्ञान से ध्यान होता है, और ध्यान से केवलज्ञान होता है। इसलिए सम्भालना किसको है, बिगड़ा कौन है? बिगड़ाज्ञान कुश्रुत कहलाता है, कुश्रुत ज्ञान क्या है? बिगड़ा हुआ श्रुतज्ञान। कुमतिज्ञान क्या है? बिगड़ा हुआ मतिज्ञान, तो सुधारना

किसको है? जो बिगड़ा है हमारी दृष्टि इस पर तो जाये, तो बिगड़ा क्या है? इस बात को इस रहस्य को हमने इसमें देखा है निष्कर्ष रूपेण चार क्षायोपशमिक ज्ञान,सराग संयम, संयमासंयम, पंच लब्धियाँ दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्य इन दस भावों में विकास करो। यह भाव विकास ही आत्म विकास है। इस रहस्य को आप अच्छी तरह समझेंगे, शेष विषय को हम आगे देखेंगे।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

❑❑❑

5

स्वर्ग का सुख कैसा –

हृषीकज–मनातंकं, दीर्घ कालोपलालितम्।
नाके नाकौकसां सौख्यं, नाके नाकौकसामिव।।5।।

अन्वयार्थ– (**नाके**) स्वर्ग में (**नाकौकसाम्**) देवों का (**हृषीकजं**) इन्द्रियजन्य (**अनातङ्क**) दुःख रहित और (**दीर्घकाल उपलालितम्**) दीर्घकाल तक सेव्य (**सौख्यं**) सुख (**नाके**) स्वर्ग में (**नाकौकसाम् इव**) देवों के समान ही होता है।

प्रिय आत्मन् !

स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव, इसको आचार्य ने सम्पदा कहा है, और बताया, की स्वभावरूपी सम्पदा होने पर, जीव परमात्म अवस्था को प्रकट कर लेता है। पूर्व कारिका में हमने देखा, कि **भावा : शिवं दत्ते** जो जीव का निज भाव है, वह निज भाव जीव को शिव देता है। यह जो आनंद है, वह निज भाव जीव को शिव देता है, यह जो आनन्द है, वह आनन्द जो मोक्ष अवस्था में, आनन्द है, वह आनन्द निज भाव देता है, पर भाव नहीं, और निज भाव विभाव रूप है, तो नहीं? निज भाव जब स्वभाव रूप होता है, तभी वह आनन्द देता है, शिव को देता है। इस तरह आचार्य भगवन् ने सूत्र कहे, स्वभाव की आराधना, जो शिव को दे सकती है, मोक्ष को दे सकती है, उस भाव के द्वारा स्वर्ग कितना दूर है? ये भी बताया, अर्थात् साधना तो जीव को, मोक्ष की ही करना है। यदि कोई जीव विचार करे, कि इस काल में मोक्ष नहीं होता है, तो आचार्य भगवन् कहते हैं, मोक्ष मार्ग होता है, उस मोक्षमार्ग की साधना करो। अग्रिम कारिका में कहा जाता है, कि आखिर स्वर्ग है क्या? जो जीव स्वर्ग गये, यह तो निश्चित है। जन्म के साथ मृत्यु अविनाभावी है और हमारी

स्थिति ऐसी है, जैसे लकड़ी के दो छोर में लगी हुई आग ।

ज्यों पोली लकडी के भीतर, कोई कीट रहे।
उस लकड़ी के ओर–छोर में, इकदम आग लगे।।
उसी कीट सा मैं दु:खियारा, सद्गुरु जलधर हो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो।। स.भ. (212)

लकड़ी पोली हो, उस पोली लकड़ी के बीच में कीड़ा प्रवेश कर जाए और दोनों छोरों में आग लग जाए, अब उसकी क्या स्थिति होगी? वहीं स्थिति अपनी है, एक ओर जन्म की आग लगी है। दूसरी ओर मरण की आग लगी है। ऐसे में यह जिनवाणी का उपदेश, जलधर का काम करता है, दोनों छोरों मे ंआग लगी बीच में कीड़ा है, यदि उसी समय अचानक बादल बरस जाये, तो उस समय भी, उसके जीव की रक्षा हो जाती है। उसी तरह यह जिनवाणी जलधर के तुल्य है, जहाँ ज्ञान का जल बरस जाता है, यह दोनों आग बुझ जाती है, जन्म की आग भी और मरण की आग भी बुझ जाती है। आचार्य भगवन् ने बताया कि वह योग्य उपादान आपके भीतर है, जो आपको परमात्मा बना सकता है। आगे पूज्यपाद आचार्य भगवन्, स्वर्ग के सुखों की वांछा नहीं रखते हैं यह स्थिति है, जब मनुष्य आयु समाप्त होगी और समापन के पहले भगवन् कोई न कोई नवीन आयु का बंध होगा, सम्यक्दृष्टि जीव है तो देव आयु को बांधेगा, लेकिन सम्यक्दृष्टि जीव वहाँ रहकर भी, पूर्व में किए गये तत्त्व अभ्यास में रत होगा। तत्त्व अभ्यास, वह स्वर्ग में भी नहीं छोड़ेगा। वहाँ पर भी नंदीश्वर द्वीप, पंचमेरू आदि, की वंदना करने जाऊँगा। आचार्य भगवन् जिनसेन स्वामी ने पंचास्तिकाय टीका में लिखा, कैसा हर्षित होता है, सम्यक्दृष्टि जीव? **'तं इदं समवशरणं'**

वह यह समवशरण है, जो मैंने पूर्व में सुना था, ओ हो....। वह यह महामुनिराज हैं, जो मैंने पूर्व काल में सुने थे। ये सम्यक्दृष्टि जीव, यहाँ का श्रुत अभ्यासी जीव, यहाँ का देशव्रती जीव, महाव्रती जीव,जो स्वर्ग में जाता, तो स्वर्ग में कांताओं के सुख के बारे आचार्य नहीं बता रहे, देवियों के सुख की चर्चा नहीं है, वह जो जीव है, तीर्थंकर भगवान के समवशरण मे प्रत्यक्ष दिव्य ध्वनि का रसपान करता है। रिद्धिधारी मुनिराजों का समागम और दर्शन करता है। वह लाभ जो मिला है। इस भव के साधे गए तप और व्रत के फल से और उस समय जो तीर्थंकर की दिव्यध्वनि मिलेगी। उस कारण को बनाकर के जीव,

जब देव आयु से च्युत हो कर जीव मनुष्य पर्याय में आता है, तो तीर्थंकर की दिव्य–ध्वनि, उसे कारण रूप बनती है और इस भव में व्रत को धारण कर लेता है, इसलिए कुंदकुंद भगवान ने लिखा कि –

अज्ज वि तिरयण सुद्धा, अप्पा झाए वि लहइ इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।77॥ (मोक्खपाहुड़)

आज भी तीन रत्नों से शुद्ध, रत्नत्रय से शुद्ध मुनिराज, आत्मा का ध्यान करके, इन्द्र पद को, या लौकान्तिक पद को पाकर के अपनी आयु वहाँ पर धर्मध्यान में बिताकर के वहाँ से च्युत होते हैं, और मुनिराज बनकर निर्वाण को पा सकते हैं। तो जो आज की साधना है, यह मोक्षमार्ग की कारणभूत साधना, आगे के मार्ग को प्रशस्त करती है और **छोटी उपलब्धि में जो आनन्द आता है, वह बड़ी उपलब्धि के लिए प्रेरणा कर देता है।** दो तरह के जीव होते हैं, एक तो वह है, जो स्वर्ग में जाकर के रम जाते है। जिन्हें वैराग्य नहीं था, और दान आदि के प्रभाव से स्वर्ग में चले गए, तो वहाँ पर देवी आदि का समाचार पाकर के, उसमें लीन हो सकते हैं और सम्यक्त्व भी नहीं था, मिथ्याज्ञान के कारण वहाँ रम जाते हैं। लेकिन उनमें भी कुछ पुण्यवान ऐसे होते हैं, कि जो अन्य सम्यक्दृष्टि देवों की संगति में, समवशरण आदि में जाकर के, सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते हैं। तीर्थंकर के दर्शन आदि को पाकर के, नंदीश्वर आदि के महान दर्शन पाके वहाँ भी सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसी स्वर्ग की स्थिति है। आचार्य भगवन् ने बताया कि वहाँ पर इंद्रिय जनित सुख होता है, अब स्वर्ग में क्या है? इंद्रिय जनित सुख है, वस्तुतः इंद्रिय जनित सुख सच्चा सुख नहीं है, वह सुखाभास ही है। जैसे आपको घर पहुँचने पर आनन्द आता है, वैसा प्रतीक्षालय में आनंद नहीं आता है, उसी तरह जो सुख वीतराग अवस्था का सुख है, वह सुख इंद्रिय सुख में नहीं है। लेकिन जो नरकादि के दुख है, जैसे कोई धूप में खड़ा है, वह प्रतीक्षालय में ठहर जाए, तो धूप के दुःख से बच गया, इसलिए सुखी है। लेकिन जो घर पर पहुँचने के बाद उसे सुख होता है, वह सुख उसे प्रतीक्षालय में नहीं है। उसी तरह जो सुख सिद्ध अवस्था में है, वह स्वर्ग में नहीं है, स्वर्ग का सुख प्रतीक्षालय की तरह है, लेकिन प्रतीक्षालय में भी ज्यादा इंतजार करना पड़े, तो बड़ा दुःख होता है। वहाँ सौधर्म इंद्र विचार करता है–ओ हो! मेरी देव आयु

कब पूर्ण हो, और कब मैं नर भव के सार रत्नत्रय को धारण करूँ। मैं इस देवायु में कब तक रहूँगा? जब तक मेरी देव आयु है, तब तक मैं उस रत्नत्रय से वंचित हूँ। उस तत्त्व ज्ञानी की चिंतन धारा निहारो कि–स्वर्ग के वैभव में, वह रम नहीं रहा, उसके भीतर जिज्ञासा क्या है? की यह देवायु कब पूर्ण होगी, और कब मैं, नर भव के सार रत्नत्रय को धारण करूँगा? मेरा लक्ष्य तो वह है, जैसे कोई दीक्षार्थी हो, तो उसे लगता है, ये दिन कब बीते, और जल्दी मेरी दीक्षा सम्पन्न हो जाए, कब मैं संयम को धारण कर लूँ? दीक्षा के संस्कार कब हो जायें, दीक्षा के लिए साधक बैठा हो, तो ऐसा लगता है, वह एक–एक क्षण का विलम्ब भी सुहाता नहीं है, उसी तरह सौधर्म इंद्र सम्यक्दृष्टि जीव को स्वर्ग में रहते हुए पर भी स्वर्ग नहीं सुहाता, वह तो नर भव के रत्नत्रय को चाहता है, कब मैं मुनिराज बनूँ? वह क्षण कब आ जाये?

हृषीकज, स्वर्ग का **सुख** है, इंद्रिय जनित सुख है, इंद्रियों से उत्पन्न सुख, दूसरा कैसा है? वस्तुतः इंद्रिय जनित सुख कैसा है? सिर्फ ये तात्कालिक बीमारी का प्रतिकार, दो तरह का इलाज होता है, एक तो मेनेजमेण्ट दवाई देते रहो, व्यक्ति जीता रहेगा, और एक होता है, परमानेन्ट इलाज आचार्य कहते हैं– यह इलाज परमानेन्ट नहीं है। इंद्रिय सुख परमानेन्ट इलाज नहीं है। मात्र मैनेजमेंट बना दिया, कि यह गोली खाते रहो और चलते रहोगे, जीते रहोगे, आचार्य भगवन् ने कहा जैसे किसी को खुजली हो जाती है। खुजली खुजाते समय व्यक्ति आनंद मनाता है, लेकिन बाद में दुखकारी है, उसी तरह इंद्रिय सुख, अर्थात् यह तो दुखकारक ही है, लेकिन जो नरकादि के दुख हैं, उसकी अपेक्षा यहाँ सुख बताया। वह **अनातंकं** आतंक बीमारी आदि से रहित है। स्वर्ग का देव बीमार नहीं होता, ध्यान रख लेना, लेकिन यह भी ध्यान रखो बीमारी से रहित नहीं होता, क्योंकि जहाँ जन्म है, जहाँ मरण है, क्या जन्म–मरण से रहित है क्या? नहीं है। तो जो जन्म–मरण से रहित नहीं है, वह बीमार है। लेकिन आपकी तरह या हमारी तरह औदारिक शरीर में पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवें हजार पाँच सौ चौरासी रोग उत्पन्न होने की क्षमता है, वह वैक्रियिंक शरीर में नहीं है, क्यों धातु–उपधातु नहीं है, शरीर में, तो उस जनित रोग नहीं है, लेकिन वहाँ पर भी मिथ्यादृष्टि को अज्ञान जनित संक्लेष है ही, तो यहाँ पर व्रत के कारण सम्यक्दृष्टि जीव की विवक्षा करके बताया जा रहा है, दीर्घकालीन जो सुख है सागरों पर्यंत

वहाँ सुख है। यहाँ व्रत के प्रभाव से बताया जा रहा है, कि व्रत के साथ हुए जो, राग भाव किया था और राग भाव के साथ जो आयु का बंध किया था, उसके कारण जीव स्वर्ग में पहुँचा है तो जीव इंद्रिय सुख को पाता है, और बीमारी रहित होता है, और उसका सुख लम्बे काल तक चलता है, सागरों पर्यन्त चलता है, ऐसा सुख कहाँ होता है? स्वर्ग में ही होता है। किसके समान होता है? तो देवों का सुख देवों के ही समान होता हैं। क्यों? पूज्यपाद आचार्य भगवन् का रहस्य, उस सुख की मैं तुलना नही ंकरना चाहता, क्योंकि मेरा लक्ष्य स्वर्ग का सुख नहीं है, मेरा लक्ष्य तो मोक्ष का सुख है। मुझे आपके लिए शिव पद की चर्चा करना है, इसलिए स्वर्ग का सुख बाधा से सहित है। इत्यादि बातों को आचार्य भगवन् कहेंगे कि वह भी सदा रहने वाला नहीं है, विच्छेद सहित है, तो जो स्वर्ग में सुख है, सम्यक्दृष्टि जीव इंद्रिय सुख को पाता है, चिरकाल तक रहता है, ऐसी बात यहाँ पर बताई है। वह सुख, आप वहाँ जाकर के अनुभव करेंगे, क्योंकि मनुष्य अवस्था में, स्वर्ग के सुख का अनुभव नहीं होगा। लेकिन आगम के आधार पर, यह भी समझले कि आत्मा का जो सुख है, वह सुख अनुभव का सुख है, वह सुख इंद्रिय जनित सुख से अनंत गुना श्रेष्ठ कहलाता है और वह सुख जो मनुष्य पा सकता है, वह देव नहीं पा सकता। इसलिए कोई सोचे कि मनुष्य अवस्था के सुख को त्याग करके, जल्दी समाधि करके, स्वर्ग को पा जाऊँ, तो नहीं। जो आपके लिए यहाँ पर साधना, आत्मा की आराधना और आत्मा के अनुभव से सुख होता है। वह सुख कर्म की निर्जरा का कारण बनता है। समन्तभद्र स्वामी ने लिखा –

'पापबीजे सुखे अनास्था'

अब आचार्य भगवन् ने क्यों नहीं लिखा? क्योंकि आचार्य भगवन् पूज्यपाद जी की दृष्टि है, पाप रूप सुख है, इतना होने के बाद भी, क्या सौधर्म इंद्र को पाप बंध नहीं होगा? होगा। जो भी इंद्र है, जो भी इंद्रिय सुख को भोगेगा, उसको पाप का बंध होना ही है। इसलिए अधिक लालसा भी मत पाल लेना, अन्यथा जीव उस सुख की चाह में निदान बंध कर बैठे। इसलिए पूज्यपाद स्वामी ने इसका ज्यादा वर्णन नहीं किया। भैया! हमारा लक्ष्य मोक्ष है।

❑❑❑

6

इन्द्रिय सुख–दु:ख भ्रान्ति मात्र

वासना मात्र मेवैतत्, सुखं दु:खं च देहिनाम्।

तथा ह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि।।6।।

अन्वयार्थ – (**देहिनाम्**) संसारी जीवों के (**एतत् सुखं**) ये इन्द्रिय सुख (**च**) और (**दु:ख**) दुःख (**वासना मात्रं एव**) भ्रम मात्र हैं (**तथा हि**) इसलिए (**एते भोगा:**) ये इन्द्रियों के भोग (**आपदि**) आपत्ति के समय (**रोगा: इव**) रोगों की तरह (**उद्वेजयन्ति**) व्याकुल करते हैं।

आचार्य भगवन अगली कारिका में कहते हैं, वह सुख कैसा है? और स्पष्ट कर देते हैं, **वासना मात्र** है। वासना कहते हैं, परद्रव्य के संस्कार को, और परद्रव्य के संस्कार से उत्पन्न सुख है, यानी पराश्रित सुख है। सुख तो आत्मा का गुण है, और आत्मा का गुण आत्मा से प्राप्त करने वाला सुख है। देवों का सुख वासना मात्र, कल्पना मात्र है। **वासना परद्रव्यगत: संस्कार वासनां जैसे** कागज है, उस कागज पर इत्र डाल दिया, तो वह सुगंध कागज की नहीं है। वह इत्र की है। उसी तरह जो सुख है, वह आत्मा का सुख नहीं है, यह भ्रम की स्थिति है, और मोह के अधीन हुआ जीव, इंद्रियों सुखों में लीन होता है। आचार्य भगवन् पूज्यपाद जी को इष्ट नहीं था। इसलिए तत्काल ब्रेक लगा दिया। वहाँ बताया स्वर्ग में सुख मिलता है और तत्काल ये ब्रेक लगा दिया, की नहीं। वह कल्पना ही है, वासना मात्र है, पर द्रव्य से उत्पन्न हुआ सुख है, स्व द्रव्य से आत्मद्रव्य से, उत्पन्न हुआ सुख वहाँ नहीं है। इंद्रियों से उत्पन्न जो सुख है, वह वासना मात्र है, **सुखं दुखं च देहिनाम्**। प्राणियों का

चाहे सुख हो, चाहे दुःख हो, दोनों कल्पना है। क्यों? क्योंकि जीव मोह और अज्ञान में, जब जीता है, तो इससे दुःख उत्पन्न होता है, आचार्य भगवन् ने कहा, अभी आपके लिए प्रकाश नजर आ रहा, आँख हम बंद कर लें, अब क्या दिखेगा? सिर्फ अंधकार, उसी तरह जो अज्ञानी जीव होता है, उसे सुख नजर आता है, ज्ञानी जीव को दुख नजर आता है। तो यहाँ पर सुख और दुख, मोह जनित अज्ञान, कार्य करता है, और इंद्रिय सुख को भी सुख मान लेता है, जबकि यथार्थ में वह दुखी है, अज्ञान उसका चारित्र मोह से सहित है। **राग छाया हुआ**, इस कारण पर में सुख मान रहा है, वह राग जहाँ हटे, तो फिर निज की ओर जीव बड़े। **'सुखं दुःखं च देहिनाम्'** संसारी जीवों का चाहे सुख हो, या दुख हो, वह सिर्फ कल्पना मात्र है। सुख और दुख अपने–अपने माथे की उपज है। यहाँ यह दर्शाया, की यह भी भीतर की आकुलता, बार–बार अंदर में जो आकुलता होती है, वह है, और कुछ भी नहीं है। वस्तुतः यह भोग, रोग के समान ही है, आज जो भोग सुहाने लगते हैं, वह ही रोग का कारण है। ऐसा आचार्य भगवन् का मांगलिक अभिप्राय है। इस स्थिति को देखकर के जीव सुख में न रम जाये, यह भी कहना है कि तुम स्वर्ग जाओगे, और ये भी कहना है, **वहाँ सुख में रम नहीं जाना, स्वर्ग जाने के बाद आपका ध्येय आपसे चूक न जाए।** जैसे राम कृतांतवक्त्र की दीक्षा में कारण बने और कृतांतवक्त्र की जब दीक्षा हुई, तो राम ने एक ही शब्द कहा था– यदि मुझसे पहले मोक्ष ना जाओ तो मेरा ध्यान रख लेना और वह जीव, राम के वैराग्य में कारण बना। उसी तरह स्वर्ग में जाने के बाद यह ध्यान रख लेना, कि स्वर्ग का सुख कल्पना मात्र है, परद्रव्य के संस्कार से आया है, इसलिए सच्चा सुख तो आत्मा में ही है। इसलिए इस लक्ष्य को मत भूल जाना, अन्यथा स्वर्ग में जाने के बाद तुम यहाँ भूल जाआगे, और जो भूल गये, तो वह जीव कहाँ पहुँच जाते हैं? मिथ्यादृष्टि जीव देव हो करके एक इंद्रिय आदि की पर्याय में चले जाते हैं। इस स्थिति को हम यहाँ निहारते हैं, कि वह जीव एकेन्द्रिय आदि की पर्याय में क्यों चला गया? क्योंकि वहाँ लीन हो गए। यदि स्वर्ग में भी लीन हो गए, सुखों में लीन हो गए, तो वह सुख आपके अनन्त दुख का भी कारण बन सकता है इसलिए **'श्रुत में लीन होना, सुख में लीन मत होना'**

'पाप बीजे सुखे अनास्था'

वह पाप बीजरूप सुख है, उस सुख में आस्था भी नहीं रखना, ये सम्यक्दृष्टि का कर्तव्य है। ऐसी स्थिति को जीव प्राप्त करता है।

हृषीकजमनातङ्कं – दीर्घकालोपलालितम्।
नाके नाकौकसां सौख्यं, नाके नाकौकसामिव।।5॥

वासना मात्र मेवैतत्, सुखं दु:खं च देहिनाम्।
तथा ह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि।।6॥

अब देखिए, स्थिति यह है, जो स्वभाव है, यह तो इतना हो गया, कि व्रत से जो चारित्र है, चारित्र तो मोक्ष का ही कारण है, लेकिन चारित्र के साथ जितने अंश में राग प्रवर्तता है, वह राग देव आयु के बंध में कारण बनता है। प्रश्न यह आ गया, सम्यग्दर्शन देव आयु का कारण है ? बोले नहीं। सम्यग्दर्शन तो मोक्ष का ही कारण है, लेकिन सम्यग्दर्शन कुछ अंशों में है, शेष अंशों में राग भी होगा। आत्मा अखण्ड है, लेकिन आत्मा के जितने अंश में, सम्यक्दर्शन है, शेष रिक्त अंश में जो राग है, भक्ति राग है। और जिस जीव का चलचित्र आदि का है, वह उसको खोज लेता है। जो जीव अपने **स्वावरण क्षयोपशम लक्षण योग्यतया हि प्रतिनियत मर्थं व्यवस्थापयतिप्रत्यक्षमिति शेष :। परीक्षामुख 2/9**

अपने आवरण और क्षयोपशम के अनुसार खोज करता है, वस्तुतः स्वर्ग अच्छा है कि बुरा है? जिनकी सुबुद्धि है उनके लिए स्वर्ग अच्छा है, और जिनको कुबुद्धि जागी है, वह स्वर्ग में रहकर के भी, अपना समय भोगों में बिताकर के, और अंत में देवियों के वियोग में रोते हुए एकेन्द्रिय पर्याय में प्रवेश कर जाते हैं। भैया! स्वर्ग प्रतीक्षालय है, न वह अच्छा है, न वह बुरा, वहाँ बैठकर के जो जैसा करले, वहाँ पर दोनों तरह के साधन है, सम्यक्दृष्टि जीव आगे मोक्ष जाने की तैयारी करता है, स्वर्ग में बैठकर के और मिथ्यादृष्टि जीव यहाँ से जो पुण्य कमा के ले गया, वह वहाँ पूरा खर्च कर देता है, अगले भव के लिए कुछ बचा के नहीं रखता है।

❑❑❑

7

मोहावृत ज्ञान वस्तु–स्वरूप नहीं जानता

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां, यथा मदन कोद्रवैः ।।7।।

अन्वयार्थ – (**मोहेन**) मोह से (**संवृतं ज्ञान**) ढका हुआ ज्ञान (**स्वभाव**) आत्म स्वभाव को (**न हि लभते**) नहीं जान पाता (**यथा**) जैसे (**मदन कोद्रवैः**) नशीले कोदों के खा लेने से (**मत्तः पुमान्**) मूर्च्छित बेखबर मनुष्य (**पदार्थानां**) पदार्थों को ठीक तरह नहीं जान पाता ।

आपने कहा था, स्वभाव शिव को देता है, तो फिर मोह से ढका हुआ ज्ञान, मोह सहित, और मोह रहित, दो तरह का होता है। समन्तभद्रस्वामी ने कहा–ज्ञान से मोक्ष होता है, कि बहुत से ज्ञान से मोक्ष होता है, कि अल्पज्ञान से मोक्ष होता है। तब आचार्य ने कहा ज्ञान बहुत है, किन्तु मोह सहित है, तो वह बंध करायेगा, किन्तु ज्ञान अल्प है, मोह से रहित है। तो वह मोक्ष का कारण बनेगा। स्थिति यह है, मोह से ढका हुआ ज्ञान, **''मोहेन संवृतं''** ज्ञान तो पर्वत की माँ को भी था, लेकिन कैसा था? मोह से ढका हुआ था। लक्ष्मण को भी ज्ञान था, राम को भी ज्ञान था, लेकिन लक्ष्मण का ज्ञान अनंतानुबंधी मोह से ढका था, दर्शन मोह से ढका था और राम का ज्ञान अप्रत्याख्यानादि बारह कषायों से ढका था, तो लक्ष्मण ज्यादा प्रेम करते थे, कि राम ज्यादा प्रेम करते थे, कि दोनों में एक समान प्रेम था। राम से। सांसारिक प्रेम में, तो मोह जनित प्रेम होता है, लक्ष्मण को, राम से ज्यादा प्रेम था, क्यों? लक्ष्मण ने समाचार सुना, कि राम का मरण हो गया, लक्ष्मण का सुनते ही मरण हो गया।

वस्तुतः ये मरण क्यों हुआ? तीव्र मोह के कारण, तीव्र संक्लेश, के कारण प्राण उड़ गए। जबकि राम को समाचार भी मिला और राम ने प्रत्यक्ष में देखा भी लक्ष्मण ने प्रत्यक्ष में नहीं देखा था, सिर्फ सुना था और राम ने प्रत्यक्ष में देखा भी है, सामचार भी मिला और छः माह तक साथ में लिए भी रहे, लेकिन राम का मरण क्यों नहीं हुआ? क्योंकि राम को अनंतानुबंधी राग नहीं था, उतना संक्लेश कारक राम को प्रेम नहीं था। जितना मोह जनित प्रेम लक्ष्मण को था। इसलिए प्रेम करने के पहले ये देखना कि हमारा प्रेम किस प्रकार का है? ऐसा तो नहीं, कि हम, किसी के प्रेम में, अपने प्राण भी खो बैठे, इतना संक्लेश हो जाएगें कि प्राण भी चले जाये। **'मोहेन संवृतंज्ञानं'** अब लक्ष्मण भैया अपने स्वभाव को नहीं निहार पाये, कौन सा मोह अनंतानुबंधी मोह। राम भैया छः महिने तक लक्ष्मण को लिए फिरे, क्यों? ये अप्रत्याख्यान कषाय का काल छः माह का है, दोनों अपने अपने स्वभाव से अपरिचित हैं। लक्ष्मण भी अपरिचित है, क्योंकि दर्शन मोह है, और यह अपरिचित है क्योंकि चारित्र मोह है।

'स्वभावं न लभते' राम ने छः महिने तक अपना स्वभाव नहीं निहारा, राम क्या कर रहे? अपने भैया के लिए नहला रहे, खिलाने तैयार हैं, पिलाने तैयार हैं, लेकिन फिर भी.....। समझाने वाले हनुमान, सुग्रीव, किसने नहीं समझाया? जिसके साथ, 27 हजार लोगों ने दीक्षा ली हो, उसको समझाने वाले कितने लोग होंगे? सबसे ज्यादा राजाओं ने दीक्षा ली, तो राम के साथ ली, तो समझाने वाले भी कितने लोग होंगे, कितने ज्ञानी लोग होंगे? कितने ज्ञानी जीवों ने समझाया होगा? लेकिन मोह के कारण समझ नहीं आया। समझ नहीं आता मोह के कारण तो ये दशा है, मोह की, **''मोहेन संवृतंज्ञानं स्वभावं न लभते''** मेरा स्वभाव क्या है? जो स्वभाव शिव को देता है, वह मोह के कारण ढका हुआ है, और कितना ढका हुआ है, जितना मोह है। यानी पौद्‌गलिक कर्म की शक्ति तो देखो, कि वह आत्मा को केवलज्ञान गुण को ढाके बैठा है, ये पौद्‌गलिक कर्म की अचिन्त्य शक्ति है।

'मोहेन संवृतंज्ञानं'

मोह से ढका ज्ञाान है, जो जीव नहीं निहार पा रहा, अपने हित को नहीं निहार पा रहा, कल्याण की राह में नही बढ़ पा रहा। मोह से ढका जब सीता का ज्ञान था, तो इतना युद्ध देखती रही, लेकिन संन्यास का भाव नहीं हुआ, राम के साथ वनवास चली गई, लेकिन

संन्यास को नहीं गई। अशोक वाटिका में नौ दिन के उपवास करके व्याकुल हो रही, लेकिन संन्यास नहीं ले पाई, उपवास कर रही। उसके बाद भी कितना बड़ा युद्ध हुआ, एक की प्राप्ति के कारण। काश! सीता तू उस समय दीक्षा ले लेती तो, इतना बड़ा युद्ध होता ही क्यों? लेकिन क्या करे? मोह तो यहाँ टिका था, सीता भले ही लंका में थी, लेकिन मोह यहाँ राम में टिका था और लंका से आ भी गई, राम के घर भी आ गई, लेकिन यहाँ पर राम ने वनवास दे दिया, तब उस समय पुत्रों का मोह जाग गया, कि पुत्रों का क्या होगा? और पुत्र मोह के कारण, संन्यास नहीं ले पा रही। एक बार तो पुत्रों का परिचय पिता से करा दूँ, और उसके बाद, जब अग्नि परीक्षा में, देख रही कि, जो मेरे रक्षक थे, वही मेरी परीक्षा ले रहे हैं, जिन पर मैं इतना विश्वास करती थी, आज वह मेरी परीक्षा ले रहे हैं। न पुत्र रक्षा कर पा रहे हैं, न देवर रक्षा कर पा रहे हैं, न पिता तुल्य हमारे हनुमान रक्षा कर पा रहे हैं, कोई तो रक्षा नहीं कर पा रहा है, अब तो **जिनधर्म ही शरण है**। मैंने जिनके लिए इतना जीवन निकाल दिया, अब मेरे लिए कौन शरण है? **'अरहंते सरणं पव्वज्जामि'** उस समय सीता को वैराग्य आ जाता है, वहाँ मोह हट जाता है और जहाँ मोह छूटा, यहाँ वैराग्य का मार्ग सुलभ हो गया। **'स्वभावं न लभते'** यही स्थिति पुष्पडाल की थी, कि बारह वर्ष हो गए और मोह की स्थिति बनी हुई है। सबके प्रति मोह नहीं होता, लेकिन एक के प्रति छाया हुआ मोह, हमें पथ से रोके रहता है। भैया लक्ष्मण ने आयु बंध किया था, कि नहीं किया था? पहले आयु बंध किया था, और जिस जीव ने पहले आयु बंध किया है पद्मपुराण में लिखा कि लक्ष्मण की आयु बारह हजार वर्ष, राम की आयु सत्तरह हजार वर्ष, पांच हजार वर्ष की आयु का अंतर है। राम और लक्ष्मण में, आयु पूरी की, लेकिन संक्लेश तो चाहिए था, बिना कृष्ण लेश्या के जीव कैसे वहाँ का राज्य करेगा? यह स्थिति भी तो चाहिए। इसलिए मरणांत बेला में, वही लेश्या होना चाहिए, जिस लेश्या के साथ, आयु बंध किया है और उस लेश्या के लिए, ये संक्लेश अनिवार्य था। यदि ये संक्लेश नहीं होता, तो अशुभ लेश्या नहीं होती, और, लेश्या नहीं होती तो, दुर्गति रूप अवस्था नहीं होती। इसलिए जिस जीव ने देव आयु का बंध किया है, उसको अंत में शुभ लेश्या बनना ही है। भले ही जीवन भर कैसे भी चले, अंत में गाड़ी वही जायेंगी और जिसने अशुभ आयु का बंधकर लिया, उसको अंत में अशुभ लेश्या

आना ही है, क्योंकि आयु बंध के समय जो परिणाम होते हैं, वही परिणाम मरण के समय होते हैं, और वहीं लेश्या जन्म के समय होती है। तीन जगह एक ही लेश्या चलती है यह ध्यान देना है, टिकिट लेते समय, आपने जो टिकिट ली है, बैठते समय वही टिकिट आपके साथ जायेगी और उतरते समय, वही टिकिट आपके काम आयेगी। चेंज नहीं कर सकते। अकाल मरण तीर्थंकर का नहीं होता, चरमोत्तम देहधारी जो तीर्थंकर है उनका अकाल मरण नहीं होता। असंख्यात वर्ष वाले भोगभूमियाँ जीवों का अकालमरण नहीं होता, देव और नारकियों का अकालमरण नहीं होता है। शेष जीवों को अकालमरण होता है, इसलिए सभी श्लाका पुरुष चरमोत्तम नहीं होते हैं, तीर्थंकर मात्र चरमोत्तम है।

प्रिय आत्मन् !

जिन्होंने अपने विनय भाव से, श्रुत की आराधना करके, प्रवर्तमान समग्रश्रुत को, पी लिया है। आगम रहस्यों से, जो अत्यंत परिचित है, समयसार आदि ग्रंथों का, जिन्होंने बारम्बार श्रवण, मनन, चिंतन करके, अनुभवन किया है, जिनके अन्दर हित की अभिलाषा जागी है, ऐसे आचार्य पूज्यपाद देव, हम सब अल्पबुद्धि जीवों पर, करुणा करके, संक्षेप में, मन शुद्धि के लिए, समयसार का सार, भगवान कुंदकुंद स्वामी ने, लगभग तीन हजार गाथायें लिखी–उन सभी गाथाओं का सार, लगभग 150 कारिका में, इष्टोपदेश और समाधितंत्र, इन दो ग्रंथों में पूज्यपाद जी ने भर दी। इसलिए इष्टोपदेश अपने आप में, समयसार है, आचार्य भगवन् यहाँ कह रहे हैं, कि जीव में ज्ञान शक्ति रूप से विद्यमान है, प्रकट रूप में आ जाये, किन्तु मोह से ढका हुआ ज्ञान है, तो वह स्वभाव को उत्पन्न नहीं होने देता, स्वभाव में प्रवेश नहीं करने देता। इस जड़ कर्म की भी ऐसी अचिन्त्य शक्ति है, कि आत्मा के केवलज्ञान स्वभाव को ढके हुए है। ये अनंत बलशाली आत्मा भी उस कर्म से हार माने बैठी हैं। लेकिन आत्मा की शक्ति ऐसी अद्‌भुत है, कि जब निज शक्ति को पहचानता है, तो ये कर्म भी पराजित हो जाता है, और आत्मा शुद्ध स्वरूप में विराजित हो जाता है। अभी स्थिति ये है, कि मोह से ढका हुआ ज्ञान है, किसका ? जीव का। अब रावण का जो ज्ञान था, जिसको 700 विद्यायें सिद्ध हो, तीन खण्ड को संचालित कर रहा हो, 18 हजार

रानियाँ जिसकी हो, सभी तरह का वैभव हो, क्या उसके पास ज्ञान नहीं होगा? बोलो क्या उसके राज्य में कोई समझाने वाला नहीं होगा, क्या मंदोदरी ने समझाया नहीं? बोलो! लेकिन क्या हुआ?

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पादार्थानां, यथा मदनकोद्रवैः ॥7॥

मंदोदरी के समझाने पर, रावण वैसा ही नहीं समझा, जैसे मोह से ढके हुए ज्ञान पर, जीव नहीं समझता। इसलिए आचार्य कहते हैं–अकेले उस रावण की विशेषता नहीं है, जिस–जिस पर मोह का असर है, वह–वह जीव नहीं समझेगा। यह सुमतिज्ञान रूपी मंदोदरी जीव को समझाती है, लेकिन नहीं समझ पाता है, तो देखो, जैसे किसी ने मदिरा पान किया है, वह जीव पदार्थों को यथार्थ रूप में नहीं समझ पाता, तब दौलतराम जी बोले, कि मदिरा पान करने वाले का नशा तो कुछ घंटे में उतर जाता है और जल्दी उतारना चाहे तो, इमली का पानी पी ले, मट्ठा पीले, तो तत्काल नशा उतर जाता है। लेकिन ये मोह का नशा, जीव का आज तक नहीं छूटा। यदि इमली का पानी, और मट्ठे का पानी, उस मदिरा का नशा उतार सकता है, तो जिनवाणी रसपान, मोह की मदिरा का नशा उतार सकती है। इसलिए दही को मंगल कहा है, दही मंगल है, यदि दही को पी ले, तो मदिरा का नशा भी उतर जाता है। उसी तरह दही के समान शुक्ल लेश्या, शुक्ल ध्यान को धारण करे, या परिणामों को धारण करे, शुक्ल ध्यान, को श्रुत ज्ञान को धारण करे, तो जीव का मोह का नशा उतर जायेगा। दर्शन मोह का नशा, चारित्र मोह का नशा, इसको नशा कहा। यह व्यसन सेवन करने वाले जो पी लेते न उसके लिए बता रहे है। तो मोह, तब स्थिति क्या–क्या होती है? मोह की दशा में, जो कुंदकुंद भगवान ने लिखा –

अण्णाण मोहिद मदी, मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा, जीवो बहुभाव संजुत्तो।।23॥ (समयसार)

अज्ञान से जिनकी मति मोहित है, वह जीव परद्रव्य को अपना मानते हैं और यह कहते हैं –

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं, सचित्ताचित्त मिस्सं वा।।20॥ (समयसार)

यह मेरा है, मैं इसका हूँ। यह मेरा था मैं इसका था यह मेरा होगा, मैं इनका होऊँगा। यह मेरे थे, मैं इनका होऊँगा। यह मोहरूपी जादूगर के दो मंत्र हैं, अहंकार और ममकार। अहंकार क्या है? यह मैं हूँ। ममकार क्या है? ये मेरे हैं। **अहमेदं अहं इदं** मैं यह हूँ, यह अहंकार, **ममेदं** यह मेरे हैं, यह ममकार, और इन्हीं से, हम जुड़े हैं, जैसे डाली से फल जुड़ा रहता है, या वृक्ष से दो शाखाऐं फूटती है, उसी तरह मोह रूपी वृक्ष से अहंकार और ममकार की दो शाखायें फूटती है। फिर उसमें फल लगते हैं, राग–द्वेष के समयसार में आचार्य कुंदकुंद देव लिखते हैं –

ववहारणयो भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को।
ण दु णिच्छयस्य जीवो देहो य कदावि एकट्ठो।।27॥ (समयसार)

देखो भाई मैंने तो शरीर को ही देखा है और शरीर ही दिखता है, इसलिए मेरा तो, यह मानना है, शरीर ही आत्मा है, तो आचार्य भगवन् कहते हैं–ऐसा अज्ञानी जीव कहता है, कि शरीर ही आत्मा है। अथवा आगे कहा जाएगा, तो नो कर्म शरीर, अथवा आठ कर्मों के समूह को आत्म मान लेगा, अथवा और कुछ होगा, तो प्रकृति बंध आदि को आत्मा मान लेगा, स्थिति–अनुभाग बंध को आत्मा मान लेता है। आचार्य भगवन् कहते हैं

ववहार णयो भासदि, जीवो देहो य हवदि खलु इक्को
ण दु णिच्छयस्स जीवो, देहो य कदावि एकट्ठो।।27॥ (समयसार)

व्यवहार नय की दृष्टि से जीव और शरीर एक है किंतु निश्चय नय की दृष्टि में, शरीर और आत्मा एक नहीं है, इसलिए आचार्य अमृतचन्द्र देव ने लिख दिया, जो सिर्फ व्यवहार को ही मानना चाहता है, उसको मेरी देशना नहीं है। जो सिर्फ निश्चय को ही मानना चाहता है, उसको भी देशना नहीं दी है। जो व्यवहार को सुनकर, निश्चय को प्राप्त करना चाहता है, उसको देशना है और जो दोनों को सुनकर के परम पद को पाना चाहता है, उसको देशना है।

8

मोही, पर पदार्थ को अपना मानता है

वपुर्गृहं धनदाराः, पुत्राः मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्य स्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते।।8।।

अन्वयार्थ – (**वपुः गृहं**) शरीर, गृह (**धनं दाराः**) धन, स्त्रियाँ (**पुत्राः मित्राणि**) पुत्र, मित्र और (**शत्रवः**) शत्रु (**सर्वथा**) सब तरह से (**अन्यस्वभावानि**) अन्य स्वभाव वाले हैं परन्तु (**मूढः**) मोही प्राणी इन्हें (**स्वानि प्रपद्यते**) अपना समझता है।

वपुः शरीर, **गृह**–मकान, **धनं**–धन, **दाराः**–स्त्री, **पुत्रः** –पुत्र मित्राणिः **मित्र**–बंधु और **शत्रवः**–शत्रु वर्ग, सर्वथा अन्य है। स्वभावानि यह सब अन्य स्वभाव वाले हैं, तेरी आत्मा से भिन्न स्वभाव वाल हैं, समन्तभद्र स्वामी ने, प्राग् अभाव, प्रध्वंस अभाव, अन्योन्याभाव, अत्यंत अभाव चार अभाव की चर्चा की, तो यहाँ पर कुछ का अत्यंताभाव शरीर पुद्गल है, आत्मा जीव तत्त्व है, इसलिए इनमें अत्यंताभाव है। मकान पुद्गल है, आत्मा जीव है तो अत्यंताभाव, धनं पुद्गल है, अत्यंताभाव है, स्त्री जीव है, किन्तु मेरा जीव अलग है, स्त्री का जीव अलग है, दो जीव अलग–अलग है। लोग कह देते हैं, शरीर दो हैं, आत्मा तो एक है, ऐसा गृहस्थी में लोग कह देते हैं। भैया! आपके कहने से मोह की भाषा तो बोली जा सकती है लेकिन मोक्ष शास्त्र की भाषा नहीं हो सकती। **दाराः अन्य स्वभावानि,** भिन्न स्वभाव वाली है, भिन्न आत्मा है, और मेरी आत्मा भिन्न है, पुत्राः जितने भी पुत्र है, साठ हजार पुत्र किसके थे? सगरचक्रवर्ती के, सगर चक्रवर्ती को अपने पुत्रों से इतना मोह था, एक भी दिन अपने पुत्रों को बाहर नहीं भेजता था। पुत्र बड़े हो गए, पुत्रों ने कहा पिताजी ! हमारे लिए कुछ काम तो दो। हमारे योग्य कोई काम दो, पिता जी कहते

हैं, मैं सब कुछ करने में समर्थ हूँ, तुम्हें काम की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन पिताजी हम कुछ नहीं करेंगे, तो जगत में हम क्या कहे जायेंगे? अच्छा जाओ। भागीरथी पुत्र गंगा नदी को खोदो, कैलाश पर्वत के चारों ओर खाई खोदो, खोदने चले गए। अब स्थिति क्या हुई? जिस समय साठ हजार पुत्र खाई खोद रहे थे, उसी समय जो सगर चक्रवर्ती का पूर्व भव का मित्र था, उस मित्र को याद आया कि मेरा मित्र कहाँ है? ओ हो....! मेरे मित्र, जिससे कहा था कि यदि मैं मनुष्य लोक में पहले जाऊँगा, और तुम स्वर्ग में रहो, तो तुम मुझे संबोधन देने आना, और यदि मैं स्वर्ग में रहूँ और तुम मनुष्य लोक में पहले जाओगे, तो मैं संबोधन देने आऊँगा। लेकिन एक दूसरे को वैराग्य दिलायेंगे। ध्यान देना। यह कहलाती है मित्रता, सच्ची मित्रता वह है, जो वैराग्य की ओर ले जाये। स्वर्ग के देव को याद आया, मेरा मित्र कहाँ है? ओ हो! वह तो मनुष्य लोक में चक्रवर्ती बना बैठा है। ओ हो....! कितना काल खो दिया, मुझसे तो कहके गया था कि आठ साल के होते ही मैं मुनि बन जाऊँगा और क्या हो गया? साठ हजार पुत्र भी हो गए, षट्खण्ड का चक्रवर्ती हो गया, फिर भी, अभी मुनि नहीं बना, ओ हो...! मुझसे उसने यह भी कहा था कि–मैं जाके भूल जाऊँ तो संबोधन देने आना। मैं जाता हूँ। लेकिन पुत्रों के मोह में इतना लीन है कि मेरा उपदेश नहीं मानेगा, नहीं सुनेगा, यह भी जान चुका था, उसके वैराग्य का कारण क्या हो सकता है? सोचिए साठ हजार पुत्रों को एक साथ सुला दिया, निद्रा में सुला दिया। समाचार मिला, आपके साठ हजार पुत्र मर गए। उस चक्रवती से पूछो – जिसको यह समाचार मिले कि आपके साठ हजार पुत्र मर चुके हैं। अब वह वापिस नहीं लौट सकते हैं, अब उस पिता के हृदय से पूछो, मैंने जिन पुत्रों से इतना मोह किया, मैंने जिन पुत्रों के कारण संसार को नहीं त्यागा, और मेरे ही पुत्र मुझे छोड़कर चले गए। मैं एक–एक पुत्र के प्रति इतना मोही होकर के राज्य सम्भालता रहा, वह पुत्र मुझे छोड़कर चले गए। मैंने कभी तो घर से नहीं निकाला था, पहली बार तो मेरे पुत्र मेरे घर से निकले थे और मुझे छोड़कर चल दिये। अब वह देव उस समय कहता है, देखो – जो होना था, सो हो गया, अब अपना भला कर लो। **आत्मा का कल्याण रोने में नहीं, अपना होने में है,** तुम अपनी पहचान करो, तुमने पुत्रों के मोह में, इतना जीवन व्यतीत कर दिया, और क्या तुम नहीं मरोगे? जब साठ हजार पुत्र मर गए, तो क्या मैं नहीं

मरूँगा? मैं भी मरूँगा। मेरे लिए भी कोई रोयेगा, नहीं मुझे ऐसे नहीं मरना, जैसे मेरे पुत्र मर गए, मुझे तो मोह में नहीं मरना, मैं तो वैराग्य के साथ मरूँगा, मैं तो संन्यास लूँगा, और स्वभाव प्रकट होता है, वैराग्य के लिए चल देता है। दीक्षा ले लेता है और वह देव नस्कार करता है, कहता है – अब मेरा ऋण चुक गया। बोलते हैं, तुम कौन हो? मैं तुम्हारा मित्र हूँ, जिसने स्वर्ग में वादा किया था, यदि तुम पहले मनुष्य बनोगे, तो मैं तुमको वैराग्य दिलाने में कारण बनूँगा। पंडित जी निमित्त क्या नहीं करता, उपादान में क्षमता हो, तो निमित्त मोक्षमार्ग पर ले आता है। उपादान में क्षमता है, तो सगर चक्रवर्ती को निमित्त मिल गया, 24 तीर्थंकर बिना निमित्त के मोक्ष मार्ग पर नहीं आये, उत्तर पुराण में प्रत्येक तीर्थंकर के वैराग्य का कारण लिखा है, चाहे वह बिजली का चमकना हो, चाहे वृक्ष की डाल का टूटना हो, चाहे दर्पण में छाया का दिखना हो, चाहे सफेद बाल का दिखना हो, कोई न कोई निमित्त तीर्थंकर को मिला है, यह बात अलग है कि निमित्त अंतरंग निमित्त को जगा देते हैं, जाग्रत कर देते हैं। इसलिए भैया! निमित्त उपादान की जाग्रति में कारण बनता है। उपादान तो जीव के अंदर है ही, बालक के अंदर जागने की क्षमता है, लेकिन निमित्त के छींटे चाहिए और निमित्त के छींटे लगते हैं, तो बालक जाग जाता है। बोलो पानी का छिड़कना क्या बेकार है? बेकार नहीं है, जगा देता है, उसी तरह ये जिनवाणी निमित्त है, सम्यग्दर्शन में। कुंदकुंद भगवान ने कहा

सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतरहेऊ भणिदा, दंसण मोहस्स खयपहुदी।।53॥ (नियमसार)

सम्यग्दर्शन में निमित्त भूत है, जिनवाणी इसलिए देखो **सर्वथा अन्य स्वभावानि,** ओ हो......अन्य स्वभाव वाले थे, देव अपने रूप में आया, साठ हजार पुत्रों को जगा दिया। मुनिराज ने देखा ओ हो.......तथास्तु। तुम अपना कल्याण करो, मैं अपना कल्याण करता हूँ। **मूढः** मूर्ख उसे अपना मानता है, और उसी में उलझा रहता है, यह दुर्लभ मनुष्य जीवन, मोह में बीत जाता है। बड़ा सुन्दर चित्रण इस मोह के विषय में देखा होगा, संसार दर्शन में, परमात्मप्रकाश में टीकाकार ने बहुत सुंदर वर्णन किया। एक वृक्ष है, उस वृक्ष की दो शाखाओं पर, एक सफेद चूहा, एक काला चूहा, उस शाखा को काट रहा है। वृक्ष के नीचे

एक कुँआ है, कुऐं में चार अजगर हैं, बीचों–बीच एक और बड़ा नाग है। उसी वृक्ष पर एक मधुमक्खी का छत्ता लगा हुआ है, एक व्यक्ति, जिसके पीछे एक काला हाथी है। उस काले हाथी से बचने के लिए वह दौड़के आता है, और डाल को पकड़ लेता है, उस पर झूल जाता है, अभी उसको कुछ भी पता नहीं है, ऊपर क्या है? और नीचे क्या है? लेकिन जब ऊपर मुख करता है, तो शहद के छत्ते से एक बूँद गिरती है, वह उसकी जीभ पर टपकती है, ओ स्वाद लेता है। तब तक हाथों में दर्द हो चुका है, खून नीचे उतरने लगता है। नीचे देखता है, चार अजगर साँप है, फिर ऊपर देखता है, बूँद आने वाली है, इसी समय एक देवी अपने, देव के साथ निकल रही थी, महान आश्चर्य था, देवी का मन कोमल था दयालु हो गया, हे देवराज देखो वह व्यक्ति संकट में पड़ा है, चलो उसे बचा लें। देव ने कहा वह नहीं सुनेगा, फिर भी चलो, विमान में बिठालेंगे। भैया! वह जिनवाणी रूपी देवी हैं, आचार्य रूपी देव हैं, और धर्म रूपी विमान हैं, संसार रूपी वृक्ष है, दिन–रात रूपी, सफेद–काले चूहें हैं। चर्तुगति के चार नाग हैं, निगोद का महाकालिया नाग है, और मृत्यरूपी हाथी पीछे दौड़ रहा है। लेकिन मोह रूपी छत्ते का रस, क्या? एक काम और कर लें, एक काम और निपटा लें। कभी–कभी साधु संत आते हैं, वह कहते हैं, चलो भाई अब कल्याण कर लो। थोड़ा सा एक काम और कर लें।

प्रिय बंधुओ!

इस स्थिति में जीव का समय निकल जाता है, और क्या होता है कौन जाने? भैया! हमारे साथ पाँच दीक्षा हुई थी, एक और दीक्षा होनी थी, वह दीक्षा गुरुजी ने सिर्फ इसलिए नहीं दी थी कि वह वृद्ध थे, वृद्ध होने से केंसिल नहीं की थी, दीक्षार्थी ने कहा– महाराज हमारा नम्बर पहला कर देना। हम किन–किन को झुकते रहेंगे? आचार्य भगवान् ने कहा–बिल्कुल ठीक कहा आपने, आपका नम्बर हम पहला कर देंगे, वह बड़े खुश हो गये, आचार्य भगवान् समझ गए, यह व्यक्ति वृद्ध होने के कारण पहले नम्बर की नहीं बोला, इसके अन्दर अहंकार है, इसलिए बोल रहा। आचार्य भगवन् ने कहा – बिल्कुल आपका पहला नम्बर कर देंगे, लेकिन इस बार की दीक्षा में नहीं, अगली बार की दीक्षा में, चले गए। अब सोचिए कि कल दीक्षा होने वाली है, एक साथ मेंहदी लगी हुई है, चौक पूरा हुआ है, गोद भर चुकी है। सब कुछ होने के बाद भी दीक्षा केंसिल हो गई और चार–छः माह के

बाद समाचार मिला – कटनी के स्टेशन पर सीट पर सो रहे थे, और सोते–सोते चले गए। मोह ने ज्ञान ढका चाहे क्रोध हो, चाहे मान हो, चाहे माया हो, सब मोह है। मोह की एक दो प्रकृति नहीं है। 28 प्रकृतियाँ हैं और असंख्यात लोक प्रमाण मोह के स्थान हैं। इस तरह इस स्वरूप को जानो, किंतु मूर्ख जीव पर को अपना मानता है और निज का कल्याण नहीं कर पाता है, ऐसा जानकर हमको अपने कल्याण की इच्छा रखना चाहिए और पर को पर, निज को निज मान, फिर दुख का क्या है स्थान।

उद्‌देश्य यही है, कि मूर्ख पर को निज मानता है, यदि तुम मूर्ख नहीं हो तो तुम इनको अपना मत मानो। दो तरफ से कथन होता है, विधि रूप और निषेध रूप। यह बता दिया, अज्ञानी इनको अपना मानता है। अब तुम क्या हो? तुम जानो, तुम ज्ञानी हो, तो इनको अपना मत मानो, और मान रहे हो, तो ज्ञानी नहीं हो। आप बोलते है–भैया! **'अच्छे बच्चे शोर नहीं करते'** छोटे बच्चों को समझाते हैं। इसका मतलब क्या है? तुम अच्छे हो, तो शोर नहीं करो, और शोर करते हो, तो अच्छे नहीं हो। इसी तरह मूर्ख जीव शरीर को, धन को, मकान को, स्त्री को, पुत्र को, अपना मानता है। ये मूर्ख मानता है, तो इसका विलोम क्या हुआ? विद्वान इसको अपना नहीं मानता, बुद्धिमान इसको अपना नहीं मानता, तभी तो सम्यग्दर्शन बनेगा। यदि परद्रव्य को अपना मान लिया।

'परद्रव्ययनते भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है। यह परद्रव्य है पर द्रव्य को भिन्न मानेगा, तभी तो आत्म द्रव्य में रुचि जागेगी। जब आत्म द्रव्य में रुचि जागेगी, तभी सम्यग्दर्शन होगा। इस तरह से आचार्य भगवान् ने यह कारिका कही। इस कारिका का रहस्य दो तरह से समझना है कि, मूर्ख मानता है, मैं क्या हूँ? मुझे मानना चाहिए, या नहीं मानना चाहिए? प्रत्येक पंक्ति मेरे लिए है। उसके मकान के लिए नहीं है, वपु: शरीर धन और मकान को उपदेश नहीं है। उपदेश मेरे लिए है, रतन लाल पण्डित जी इन्दौर पद्‌मपुराण सुनाते हैं, राम की चर्चा सुनाते हैं, तो राम की चर्चा राम के लिए नहीं है, राम तो सिद्धालय चले गए। अब मैं अपने आप को राम कैसे बनाऊँ? इस उद्देश्य को लेकर उपदेश दिया जाता है। इस तरह माँ जिनवाणी की आराधना में यह अनुष्ठान हुआ।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

❑❑❑

9

संसार परिचय

संसारी जीव का कुटुम्ब परिवार कैसा है?

दिग्देशेभ्यः खगा एत्य, संवसन्ति नगे–नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे ।।9।।

अन्वयार्थ – (**नगे–नगे**) वृक्ष–वृक्ष पर (**दिग्देशेभ्यः**) दिशाओं और देशों से (**एत्य**) आकर (**खगाः**) पक्षी संध्या के समय (**संवसन्ति**) ठहर जाते हैं, तथा (**प्रगे–प्रगे**) प्रातः काल (**स्वस्वकार्यवशात्**) अपने– अपने कार्य के वश से (**देशे दिक्षु**) भिन्न–भिन्न देश, दिशाओं में (**यान्ति**) उड़कर चले जाते हैं।

प्रिय आत्मन् !

मोक्ष में मोक्ष नहीं मिलता, मोक्ष अच्छा तो है, पर मोक्ष में मोक्ष नहीं मिलता, संसार को कितना भी बुरा कहो, लेकिन संसार में ही संसार का त्याग होता है। और संसार से छूटने पर मोक्ष मिलता है, संसार पूर्वक ही मोक्ष होता है। मोक्ष पूर्वक संसार नहीं होता, संसार पूर्वक मोक्ष होता है। मोक्ष के बाद संसार नहीं होता। यह संसार है, संसार में, नाना तरह के जीवगण दिखाई देते हैं, और कहते हैं, शरीर अपना नहीं है, स्त्री, पुत्र, मित्र अपने नहीं है, तो फिर आखिर स्थिति क्या है? हम तो बचपन से देख रहे है, जिस घर में जन्में है, सत्तर साल, अस्सी साल, इतना समय हमको हो गया, वही घर वाले, हमको अपने नजर आते हैं, हर कोई अपना नजर आता, और आप कहते हो कोई अपना नहीं है। हम तो जिससे बोलते है, वही अपना नजर आता है। अपन अच्छे तो सब अच्छे, सब हमको अपने नजर आ रहे और आप कहते हो, मूर्ख इनको अपना मानता है। मैं तो प्रत्यक्ष में देख रहा हूँ, कि सभी मुझको

अच्छे लगते हैं, और मुझको अपना मानते हैं जब से मैं आया हूँ, हर नगर का व्यक्ति मुझे चाहता हैं, जहाँ पहुँचते हैं, वहाँ सब मुझे चाहते है, तो कैसे कह दे कोई अपना नहीं है? कौन अपना नहीं है? इतना प्रेम सबसे हो गया है। इसी मोह और प्रेम के कारण तो तुम भूल गए हो, इसी मोह और प्रेम ने तो तुम्हें भुला रखा है। जब प्रेम से बुलाते है, तो व्यक्ति ठहर जाता है, और ठहरने में उसका आगे का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाता है। आचार्य भगवन् समझाते है, देखो बेटा ! सन्ध्या का समय है, आचार्य भगवन् मैदान में देख रहे है, आराम से पेड़ के नीचे बैठे हुए है, और सामायिक करने को तैयार हैं। उसी समय पेड़ पर नाना दिशाओं से, नाना देशों से, पक्षी आते हैं, और पेड़ पर बैठ जाते हैं। पक्षी कुछ समय कलरव करते हैं, और रात्रि भर शांति से बैठते हैं। महाराज भी पेड़ के नीचे सामायिक करते हैं, सुबह होती है, पक्षी अपने–अपने देश, अपनी–अपनी दिशा की ओर उड़ जाते हैं। आचार्य भगवन् देखते रह जाते है, आये थे, चले गए, पेड़ ज्यों का त्यों खड़ा है। पक्षियों का आना उत्पाद रूप हो गया, सुबह पक्षियों का जाना व्यय रूप हो गया। पेड़ ध्रौव्य रूप में खड़ा हुआ है। भो ज्ञानी! जैसे यह पेड़ है, ऐसा ही तो, यह परिवार है। कुछ नये सदस्य आते हैं, कुछ पुराने सदस्य चले जाते हैं। यह मकान ज्यों का त्यों बना रहता है। बच्चों का जन्म हो गया, त्यौंहार मना लिया, वृद्धों का व्यय हो गया, शोक मना लिया। यह हर्ष और विषाद जो है, यह पर्याय ही तो है, परिणामों की पर्याय है। यह पर्यायें पराधीन नहीं है, हाँ विभाव पर्याय है, तो कर्माधीन तो है, लेकिन ज्ञानाधीन भी है, ये क्रमवर्ती तो है, क्रमबद्ध नहीं है। आज मैं चौके में था–आहार लेने को खड़ा था, लोग ज्यादा थे, मैंने कहा–चार व्यक्ति आहार देंगे। कोई भी चार। लोग थे चालीस, बैठो सभी, सभी को बिठा दिया और इसमें से एक कम होता जाये, उसमें एक आता जाये तो कैसा हुआ? अब मेरा किसी से राग तो था नहीं, द्वेष तो था नहीं। मैंने किसी को बंधन में तो बाँध के रखा नहीं था कि इसी क्रम से आना, कुछ चले आ रहे थे। इतने में एक सज्जन बोले–हमको एक ग्रास दे लेने दो जल्दी जाना है, तो दूसरे सहयोगी बोले, ठीक है भैया ! आप दे दीजिए। क्यों? क्योंकि क्रम से बँधे हुए नहीं थे। आ जाओ, तुम आ जाओ, लेकिन आयेगा एक–एक ही। तो एक–एक का जो आना है, वह कहलायेगा क्रम, क्रम से प्रवृत्ति, ये कहलाता क्रमवर्ती अब एक यहाँ से आता जा रहा, एक यहाँ से जाता जा रहा,

हमारे पास चार के चार ज्यों के त्यों खड़े। उत्पाद हो रहा, व्यय हो रहा, ध्रौव्य रूप में मैं ज्यों का त्यों खड़ा हूँ। तो क्रम से पर्याय होती है, बद्ध नहीं है, कि यही आयेगा, हमने नाम लिखकर नहीं रखे रजिस्टर पर, कि यही आयेगा। कुछ ऐंट्री शुल्क नहीं ली, कि यही आयेगा, समझना। अनुकूलता हमारी बन जाये, हम भी सुखी, तुम भी सुखी, हम भी सफल, तुम भी सफल, हमारा भी काम बना, तुम्हारा भी काम बना ये कहलाता है क्रमवर्ती। भैया! हमने तो एक बात पढ़ी, केवलज्ञानी ने क्या देखा, मुझे इससे प्रयोजन नहीं है, केवलज्ञानी ने क्या कहा, मुझे आगम प्रमाण मान्य है। हम आगम प्रमाण को मानते है। कल्पना प्रमाण को नहीं मानते, यह केवलज्ञानी ने क्या देखा? यह आप कल्पना कर रहे हो, आप केवलज्ञानी की नहीं बोल रहे, और कल्पना मात्र? हमारे यहाँ प्रमाण रूप नहीं है। हमारे यहाँ कल्पना प्रमाण नहीं है, जिनेन्द्र भगवान ने अन्यथा रूप नहीं कहा –

'नान्यथा मुनि भाषणम्'

''सुन साधु वचन, हर्षी मैना, नहीं झूठ होय मुनि के बेना।''

आप आज्ञा सम्यक्त्व लक्षण सुनो! बड़े प्रेम से सुनिएगा ! प्रेम से इसलिए सुनिएगा, क्योंकि जब प्यार से सुना जाता है तो वह ज्यादा प्रभावकारी होता है। बच्चे भी जब प्रेम से दूध पीते हैं, तो वह दूध ज्यादा फायदेमंद होता है। सुनो–

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नायन्यथा वादिनो जिना:।।5॥(आ.प)

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया तत्त्व सूक्ष्म है, वचन का इसमें प्रवेश नहीं है, 'सूक्ष्म' ज्ञान का विषय तो है, पर वचन के अगोचर है। प्रतिक्षण नाशवर्ती उत्पाद–व्यय वाली ऐसी अर्थपर्याय को कहो; दिखाओ, बताओ? तो कैसे बताए?

आगम प्रमाण से ही, उसे जान सकते हैं। आपको जितना हेतु लगाना हो, लगा लीजिए, किसी भी हेतु के द्वारा खण्डित नहीं होगा, आज्ञा सिद्ध वचन कहलाता है। वह ग्रहण करने के योग्य है, क्यों ग्रहण करने के योग्य है?

'नान्यथा वादिनोजिना:'

जिनेन्द्र भगवान अन्यथावादि नहीं होते, यह प्रयोजन है। इसलिए जैनागम में क्रमवर्ती शब्द दर्शाया है, क्रमबद्ध नहीं दर्शाया। इस तत्त्व रसायान को बहुत समझने की आवश्यकता है और क्रमवर्ती में भी यह है, जैसा हमने उदाहरण से समझाया वैसा क्रमवर्ती, भैया! आप अच्छी शर्ट पहनके आये हो, अब, कल कौनसी शर्ट पहनके आओगे? परसो कौनसी पहनके आओगे? मालूम है, किसी ने उठाते–उठाते, कह दिया, यह नहीं यह पहनलो, क्या जाता, वह पहन लेते है बोलो? ड्रेस तो सौ रखी है, लेकिन वह बंधी नहीं रखी कि इसी क्रम से पहनना पड़ेगी, हमारी इच्छा पर निर्भर है और यदि बीच में कोई उठाके हाथ में जो दे दे, वह पहन लेते हैं तो बद्ध नहीं है, क्रमवर्ती है, लेकिन आप एक साथ दो शर्ट नहीं पहन सकते, तीन नहीं पहन सकते, क्रम यही है, कि एक–एक शर्ट पहनोगे, इतना ही क्रम है कि एक–एक क्रम से पहनोंगे। एक कल पहन लेंगे, एक परसों पहन लेंगे। चलो तुम्हारा भी मन रख लिया, लेकिन एक दिन में, तो एक पहनेंगे, ये क्रम है। यह क्रमवर्ती कहलाता है। जैसे हर्ष, खुशी, खिन्नता, अब एक समय में दो पर्यायें नहीं हो सकती। तुम खुश भी हो जाओ, और खिन्न भी हो जाओ, क्रम से ही होगी। आपको पाँच परमेष्ठी के नाम आते हैं? बोलो! अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, यह आपने कैसे बोले? क्रम से बोले कभी–कभी आप इसको क्रम बद्ध भी बोल देते हैं, आप के बोल चाल की भाषा में क्रमबद्ध आ जाता है, लेकिन हम आपको विधि बताते हैं, पूर्वानुपूर्वी में, अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय साधु, लेकिन एक दूसरी विधि भी है, जिसे पश्चातानुपूर्वी बोलते हैं यह पीछे के क्रम से भी हम बोल सकते हैं। क्यों कि हम बंधे नहीं है, फिर भी यह क्रम कहलायेगा। अब तीसरा, अरिहंत, साधु, आचार्य, उपाध्याय, सिद्ध, कुछ भी कहीं से भी, पाँच रहना चाहिए। छः नहीं होना चाहिए, यह यत्र–तत्र, जहाँ–तहाँ से, यह भी क्रम है, तो यह क्रमवर्ती है। क्यों? आप श्रुतज्ञानी हो, तो आपके कहने में भी क्रम रहेगा। केवली भगवान के ज्ञान में आवश्यक नहीं है, उनके पास अनन्त को कहने की क्षमता है। तुम्हारे पास नहीं है। तुम्हें एक बार में, अरिहंत कहो, या सिद्ध कहो, क्रम अपनाना पड़ेगा। तो अपन कैसे हैं? क्रमवर्ती, क्रम बँधा हुआ नहीं है, कि तुम्हें इसी क्रम से बोलना पड़ेगा। इसी क्रम से निकलेगा, नहीं क्रमवर्ती है, जो पर्याय है वह क्रमवर्ती है। स्पष्ट हो गया, आओ ! दिशाओं –दिशाओं से पक्षी आते हैं, और वृक्ष पर

ठहर जाते हैं, क्यों कि क्रम बद्ध हुआ नहीं है, कौनसी दिशा से कौन आयेगा? कोई नहीं बंधा है, यह उनकी इच्छा पर निर्भर है और **स्व–स्व कार्य वशात्'** जिनका जो–जो प्रयोजन होगा, अपने–अपने प्रयोजन से पक्षी चले जाते हैं। **'देशे'** देश–देश में, दिशाओं–दिशाओं में प्रातः–प्रातः, सुबह–सुबह चले जाते हैं। दिशाओं–दिशाओं से आते हैं, देश–देश से आते हैं, वृक्ष की शाखा–शाखा पर बैठ जाते हैं, और अपने–अपने कार्य के वश होकर सुबह–सुबह उड़ जाते हैं। उसी तरह संसार है। हम सब आये हैं, बस रैन बसेरा है, कुछ समय के लिए आये हैं, इसके बाद कौन कहाँ जायेगा? **शुद्धोपयोग होगा, तो राम की तरह चले जाओगे, शुभोपयोग होगा तो, सीता की तरह चले जाओगे, अशुभोपयोग होगा लक्ष्मण की तरह चले जाओगे।** बस अपने–अपने कार्य के वश से, जैसा हमने आयु बंध किया, वैसे चले जाओगे कोई नहीं ले जायेगा, तुम्हें ले जाने वाला कोई नहीं है, वहाँ के लिए कोई टैक्सी नहीं हैं, कोई रिक्सा नहीं है, कोई हेल्पलाईन नम्बर नहीं है। अपने परिणामों के अनुरूप ही आयुबंध होगा, और आयु के अनुरूप ही तुम्हारी गति होगी, इसलिए इतना ही समझो। हमारा घर, एक वृक्ष के समान है, घर वालों को सबको बताओ, एक रात रहना है अच्छे सुख से रह लो, कितनी सी जिंदगी है? दो दिन की जिंदगी है, यदि हमने रोके निकाली तो क्या निकाली? कितना छोटा सा जीवन है? बड़े प्रेम से निकालो, अच्छे से घुल मिलके रहो, क्या लग रहा? समझो तत्त्व को। फिर तो अपने– अपने प्रयोजन से चला जाना है, सबकी राह अलग–अलग है। संघ सम्मेलन हुआ जयपुर में, गुरुजी ने कहा–देखो एक वृक्ष पर पक्षी आते हैं, रात भर बैठते है, शांति से बैठते हैं। आवाज आती क्या? नहीं आती। उसी तरह सम्मेलन में सभी जगह से साधु आये, और जिसको जो स्थान प्रदान किया गया है, अपने–अपने स्थान पर रहेंगे, अपने–अपने संघ के अनुरूप रहेंगे और इतनी तारीख को सबके मंगल विहार हैं। झांसी का सम्मेलन हुआ, समापन के दूसरे दिन गुरुजी विहार कर गए। इधर गुरुदेव विरागसागर जी का विहार, उधर विशुद्धसागर जी का विहार, एक दिन में सौ पिच्छी का विहार हो गया । धीरे–धीरे उड़ते जाना, वृक्ष खाली हो गया। भैया! साधुओ का विहार बहुत बड़ी प्रेक्टीकली शिक्षा देता है, नगर में साधु आए, कैसे खुशी से रहे, और अपने शांति से विहार करके चले गए। उसी तरह अपन घर में आए, देखा बेटा! हम को पता

नहीं, कि तुम कहाँ से आए, बेटी तुम कहाँ से आयी, देव पर्याय से आयी या किस पर्याय से आयी, मुझे तो पता नहीं, लेकिन हमारा जितना पुण्य था, उसके अनुरूप तुम हम को मिली। तुम्हारे पुण्य के अनुरूप हम तुमको मिले। तो हम परस्पर मे रहके, एक दूसरे के पुण्य में कारण बन जायें धर्म में कारण बन जाएँ, कल्याण में कारण बन जाएँ, क्यों एक दूसरे की कषाय में कारण बनें? क्यों एक दूसरे के वैर–भाव में कारण बनें? ऐसा विचार करके परस्पर में घर वालों को समझाना चाहिए। देखो अपन मनुष्य हैं, और अपन शांति से नहीं रहेंगे, अच्छा यह बताओ, पेड़ पर पक्षी हैं, उनको तुमने रात में कभी बोलते देखा? नहीं देखा! देखा है, यदि अकस्मात कोई संकट आ जाए, तो एकदम आवाज करेंगे। बेटा! अपने पर ऐसा कौन सा संकट है, जो अपन लड़ाई–झगड़ा कर रहे, अपने घर से बाहर आवाज जा रही। देखो यदि संकट नहीं होता है, तो चिड़िया की आवाज पेड़ से बाहर नहीं जाती। पक्षी की आवाज भी पेड़ से बाहर नहीं जाती, तो अपन तो मनुष्य हैं, अपन तो समझदार है, और समझदारों की सर्वोच्च दशा जैन कुल में, आप उपस्थित हो। और ऐसी स्थिति में, यदि हमारे घर की आवाज, बाहर जा रही हैं, तो बाहर वाला तो मदद करने दौड़ेंगे, लेकिन संकट नहीं होगा, तो द्वारा विश्वास नहीं करेंगे। जब द्वारा विश्वास नहीं करेंगे तो द्वारा मदद भी नहीं करेंगे। इसलिए कोई संकट का काल हो, तो तो शोरगुल होना चाहिए, यदि संकट नहीं है, तो शोरगुल कैसा? हम यह नहीं कहते कि, चुप रहो पर हम यह कहते हैं, बोलने से संकट आते हैं। देखो पक्षी पेड़ पर मौन रहते हैं, तो क्या होता है? साँप आदि हिंसक जंतु यह जान नहीं पाते हैं, कि इस पेड़ पर पक्षी हैं और रात्रि सुखमय व्यातीत कर लेते हैं। उसी तरह जब, घर में कलह नहीं होती है, झगड़े नहीं होते, तो बाहर वाले यह नहीं जान पाते कि इनमें फूट हैं, तो बाहर वाले कोई उपद्रव नहीं कर पाते हैं। जब घर से कलह की आवाज बाहर निकलती है, तो बाहर वाले अन्यायी अपने घर पर संकट ला देते हैं। इसलिए बेटा ! अपन उन पक्षियों से सीखो, कि पक्षी आते हैं, पेड़ पर ठहर जाते हैं, और सुबह–सुबह उड़ जाते हैं। हम यह नहीं कहते कि आवाज मत करो/**मौन रहो, तो संकट नहीं आयेगा** और संकट आ गया तो, ऐसी आवाज करो कि उस संकट से मुक्ति मिल जाए, तुम्हारी मदद के लिए लोग दौड़ पड़े, सहायता के लिए दौड़ पड़े। तारंगा की बात थी, रात्रि का समय था, पेड़ पर

पक्षी आवाज कर रह थे, उस आवाज को सुनकर भैया बाहर निकले, देखो कोई है और टार्च दिखाई तो टार्च के प्रकाश दिखाने से, जो बड़ा हिंसक जानवर था, वह भाग गया। तो क्या होता है? यह पक्षी आदि जो होते हैं, वह आग से, टार्च से, हिंसक जानवर डरते हैं, वह तत्काल भागते हैं। शीरड शाहपुर की मैं बात बताता हूँ, महाराज शुद्धात्म सागर जी कमरे के भीतर थे और शास्त्र जमा रहे थे, तो शास्त्र जमाते–जमाते इन्होंने नीचे के शास्त्र खाली कर लिए और ऊपर के खाली नहीं किए, ऊपर भारी शास्त्र और नीचे का खाली कर लिया, अब ये अलवारी पकड़े हैं, और अलबारी का वजन इनके ऊपर। अब खुशी की बात यह थी, कि दरवाजा बंद नहीं था। इन्होंने आवाज दी तो ये आवाज किसको करें? किसी ब्रह्मचारी को, तो हम लोग समझे, यह लोग उधम करते ही है, सो उधम कर रहे होंगे, कोई ध्यान नहीं गया। दूसरी आवाज दी, तीसरी आवाज दी, चौथी आवाज दी, फिर इन्होंने आवाज में बोला कि कोई तो दौड़ो तब फिर हम लोग गए, देखा की अकेले इतना वजन. ....तो तात्पर्य यह है, कि संकट का काल है, तो तुम खूब बोलो, ताकि तुम्हारी हेल्प हो जाए, लेकिन सामान्यतः कलह मत करो। यह सिखाति है, यह कारिका, यह सिखाता यह रहस्य, क्योंकि आचार्य को अपना संघ भी तो देखना था, उपदेश पूरे संघ के बीच में हो रहा है। साधुओ ! देखो परिवार है, जन्म से एक घर के जन्मे हैं, माँ ने जन्म से संस्कार दिए हैं, पिता ने जन्म से संस्कार दिए हैं, तो मिलजुल कर रह सकते हैं। लेकिन हमारे यहाँ तो कोई राजस्थान से, कोई मध्यप्रदेश से हैं, कोई उत्तरप्रदेश से हैं, कोई महाराष्ट्र से हैं, नाना प्रदेशों से आए हैं और सबके बीच में सबको कैसे रहना है? आचार्य यह सिखाते हैं सूत्रों के माध्यम से, ये मेला है, मेला कहता है, मिलके रहो।

''मित्र मिले तो, मेला कीजे, चित्त होय तो चेला।
साधु मिले तो संगत कीजे, वरना भला अकेला।।''

सब को जाना है, अपनी–अपनी आयु पूरी करके, जब तक हो, धर्म के साथ रह लो, और फिर तो जाना ही है। अच्छे से रहोगे तो एक जैसे गुण होंगे, एक जैसा धर्म आचरण होगा तो स्वर्ग में मिलेगा, और कुछ भिन्नता होगी तो यही बिखर गए, तो वहाँ कहाँ मिलेगें? यही मन मुटाव हो गया, कषायें जाग्रत हो गई, तो वहां कहाँ मिल पायेंगे? भैया ! मिलने में

देर हो जाये, कोई बात नहीं, लेकिन यदि धर्म के साथ जायेंगे, संन्यास के साथ जायेगे, तो मिलेंगे। अपन जायेंगे कुंदकुंद से मिलने के लिए, जायेंगे समन्तभद्र से मिलेंगे, उमास्वामी से मिलेंगे, पूज्यपाद स्वामी से मिलेंगे। वह पूछेंगे कहाँ से आए? मैं कहूंगा इंदौर से आ रहा हूँ, मध्यलोक से आ रहा हूँ मध्यलोक में, कहाँ–कहाँ विचरण किया? इंदौर, कर्नाटक, महाराष्ट्र अच्छा–अच्छा, तो आपकी दृष्टि मैं कभी सर्वार्थसिद्धि आई, हाँ जरूर आई, आपने उसको पढ़ा, जरूर पढ़ा, उसमें क्या लिखा है? बस उसी की कृपा का फल है, कि आज मैं स्वर्ग में हूँ। बोलो! कभी मिलेंगे कि नहीं, आपको कुंदकुंद स्वामी से मिलना है कि नहीं मिलना? समन्तभद्र स्वामी से मिलना कि नहीं मिलना? अपन तो आज मिलो, कल मिलेंगे। **आज यदि उनकी गाथा, और गाथा के आचरण से मिल गए, तो स्वर्ग में, भी जाके मिलेंगे। यदि आज महान आचरण कर लिया, तो कल वह सब महान आत्मायें मिलने वाली हैं।** क्यों? वह जायेंगे कहां? स्वर्ग में तो है, सौलहवे स्वर्ग से कोई ऊपर है नहीं, और आठवें स्वर्ग तक अपन छलांग लगा सकते हैं। इस काल में सौलहवे स्वर्ग से ऊपर कोई जाने वाला साधु नहीं है, क्योंकि **अंतिम तीन संहनन हैं** सौलहवे स्वर्ग तक छलांग, और उतनी छलांग अपन लगा सकते हैं, चाहे स्त्री हो या पुरुष कोई भी छलांग लगा सकता है। कैसे लगायेंगे? तो फिर जाते–जाते हमने कहा पूज्यपाद जी, कहाँ जा रहे, बोले स्वर्ग जा रहा हूँ। मैंने कहा मुझे भी आना है, बोले आओगे, मैंने कहा पक्का आऊँगा। बोले जिस तरह से मैं जा रहा हूँ। उस तरह से आ जाना कैसे? **वरं व्रतैः पदं दैवं,** व्रतों को धारण करोगे तो स्वर्ग आ जाओगे, और नहीं धारण करोगे तो समझ जाओ यह स्थिति है।

रहे सुख शांति जीवन में, नहीं, यह भावना स्वामी
डरें न संकटों से हम, यही है, भावना स्वामी।।

❑❑❑

10

अहितकर के प्रति क्रोध व्यर्थ

विराधकः कथं हन्त्रे, जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां, स्वयं दण्डेन पात्यते ।।10।।

अन्वयार्थ – (**विराधक**) अपकार करने वाला मनुष्य (**हन्त्रे जनाय**) मारने वाले मनुष्य के लिए (**कथं परिकुप्यति**) क्यों क्रोध करता है (**त्र्यङ्गुलं**) तीन अँगुले (**फावड़े आदि**) का भूमि पर (**पातयन्**) खोदने के लिए गिरा हुआ मनुष्य (**पद्भ्यां**) पैरों के द्वारा (**स्वयं दण्डेन**) स्वयं लकड़ी के बेंत द्वारा (**पात्यते**) गिराया (**झुकाया**) जाता है।

देखो, कायर डरपोक बनने की आवश्यकता नहीं है, हम संकटों से डरे, यह भावना नहीं है। मुझे तो साहस दीजिए, मुझे संबल दीजिए, मुझे वह कला दीजिए, जिससे संकटों को पार कर सकूँ, मुझे वह तत्त्व ज्ञान दीजिए। जिस ज्ञान के बल पर पारसनाथ तुमने संकटों पर पार पाया है, महावीर तुमने उपसर्गों को झेला है, यशोधर! पाण्डव! तुमने उपसर्गों को झेला है, मैं यह नहीं कहता कि मेरे ऊपर संकट ना आये, मैं कहता हूँ संकट पर कैसे विजय पाये? निमित्तों को हटाने में बुद्धि न लगे, अपने उपादान को मजबूत करने की कला सिखायें। गलत नहीं है, तो झुकेंगे क्यों? निमित्तों के सामने झुक गए तो ज्ञान किसलिए था? ज्ञान तो उसी क्षण के लिए था। पढ़ाई परीक्षा के लिए होता है, बस उस निमित्त से अपना संक्लेश नहीं बढ़ाना, दूसरे को हटाना नहीं, स्वयं हट जाना। **अपनी समता स्वयं बनाना,** इसलिए अपना भोजन अपने मड़वा तरे पकाओ। समझ गए, अपना भोजन, **अपनो भात, अपने मड़वा तरे पकाव, ऊमें जो आनन्द है, जो कोनऊ में नईया। जाई सीखी हमने बूढ़न पुरानन से।** देखो अब कोई कष्ट देने आ जाये, तो क्या करें? भैया! साँप के मुख में

अंगुलि डालना नहीं है, अब बैठे की कोई आ जाये, तो भैया! हम अपने स्वभाव से विचलित नहीं होंगे, यह साधु की अवस्था है, यह अध्यात्म का ग्रंथ है। हम सर्प के मुख में अंगुली डालने नहीं जायेंगे, लेकिन बैठे हैं और आकर काट ही ले तो, भैया! हम किसी से लड़ने नहीं जा रहे और कोइ आके, कुछ, सुनाने लगे तो, सुनाले भैया

'ददद‍ु ददतु गालीं गालीवन्तो भवन्तः'

भैया! आप तो गालीवान है और गाली देना चाहते हो तो वह भी दे दो, जिसके पास जो होता है, वह वही तो देता है। आगे भी सुनो इतने में ही मुस्करा गए।

वयमिह तु अभावे गाली दानेअसमर्थः

मेरे पास गालीयों का अभाव है, मैं तो नहीं दे सकता हूँ। जिनके पास होगी, वह दे सकता है। देखो भैया! रास्ते से कोई आया, आपने उसे दो रुपये दे भी दिये तो सिद्धि क्या हुई? इनके पास और भी पैसे होंगे, तब तो दो रुपये दिए। उसी तरह किसी ने दो गोलियाँ दी, तो समझलो, उसके पास ऐसी कितनी होंगी, हमें तो दो ही दी है। बाकी तो उसने ही रख ली, अपने पास। यह सोच के खुशी मनाओ। भैया! समता बनाना है, तो कोई न कोई तो उपाय करना पड़ेगा। सुनो भैया! उपश्रेणिक नाराज हो गया। नाराज क्या करे, उपश्रेणिक ने वचन दिया था, आपको ज्ञात है। चाहता था कि, मैं राज्य चिलाती को दे दूँ श्रेणिक को न दूँ। लेकिन श्रेणिक बड़ा पुत्र तो है, क्या करूँ? जब तक इसे अपराधी घोषित न करूँ, तब तक इसे कैसे हटाऊँगा तो क्या करूँ? कोई अपराध इसके सिर मड़ा जाए। पिता सोच रहा है, पुत्र के विषय में, इस राज्य का अधिकारी कौन होगा? जो योग्यता की परीक्षा देगा। क्या परीक्षा लेंगे? मैदान में बैठकर के आपको भोजन करना है, ठीक है, कोई भी कर लेगा, लेकिन, नहीं कर पाये, तो तुम्हें राज्य नहीं मिलेगा, ठीक है नहीं मिलेगा, लेकिन परीक्षा बुद्धिमानी की थी, 500 कुत्ते छुड़वा दिये, भोजन को बैठना हुआ कि 500 कुत्ते छोड़ दिये। अब बताइये, आप भोजन करने बैठो, और 500 कुत्ते आ जाए तो, आप क्या करोंगे? पहले उसको भगाने जाओगे, कि भोजन करते रहोगे, बोलो। भगाने जाओगे, और जितने में भगाने गए, उतने में, दूसरा कुत्ता आया, उसने पातल चाट ली तो? फिर क्या

होगा? बोलो। तो क्या किया जाए? श्रेणिक बुद्धिमान था, वह जानता था, कि श्वान समूह किस दिशा से आ रहा है? और जिस दिशा में आ रहा है, उसने एक लड्डू यहाँ से फेंका, तो धुड़कता हुआ गया, तो कुत्ते लड्डू के पीछे आयेंगे कि मेरे पीछे आयेंगे? सभी स्वान उस मोदक के पीछे दौड़ रहे हैं और जब तक कुछ स्वान उस ओर दौड़ते हैं, तब यह एक पुड़ी, ऐसी हवा में उड़ाते हैं कि सब स्वान ऊपर की ओर देखते हैं, और लड्डू और पुड़ी की ओर दौड़ जाते हैं और एक पुड़ी को पचास श्वान झपट लेते हैं, जब तक समय मिला, इतने में भोजन करने लगते है, फिर देखा कि कोई श्वान का समूह आया, तो फिर एक पुड़ी छोड़ दी, समझ रहे। अर्थात् **विपदाओं को बुद्धि से जीता जाता है,** भैया! कला है, मुक्ति कन्या को पाना है, तो आसान नहीं है, वेद जी! साहब! आपकी जब शादी हुई, तो शादी होने के बाद आप विदाई कराके ला रहे थे। तो ज्यों ही आप गाड़ी में बैठे, त्यों ही क्या हुआ? यह हुआ कि आपके बेटे की माँ को, और आप को दोनों को गाड़ी के आगे खड़े होकर के उसके भाई ने रोक लिया। होता है कि नहीं, दुल्हन का भाई गाड़ी को रोक लेता कि नहीं? रोकता है, बोला गाड़ी आगे नहीं जायेगी। अब क्या करते, लड़ते हो उससे? अरे भाई ! जब मैं, यह वधु लेकर जा रहा, तो मुझे कुछ देना पड़ेगा ना भैया! अभी यह लड़ाई की बेला नहीं है, अभी यह कलह की बेला नहीं है, अभी यह वरण की बेला है, और वरण की बेला में, कुछ दो, और शांति से निकल जाओ। बस कुछ दिया और निकल लेते हैं। उसी तरह से, मुक्तिरूपी कन्या के ग्रहण की बेला में तुम चल रहे हो, तो क्या करो? किसी से कलह मत करो और शांति से, कुछ इनको दो, और निकल चलो। इनकी भी सुनलो, उनकी भी सुनलो, और इनकी भी मन की कर दो, कुछ उनकी भी मन की कर दो, और अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाओ ऐसा पथ है, **विराधकः कथं हंत्रे,** गुस्सा करने वाले पर भी कुपित नहीं हुआ जाता है। यदि कोई गुस्सा करता भी है, तो वह अपना ही अहित करेगा, लेकिन मेरा अहित नहीं होता, मैं गुस्सा करूँगा, तो मेरा अहित होगा। देखो यह कैमरा रखा है, यह तीन पैर के ऊपर रखा है। यदि इसका एक पैर गिरा दिया जाये, तो कैमरा भी नीचे गिर जाएगा। उसी

तरह से आचार्य कहते हैं, तीन पैर वाले यंत्र पर एक व्यक्ति बैठा है। वह क्या करे? यदि एक पैर को ठुकरायेगा, तो क्या होगा? वह व्यक्ति भी नीचे आ जायेगा। अरे भाई ! राग, द्वेष, मोह, ये तीन पैर हैं। चाहे तू राग कर, चाहे तू द्वेष कर, चाहे तू मोह कर। गिरेगा तू ही। यदि तू गिरना नहीं चाहता है तो न राग कर, न द्वेष कर, न मोह कर जिसको करना हो, वह करें। तेरा भला तू जान, मेरा भला मैं जानूँ। इस तरह से विषय हुआ।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

❑❑❑

11

संसार में जीव किस कारण घूमता है?

रागद्वेष द्वयीदीर्घ, नेत्राकर्षण कर्मणा।
अज्ञानात् सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ।।11।।

अन्वयार्थ –(असौ) यह (जीवः) संसारी प्राणी **(संसार अब्धौ)** इस संसार–समुद्र में **(अज्ञानात्)** अज्ञानता से **(सुचिरं)** अनादिकाल से **(रागद्वेषद्वयी दीर्घ)** राग–द्वेष रूपी दो डोरियों से **(नेत्राकर्षण–कर्मणा)** घुमायी जाती हुई मथानी की तरह **(भ्रमति)** घूम रहा है।

प्रिय आत्मन्!

स्याद्वाद देशना को प्राप्त करने वाले भव्य जीव, देशना लब्धि का पावन योग, जब विशुद्धि जाग जाती है, तो देशना का रसपान होता है। देशना के माध्यम से ज्ञान क्षयोपशम भी होता है, विशुद्धि भी होती है, देशना तो होती ही है, प्रायोग्य और करण लब्धि तक जीव पहुँचता है। प्रवचन श्रद्धान के लिए है, सम्यग्दर्शन के लिए है, और सम्यक्चारित्र के लिए है। ज्ञान का कार्य, प्रवचन का कार्य किसी को विद्वान बनाना नहीं है। प्रवचन का कार्य सम्यक्दृष्टि और सम्यक्चारित्री बनाना है। जो सम्यक्दृष्टि होगा, वह स्याद्वादी तो नियम से होगा। जो ज्ञानवान हुआ वह सम्यक्दृष्टि होगा यह भजनीय है, विकल्प है, हो भी सकता, नहीं भी हो सकता। लेकिन सम्यक्दृष्टि होगा तो ज्ञानवान भी होगा। इसलिए नेमिचन्द्राचार्य जी ने लब्धिसार जी में लिखा – मैं यहाँ पर जो कहूँगा, वह सम्यग्दर्शन लब्धि के लिए कहूंगा और सम्यक्चारित्र लब्धि के लिए कहूंगा। प्रश्न आ गया आप ज्ञान के लिए क्यों नहीं लिख

रहे? मैं जो शास्त्र लिखूँगा, उससे ज्ञान तो होगा, लेकिन ज्ञान के लिए ज्ञान नहीं है। आपको समझ में आ रहा ? लेकिन समझने के लिए नहीं है, यह श्रद्धान करने के लिए और आचरण करने के लिए है। कुछ ज्ञान हुआ? ज्ञान तक नहीं रखना, हमारे आचार्य का उद्देश्य तो देखो, वह जानते हैं, हित सम्यग्दर्शन से और चारित्र से होता है। सम्यग्दर्शन नहीं है, तो ज्ञान काम का नहीं है और सम्यग्दर्शन होगा तो ज्ञान नियम से होगा और उसके आगे चारित्र चाहिए। ज्ञान का दीपक तो मैंने रख दिया, अब तुम्हारा काम है, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र को पकड़ो। इसलिए शास्त्र दीपक है, यह दीपक आपके सम्यग्दर्शन को प्रकाशित करेगा और सम्यक्चारित्र को प्रकाशित करेगा। देहरी पर रखा दीप है, इस ओर भी प्रकाश और उस ओर भी प्रकाश। आइये श्री इष्टोपदेश जी की कारिका ग्यारहवीं है। राग–द्वेष चारित्र मोहनीय कर्म की, दो मूल प्रकृतियाँ हैं। दर्शनमोहनीय की बात पहले कह चुके हैं और उसका निराकरण भी कर चुके, आठवीं कारिका में, दर्शन मोहनीय की बात कर चुके। अब ग्यारहवी कारिका में आ रहा है, चारित्र मोह के दो भेद होते हैं, राग और द्वेष, आचार्य महाराज ने देखा, जैसे मटकी के भीतर मथानी में दो रस्सी है, ध्यान देना – मथानी को कोई घुमाता नहीं है, बोलो मथानी को घुमाता क्या? घुमाते किसको हैं? खींचते किसको है? रस्सी को, घूमाता कौन है? मथानी घूम रही । मथानी कहाँ घूम रही? उसी मटकी के अंदर मथानी घूमती रहती है। जैसे दो रस्सियों से खींची हुई मथानी, उस मटकी के अन्दर मठे के अंदर घूमती रहती है, उसी तरह संसाररूपी समुद्र में, यह जीव मथानी की तरह बंधा हुआ है, और राग और द्वेष की दो रस्सियाँ इसको खींच रही है। कभी राग अपनी ओर खींचता है, तो द्वेष ढीला होता है, फिर द्वेष खींचता है तो राग ढीला होता है। फिर राग खींचता है, तो द्वेष ढीला होता है। लेकिन या तो राग में या द्वेष में, हम बोलते हैं। **न राग में, न द्वेष में, विश्वास दिगम्बर भेष में।** हाँ वह न राग में, न द्वेष में। हम राग और द्वेष में। प्रिय बन्धुओ ! आचार्य भगवन् कहते हैं– संसार में यह जो जीव भ्रमण कर रहा है, भ्रमण का कारण क्या है? कारण तो होगा, कौन घुमा रहा? मथानी को घुमाने वाली महिला दूसरी हो सकती है, लेकिन हे जीव ! तुझे घुमाने वाला कोई दूसरा नहीं है, जीवराज! तुझे संसार में घुमाने वाला.....देखो। वेदजी ! अभी भव आयेगा, तो कहेगा दादाजी हमारे लिए बाजार घुमा

दो न, तो उसे गाड़ी में बिठा के घुमा लाओगे। क्यों? यह दो द्रव्य हैं, बाजार में, हो सकता है, लेकिन हमको संसार में कौन घुमा रहा है? आचार्य कहते हैं– **'अज्ञानात्'** जीव अपने अज्ञान से, **संसार अब्धौ,** अब्धौ माने समुद्र में, संसार रूपी समुद्र में, क्या करता है? **भ्रमति** भ्रमण करता है। ठहरता नहीं है। रमता नहीं है। भ्रमति और भ्रमर तो जानते हो, कैसा होता है? एक लहर चली इधर से उधर, समुद्र में जब लहर चलती है, तो क्या स्थिति होती है? उसमें कोई सामान पड़ा हो, कोई वस्तु डली हो, तो उसकी क्या स्थिति बनती है? तैरती रहती है। भैया ! जिसने समुद्र देखा हो, वह जाने, समुद्र तो हम लोगों ने देखा है – मुम्बई में समुद्र की भयावहता, जब समुद्र के किनारे खड़े होके देखते है तो समुद्र में कुछ नहीं दिखता, लेकिन जब समुद्र के बीच में पहुँचो, तब लगता है समुद्र है क्या? कहना तीन अक्षर का है, लेकिन समुद्र बहुत विशाल है। इसलिए आचार्य ने, संसार को समुद्र की उपमा दी है। समुद्र की गहराई कितनी है? आचार्य कहते हैं, तूने दुर्लभ मनुष्य भव पाया, और इस दुर्लभ मनुष्य भव को पाकर यदि संयम धारण नहीं किया, तो नर भव को ऐसे खो दिया यह समझ के चलो। जैसे यह पेन है और यह पेन का एक भाग और यह दूसरा भाग, पेन के इस भाग को समुद्र के एक किनारे पर फेंक दो, और दूसरे भाग को समद्र के दूसरे किनारे पर फेंक दो, जब यह दोनों मिल जाये। बोलो लहरों के बीच में पेन का मिलना कितना कठिन है। उसी तरह मनुष्य भव का पाना अत्यंन्त दुर्लभ है।

'डालकर राई समुंदर, राई फिर मिलती नहीं
राई पर मिल जाये, पर नर भव पुनः मिलता नहीं।''

आचार्य भगवन् ने कहा– यह मनुष्य भव कितना दुर्लभ चौराहे पर चिंतामणि रत्न रखके चले जाओ, कल उठाके ले आना। वेदजी साहब की अंगूठी बहुत अच्छी है, इसको चौराहे पर रख दो, कल ले आना – मिल जायेगी क्या? वह कदाचित् मिल भी जायेगी, लेकिन यह मनुष्य भव एक बार खो दिया तो पुनः कब मिलेगा पता नहीं। 'जीवः भ्रमति' जीव भ्रमण करता है? जब भ्रम होता है, तो भ्रमण करता है। **श्रम होगा तो श्रमण, भ्रम होता तो भ्रमण। जिसमें भ्रम है, उसका भ्रमण है। जिसमें श्रम है, वह श्रमण है।** भैया ! बहुत प्यारी कारिका है, मैं क्यों घूम रहा? अज्ञानात् पंचमी विभक्ति, जैसे हिमालय से गंगा निकलती है,

वैसे अज्ञान से भव–भ्रमण निकलता है। अज्ञान से हम भव समुद्र में भ्रमण करने निकले, भैया ! भव समुद्र में प्रवेश कर गये, बहुत बड़ी गलती कर गये, कितना अज्ञानी है? मेरी जो यात्रा चल रही है, यह मेरी अज्ञानमयी यात्रा है, भवभ्रमण की।

''यत्र रागः पदंधत्ते, द्वेषः तत्र सुनिश्चयः'' ध्यान देना। एक माँ का एक बेटा है। माँ को उससे राग होगा कि नहीं होगा? होगा। द्वेष कितनों से होगा? एक में राग है, अनेक में द्वेष है, कैसे द्वेष है? जो भी उस बेटे को जरा सा कष्ट पहुँचायेगा, उससे द्वेष हो जायेगा। **यत्र रागः** राग ने पैर रख लिया, तो द्वेष तो होगा ही। यह मत सोचो कि राग ही है, जिससे जितना राग होगा, उससे द्वेष भी उतना ही होगा। समझकर चलना, राग में कोर्ट मैरिज होती है, तो द्वेष में ही तलाक होता है। राग–राग है, जितना राग खतनरनाक है, उतना द्वेष भी खतरनाक है। राग फूल है, तो द्वेष कांटा है, लेकिन फूल में भी विष हो सकता है, क्योंकि यह राग का फूल अमृत पुष्प नहीं है, राग का फूल विष पुष्प है। द्वेष फूल तो नहीं है, पर कांटा है, पर यह कांटा कोई गुलाब का कांटा नहीं है, जो आसानी से टूट जाये, यह कांटा विषवृक्ष का कांटा है। राग भी उतना ही खतरनाक–मरूभूति तू राग के कारण गया – भाई के पास, बोलो? देखिए! जीव का अज्ञान और मोह कर्म, राग में कारण बनता है, मोह कर्म की संतान राग–द्वेष है, तो मोह कर्म कारण है और राग उसका कार्य है। राग कार्य है, मोह कारण है, और राग कारण बनेगा तो आगे प्रक्रिया चलेगी। इस तरह राग–द्वेष रूपी दो रस्सियों से यह जीव खिंचा हुआ, भ्रमण कर रहा है। कहाँ? संसाराब्धौ, संसार रूपी समुद्र में भ्रमण कर रहा है। भैया ! जब समुद्र में लहर उठती है तो पन्द्रह फीट, बीस फीट ऊपर लहर उठती है, और कोई नौका पर चल रहा हो, तो नौका ऊपर–नीचे होती है–समुद्र में, यह स्थिति होती है। मुनि श्री प्रबल सागर जी महाराज ने समुद्री नौका विहार किया, घोघा से दहेज तक, ओ हो............समुद्र की यात्रा और वह यात्रा भी कम से कम 38 किलोमीटर की, नौका ऊपर उठती थी, और फिर नीचे गिरती थी, समुद्र में। पानी में जगह खाली हो जाती है, जरा भी चूक हो जाये तो पानी ऊपर आ जाये, डूब जाये भैया उनका पुण्य योग था। आइये। जीवन में हम राग–द्वेष के कारण भटक रहे हैं। अपने अज्ञान के कारण संसार भ्रमण हो रहा है, हे जीवराज! तू अपने अज्ञान को छोड़ दे। अब दूसरे को दोष

मत दे, तू अपने अज्ञान को दोष दे, ध्यान देना। अज्ञान की लीला तो देखो, यदि तुमने किसी की शादी भी करा दी, और शादी के बाद कदाचित परस्पर में नहीं बनी, तो लोग यह सोचते हैं, उन्होंने हम को फंसा दिया। कदाचित् तुमने किसी को मोक्षमार्ग में भी लगा दिया, लेकिन उसके अंदर वैराग्य कमजोर है, तो उसके अज्ञान की लीला देखो, महाराज ने हमारा सब कुछ त्याग करा दिया अब हम कहीं के नहीं रहे। भैया ! अज्ञान की लीला, बड़ी विचित्र है। अज्ञान के कारण जीव संसार में भ्रमण करता है, अपने को देखता नहीं, और पर को दोष देता है। भैया ! दूसरे के दोष देखने के लिए जीव हर समय आँखें खुली रखता है, और अपने दोष नहीं देखता।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

❑❑❑

12

संसार विपदाओं का घर

विपद् भव पदावर्ते, पदिके वाति वाह्यते।
यावत्–तावद् भवत्यन्या:, प्रचुरा: विपदा: पुरा।।

अन्वयार्थ –(**भव–पदावर्ते**) संसार रूपी पैर से चलने वाले घटीयंत्र में (**पदिकाइव**) रहट के डण्डे के समान (**यावत्**) जब तक (**विपद्**) एक विपत्ति (**अतिवाह्यते**) समाप्त की जाती है (**तावत्**) तब तक (**अन्य: प्रचुरा:**) दूसरी बहुत सी (**विपद:**) विपत्तियाँ (**पुर: भवन्ति**) सामने आ खड़ी हो जाती हैं।

संसार में ऐसा क्या है? तो आचार्य कहते हैं–विपदायें है, जैस वैसे ही समुद्र में लहरें आती है, संसार में विपत्तियाँ आती है, कैसे आती हैं? आचार्य भगवन् पूज्यपाद जी थोड़े आगे बड़े, किसी ने कहाँ महाराज! मेरे पर संकट है, आशीर्वाद दो दूर हो जाये, गुरुदेव ने अपना समय निकाल के उसे समय दिया, उपाय बताया संकट दूर हो गया। दूसरे दिन फिर आ गया, तीसरे दिन फिर आ गया, अब बताओ, महाराज क्यों नहीं बताते तुम्हारे घर की आपत्ति, विपत्ति के विषय में इसलिए नहीं बताते हैं। क्यों? यदि बताने लगे और कदाचित् तुम्हारे सौभाग्य से आपत्ति दूर हो गई तो तुम इसी तरह रोज आना शुरु कर दोगे और ऐसा आना शुरु कर दोगे, तो फिर मेरा लक्ष्य भटक जायेगा। मैं अपना ही कार्य नहीं कर पाऊँगा, मैं जिस उद्देश्य से मोक्षमार्ग पर आया हूँ, वह मेरा उद्देश्य सफल नहीं होगा। इसलिए तो आपत्तियाँ कैसी आती हैं? पूज्यपाद स्वामी रास्ते में जा रहे थे, देखा – एक पानी का कुँआ है। वहाँ पर रहट पड़ा हुआ है, रहट जिसमें चद्दर की घरियाँ लगी रहती हैं और या तो बैल से चलाते हैं, अथवा व्यक्ति ही उस पर पाँव रखता जाता है, और रहट की घरियाँ पानी

भरके ऊपर आती है, ऊपर पानी खाली करती हैं, और घरियाँ नीचे पहुँचती हैं, वहाँ एक घरियाँ भरेगी, यहाँ एक घरिया खाली होगी। इस तरह से उसका क्रम चलता रहता है। यहाँ घरियाँ का भरना, और यहाँ खाली होना, और इस क्रम में, यह घरियाँ नीचे जायेगीं, और यह घरियाँ ऊपर आयेगीं। अब बताइये। वह घरिया कभी खाली होगी? मानके चलिए उसमें 100 घरियाँ है, तो कोई घरिया उसमें खाली होगी? जतनी खाली, उतनी भरी। ये क्रम उसमें चलता ही रहता है और यदि चलाना भी बंद कर दो, जितनी उसमें डूबी है, उतनी भरी ही रहेगी। यह स्थिति बनती है, आचार्य भगवान् कहते हैं–

विपद्भवपदाऽऽवर्ते, पादिकेवातिवाह्यते।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः, प्रचुरा विपदः पुरः।।2॥

पादिके पैर से चलाने वाला यंत्र, **पादिके** कहलाता है। जैसे झूला वाले, लाइट चली जाने पर पैर से चलाना शुरु कर देते हैं। उसी तरह रहट के लिए भी पैर से चलाया जाता था, तो यहाँ पर **पादिके** शब्द है, **'एष' पादिके** की तरह, पैर से चलने वाले यंत्र की तरह, **'अतिवाह्यते'** ढ़ोया जाता है, **'यावत्'** जब एक **'तावत्'** तब तक **'अन्याः प्रचुरा विपदः पुरः'** अन्य बहुत सारी विपत्तियाँ आगे आके खड़ी हो जाती है। एक विपत्ति का हल करके आते है, और सामने आके देखे तो दूसरी विपत्ति आ जाती है। भैया! बाजार से क्या ले आना? बोलो ! ले आओ, और जब तक घर आओगे तब तक दो चार सामान और बता देंगे, एक सामान लेके आओ, तो दो–चार सामान और बता देंगे। कल दो–चार सामान लाओगे, तो शाम को छः सामान और बता देंगे, कल शाम को छः लाओगे तो सोलह बता देंगे। समझ रहे। कभी भी ग्रहस्थी का काम पूरा होता ही नहीं है, ये कहने को नोन तेल रोटी है, लेकिन नोन में पहले ही लिखा न्यून कुछ न कुछ कमी बनी ही रहेगी।

प्रिय बंधुओ !

आपत्तियाँ कदम–कदम पर आती हैं। संसार इसी का नाम है, सोचो की संसार में भी रहे, और विपत्ति भी न आए, यह तो संभव ही नहीं है। संभव तो है, समुद्र में भी रहो, डूबो न, लहरों के थपेड़े न खाओ, संभव है, यदि नाव में बैठ जाओ। उसी तरह आचार्य कह रहे – समुद्र कितना है? जब तक तुझे धर्म की नौका नहीं मिली, तभी तक संसार में डूबने का

डर है। यदि समुद्र के भीतर भी, तू नौका में बैठ गया है तो पार। इसलिए आचार्य भगवन् ने धर्म को नौका के समान बताया। संसार समुद्र से तिरने के लिए धर्म नौका है, आचार्य भगवन् ने लिखा–

रत्नत्रय विशुद्धः सन्, पात्रस्नेही परार्थकृत्।
प्रतिपालियतधर्मो हि, भवाब्धेस्तारको गुरुः।।30/2।। (क्षत्रचूडामणि)

भवरूपी समुद्र से, तारने वाले गुरु हैं, खेवटिया हैं, और धर्म नौका के समान है, ऐसा समझो। इसलिए विपत्तियाँ तो संसार में आयेंगी, लेकिन उन विपत्तियों से आप यह समझो कि हम कैसे नाव में बैठ जाये? जितना धर्म है, उतना ही सुख है। जब संसार में विपत्ति आयेगी, तो हम विपत्ति से नहीं डरेगें, क्यों? देखो जब 24 हजार मुनियों पर विपत्ति आई, तो भद्रबाहु स्वामी ने कहा – यह सर्प बोल रहा है, संकेत दे रहा है कि बारह वर्ष का अकाल पड़ेगा, तो अपन को यहाँ से चल देना चाहिए। भद्रबाहु स्वामी की बात मानकर के बारह हजार मुनिराज चल दिये, उज्जैन से, दक्षिण भारत की ओर, लेकिन कुछ मुनि श्रावकों की बात में आ गये। क्यों? तुम क्यों घबड़ाते, अपने पास इतना धन है, कि बारह साल के अकाल को अपन झेल लेंगे और किसने देखा है, कि यह अकाल आयेगा भी, कि नहीं आयेगा। क्यों व्यर्थ में तुम जा रहे हो, जब आयेगा तो देखेंगे, ऐसा सोचकर गुरु पर तत्त्वश्रद्धा न रही धन पर श्रद्धा हो गयी कि धन है तो हम विपत्ति को झेल लेंगे। आचार्य कहते हैं–ये धन जो है, यह भी नाशवान है, क्या हुआ? बारह हजार मुनि धन पर विश्वास करके पतित हो गये, धर्म पर विश्वास किया, वह पार हो गये। गुरु पर विश्वास किया तो पार हो गये और श्रावकों पर विश्वास किया, रह गये। भैया ! आचार्य कहते हैं – धन कैसा है? अभी तो मेरा विश्वास था, कोई भी विपत्ति आयेगी, हमारे पास पैसा है, हम विपत्ति से पार पा लेंगे। भैया, ऐसी मान्यता होती कि नहीं होती? होती है। आचार्य भगवन्! अलग से कुछ नहीं लिखेंगे, आचार्य वह लिख रहे हैं, जो आपके जीवन में है।

❑❑❑

13

हर स्थिति में धन दु:खकर

दुरर्ज्येनाऽसुरक्षेण, नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि, ज्वरवानिव सर्पिषा।।13॥

अन्वयार्थ –(**दुरर्ज्येन**) बड़ी कठिनाइयों से कमाये जाने वाले तथा (**असुरक्षेण**) सुरक्षित न रहने वाले (**नश्वरेण**) विनश्वर (**धनादिना**) धन पुत्रादिकों के द्वारा (स्वस्थं मन्यः) अपने आप को स्वस्थ (**सुखी**) मानने वाला (**कः अपि जनः**) कोई भी मनुष्य (**सर्पिषा**) घी पीकर , (**ज्वरवान् इव**) ज्वर से पीड़ित मनुष्य की तरह मूर्ख होता है।

अब धन की स्थिति देखिए, बड़ी कठिनाई से धन का अर्जित होना। धन को कमाना, आसान काम नहीं है, कितने दांव पेच लगाने पड़ते हैं, कितना दिमाग लगाना पड़ता है, धन को कमाने में। जितना दिमाग धन को कमाने में लगाना पड़ता है, उतना तुम्हें धर्म को कमाने में नहीं लगाना पड़ेगा। पक्का बोल रहा हूँ, सत्य बोल रहा हूँ, जितना दिमाग धन कमाने में लगाते हो, उससे दशवाँ हिस्सा, यानी 10 प्रतिशत दिमाग भी यदि धर्म के कमाने में लग जाये तो तुम धर्मवान बन जाओंगे। क्यों? धन बड़ी कठिनाई से अर्जित होता है, कभी समुद्री यात्रा करना पड़ती है, कभी वन खण्डों में घूमना पड़ता है, कभी रात्रि में जाना पड़ता है, कितनी कठिनाई से लेकर आना होता है, उसमें भी लाखों ला रहे और लाखों में भी हजार बचते हैं। यानी बड़ी कठिनाई होती है, लाओ, लाने के बाद कहाँ रखोंगे? घर में ही घर में ही कोई पूत अच्छे निकल आये तो......तो सुरक्षा, बाहर से ले भी आये तो घर में भी असुरक्षा है। कोई सुरक्षा की गारंटी नहीं है, मकान की सुरक्षा की गारंटी हो सकती है लेकिन तुम्हारे धन की सुरक्षा की गारंटी नहीं है। असुरक्षा है, कठिनाई से अर्जित होता है, और सुरक्षित भी

नहीं रहता है। फिर क्या है? सुरक्षित भी हो जाये, तो पता नहीं क्या स्थिति बन जाये? कभी पानी के कारण समस्या, कभी आग की समस्या, कभी भूकम्प की समस्या, कैसी–कैसी समस्या आ जाती है, धन नश्वर है। धन आप रखलो कहीं पर भी, कितना ही सुरक्षित करलो, चाहे बैंक में हो, या कहीं हो, लेकिन पूर्ण सुरक्षा की गारंटी नहीं है। क्यों? कौनसी स्थिति क्या बनेगी? उस स्थिति में कोई सुरक्षा की गारंटी नहीं है। बैंक भी कब देगा? जब वह सुरक्षित होगा, तभी तो देगा, और वही सुरक्षित नहीं होगा, तो तुम्हें कहाँ से दे देगा? भैया! हमारे पास इतना ही है, हमारे यहां से ही चला गया, तो हम क्या देंगे? थोड़ा–थोड़ा देंगे। तात्पर्य यह है, **नश्वरेण** नश्वर है।

यह तन नश्वर, यह धन नश्वर नश्वर यौवन है।
अग्नि बोली तेरा ये धन, मेरा ईन्धन है।।
पर्यायें तो नाशवान हैं, आप अनश्वर हो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो।।242 (स.भ.)

क्या? धन आदि, पहले कहा था–**'वपुर्गृहं धनं दाराः'** तो वह चीजें क्या है?

नश्वर हैं। आदि शब्द लिखा है अकेला धन ही नहीं, पहले ही कहा था आठवीं कारिका में, **वपु गृहं धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रवः** यह सब चीजें भी नश्वर हैं। सदा नहीं रहती, जिनके कारण जीव इतना पाप करता है, कोई भी शाश्वत नहीं रहती, आपने देखा राजा की कहानी, जो राजा अपनी रानी से इतना प्रेम करता था, और उसी रानी ने, अपने पति को धक्का दिया और नदी में गिरा दिया। तो नश्वर है, **'धनादिना'** फिर भी भैया! कैसे हो? व्यापार वगैरह सब, बढ़िया चल रहा है। **स्वस्थंमन्यो** स्वस्थ मानता है। कौन? **जनः कोऽपि,** यदि कोई व्यक्ति इसी मे स्वस्थ मान रहा है, कि मैं ठीक हूँ भैया। अब तो कोई चिंता नहीं है, दुकान भी हो गयी, मकान भी हो गया, परिवार में सब ठीक है, और दादा जी तो खुश है। बच्चों के भी संबंध हो गए। बोले बस, महाराज ! अब तो गंगा नहा आये, बस निर्विकल्प, ऐसा कहते हैं। महाराज ! अब तो मुक्ति मिल गई। भैया ! अपने आप को स्वस्थ मान रहे, क्यों भई क्या पाकर के? धन पाकर के, ध्यान देना दो तरह के शत्रु होते हैं, एक अनुकूल शत्रु होते हैं, दूसरे प्रतिकूल शत्रु होते हैं। समझ के रखना इस बात को, आपके

घर मे सम्पत्ति नहीं थी, तो ससुराल से आ गई, अब सम्भालते रहो सम्पत्ति को, अब वह अनमोल सम्पत्ति तुम्हारी अनुकूल शत्रु हो गई, ओ सुसुर जी क्या हो गए? जिन्होंने तुम्हें सम्पत्ति दी है वह तुम्हारे अनुकूल शत्रु हैं। उन्होंने तुमको परिग्रह दिया, तुम बड़े खुश हो, की हमारे ससुर जी ने इतना सामान दिया, दहेज इतना दिया, इतना मिला। वह तो एक दिन में देकर मुक्त हो गए, चलो इतना तो हमारा घटा, इतना तो मेरा त्याग हुआ, छूटा, और जितना गया, उतने की चिंता, तो गई, आगे की तो चिंता मिटी। लेकिन अब तुम करना चिंता, कैसे सम्भालना? देने वाले ने तो एक पल में दे दिया, लेकिन सम्भालने वाले को तो जीवन भर चिंता करनी पड़ती है। इसलिए आचार्य भगवन् कहते हैं–किसी को बुखार चढ़ा है, वह व्यक्ति क्या करे? घी पिये, बताइये। घी पीना अच्छा होता है कि बुरा? अरे! घी–घी है, तुम्हारी बुद्धि में दोष है इसलिए तुम घी को दोष दे रहे। दोष हमारी बुद्धि का है, और दोष किसको दे रहे? घी को, बुखार आपको है, तो घी आपको बुरा है लेकिन घी बुरा है, कि आपके लिए बुरा है? बुखार आपको है, तो दोषी आप हो, न कि घी दोषी है और हमने दोषी किसको ठहराया? घी। मैंने घी पिया, तो वस्तुतः मेरे लिए बुखार न होता, मैं स्वस्थ होता तो घी मेरे लिए फायदेमंद था। बचपन से उसी घी को खाकर ताकतवर हुए, और उसी को दोषी ठहरा रहे। भैया ! ज्वरवान, जिसको बुखार चढ़ा हुआ है, वह **'सर्पिषा'** सर्पिष माने घी, उस घी आदि को पीकर सोचे मैं स्वस्थ हो गया। बुखार में यदि घी पिया जाये तो और ज्यादा गरिष्ठ हो जायेगा, अपाच्य हो जायेगा, और ज्यादा बीमारी बढ़ेगी। पूज्यपाद आचार्य भगवन् वैद्य थे, कहीं ना कहीं वैद्य अपनी बात तो लेकर आयेगा, वह अपनी बात लेके आ गये।

'ज्वरवानिव सर्पिषा'

यदि बुखार चढ़ा व्यक्ति, घी को पिये, और अपने आप को अच्छा माने तो, ठीक नहीं है। उसी तरह नश्वर धन आदि को पाकर के, अपने आप को स्वस्थ मानना, कुशल मानना, क्षेम मानना, ठीक नहीं है। मेरी सलाह तो यह हैं, फिर आपको जैसा लगे,

'जं रुच्चई, तं कुच्चई'

जैसा रुचे, वैसा करो। मेरी तो अंतिम सलाह यह है, वैद्य के नाते मैंने सलाह दे दी, की बुखार वाले को घी, अच्छा नहीं है। उसी तरह से धन आदि पाकर के अपने आप को अच्छा मान लेना, अच्छा नहीं है। स्वस्थ स्व माने आत्मा, स्थ माने ठहरना, आत्मा में ठहरना ही स्वस्थ है। इस तरह की तत्त्व देशना को आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने, हम सभी के मध्य यहाँ पर रखा, आज तेरहवीं कारिका इस तरह से पूर्ण हुई। आगे के विषय को हम यथा समय समझते चलेंगे। ये तत्त्व भावना पूरी हुई।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

❑❑❑

14

अज्ञानी आपदा न देखता
संसारी प्राणी दूसरों का दु:ख देखता है

विपत्तिमात्मनो मूढ:, परेषामिव नेक्षते।
दह्यमान मृगाकीर्ण, वनान्तर तरुस्थवत।।14।।

अन्वयार्थ – (**मृगाकीर्ण**) मृग आदि जीवों से भरे तथा (**दह्यमान**) अग्नि से जलते हुए (**वनान्तर**) वन में (**तरुस्थवत्**) वृक्ष पर बैठे हुए मनुष्य के समान (**मूढ:**) मूर्ख प्राणी (**परेषां**) दूसरे की (**विपत्तिम् इव**) विपत्ति के समान (**आत्मन:**) अपनी विपत्ति को (**न ईक्षते**) नहीं देखता

प्रिय आत्मन् !

'कहें सीख गुरु करुणाधार' जिनके हृदय में हित की भावना रूप अगाध जल राशि प्रवाहमान है। ऐसे करुणा के सागर, परम पूज्य आचार्य पूज्यपाद देव हम सभी भव्य जीवों को निहार रहे हैं। दृष्टि दो ओर जाती है, जब आचार्य महाराज विपाकविचय धर्म ध्यान चिंतन करते हैं, अपायविचय धर्म ध्यान का विचार करते हैं, तो संसार में जीव दु:खी क्यों हैं? जीवों के दु:ख कैसे दूर हों? एक माँ अपने बेटे को दु:खी कैसे देख ले, चाहे बेटा पास में हो चाहे बेटा दूर लेकिन बेटे का दु:ख माँ से देखा नहीं जाता, माँ उसे दूर करने का प्रयत्न करती है। बेटा अपना दु:ख का कारण समझ पाये, या न समझ पाये, कह पाये या न कह

पाये, लेकिन माँ दूर से ही बेटे का दर्द समझ लेती है। उसी तरह आचार्य भगवन हम भव्य जीवों के **त्वमेव माता**, तुम ही माता हो, तुम ही पिता हो, तुम ही भाई हो, तुम ही आकस्मिक वैद्य हो, तुम ही बंधु हो, तुम ही मित्र हो। आचार्य भगवान परम दयालु देवता हैं –

ओ देवता! हृदय में, बसता रहा जो।
मैं पूजता विनय से, पुजता रहा जो॥
आशीष में सरलता निज भेजता है।
मेरा विराग गुरु ही, मम देवता है॥ विराग उपदेश

जो निरंतर जीवों के दुःखों को देखते रहते हैं, और दुःखों को दूर करने का उपदेश, भी देते हैं। जिनका मन सदा दूसरों के दुःख को दूर करने के लिए तत्पर रहता है, ऐसे परम पूज्य गुरुदेव अचानक देखते हैं जंगल में आग लगी हुयी है। आचार्य महाराज तो राजमार्ग पर थे, लेकिन दूर से देख रहे कि आग लगी और वहाँ पर वन्य प्राणी बीच–बीच में घूम रहे हैं। एक पेड़ के ऊपर एक मनुष्य बैठा था, वह मनुष्य देखता है, ओ! जल रहा, ओ!! जल रहा, लेकिन उस मनुष्य को ये बोध नहीं हो पा रहा है। इस आग से यह पेड़ भी जल सकता है। जिस पेड़ पर मैं बैठा हूँ। आचार्य भगवन को ये दृश्य देखकर लग रहा है, कि सच में जैसे ओ पेड़ जल रहे हैं, उनके बीच में कोई जीव आ जाये प्राणी आ जाये, जन्तु आ जाये, वन्य जानवर आ जाये तब वह भी जल जाते हैं। और बड़े पेड़ में आग लग जाये, तो जिस पेड़ पर मनुष्य बैठा है, वह भी जल जाता है। वह मनुष्य कुछ पल के लिए सोच रहा है कि मैं पेड़ पर सुरक्षित हूँ, लेकिन काहे का सुरक्षित। जो आग पेड़ को जला सकती है, ओ आग मुझे भी तो जला सकती है, लेकिन ऐसा विचार नहीं आता, भैया ! उसी बात का विचार कर रहे हैं, भगवन्, देखो तो जीव की दशा, दूसरे की आपत्ति तो नजर आती है। दूसरा क्या कर रहा है? ये तो दिखता है, लेकिन मैं क्या कर रहा हूँ, ये नहीं दिखता। दूसरे का दुःख तो दिखता है, लेकिन अपना दुःख नहीं दिखता। दूसरा संकट में है, उसका संकट तो दिखता है। अपना संकट नहीं दिखता। भैया! दूसरा बीमार है, कल अपना भी तो नम्बर आ सकता है। आज श्मशान में कोई, कल और कोई होगा। एक ही गाड़ी कभी किसी के द्वारे आकर खड़ी हो जाती है। वह मुक्ति धाम रथ कभी किसी के द्वारे खड़ा होता है, कभी किसी

के द्वारे आकर खड़ा हो जाता है। भैया ! हम देखते हैं उसके द्वारे खड़ा है लेकिन हम ये नहीं सोच पाते हैं, कि कभी मेरे द्वारे मुक्तिरथ आके खड़ा होगा। जिस तरह आज ओ मुक्तिधाम गया है, उसी तरह मुझे भी मुक्तिधाम जाना होगा, ये तो विचार आता ही नहीं, जिस तरह आज वह सब कुछ छोड़के चला गया, एक दिन मुझे भी छोड़के चला जाना होगा। उसने कितने कमाया, ये पड़ा सब। उसके साथ गया क्या? उसका पाप। क्या? उसका पाप। उसके साथ। गया क्या? उसकी कषाय। उसके साथ गयी? उसका छलकपट। उसके साथ गया क्या? विभाव परिणाम। वैभव छूट जाता है, विभाव साथ जाता है। याद रखिएगा–विभव छूट जायेगा, विभाव नहीं छूटेगा। भैया ! जिनका विभाव छूट जाता है, उनका विभव साथ में जाता है। और जिनका विभाव नहीं छूटता है, उनका विभव तो छूट जाता, पर विभाव साथ में जाता है। एक को छोड़ोगे तो, दूसरा साथ जायेगा। विभाव छोड़ो तो विभव साथ जायेगा और विभाव पकड़ो, विभव छूट जायेगा।

विपत्तिमात्मनो मूढ़:, परेषामिव नेक्षते।
दह्यमान–मृगाऽऽकीर्ण, वनांतर–तरुस्थवत्॥14॥

विपत्ति मे पड़ा हुआ कोई मूढ, **'परेषाम'** दूसरों को देखता है, जलते हुए वन में, जलते हुए हरिणों को देखता है, लेकिन अपने आप को पेड़ पर खड़ा नजर पाता है। मैं सुरक्षित हूँ, मैं तो मकान में रहता हूँ। मैं तो सुरक्षित हूँ, मुझे कोई बीमारी नहीं है। भैया! कौन देखने गया? यमराज से कौन बचायेगा? **वनराज और गजराज से तो बचाया जा सकता है, लेकिन यमराज से नहीं बचाया जा सकता है।**

सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या।
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या॥
संसार महा दु:ख सागर के प्रभु दु:खमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन–कामिनी–प्रासादों में॥

भैया! कौन रोक पाया?

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी–अपनी बार॥1॥ (बा. भा)

कौन शरण है? सब अनित्य है–

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।

मरती बिरिया जीव को, कोई न राखनहार।।2॥

कौन शरण है? कौन बचायेगा? आचार्यकहते हैं, भैया ! दूसरे की आपदा को देखकर के ये सोचो की ये आपत्ति मेरे पर भी कभी आ सकती है। देखो आदिनाथ स्वामी ने नीलांजना की मृत्यु देखी थी कि अपनी मृत्यु देखी थी? नीलांजना की मृत्यु में अपनी मृत्य सोची थी, मेरे 83 लाख पूर्व निकल गये, मेरी भी ऐसी मृत्यु न हो जाये, मुझे ऐसा नहीं मरना। मुझे तो वहाँ जाना है, जहाँ मरण न हो।

''मरण नहीं हो, जहाँ हमारा, मुझे वहाँ जाना''

पूछते हैं लोग, महाराज आपको कहाँ जाना? मैं बता देता हूँ।

'मरण नहीं हो जहाँ हमारा, मुझे वहाँ जाना।'

महाराज आपको कोई जरूरत, कोई सामग्री चाहिए?

''जन्म मरण की परम्परा को पुनः नहीं पाना''॥ महाराज कब तक के लिए जा रहे हो?

काल अनंतों रहूँ, वहीं थिर, कोई फिकर न हो। मेरा अंतिम मरण समाधि तेरे दर पर हो।

❑❑❑

15

लोभी को धन इष्ट है

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष, हेतुं कालस्य निर्गमम्।
वांछतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम्।।15॥

अन्वयार्थ – (**कालस्य निर्गमम्**) समय का व्यतीत होना (**आयुः वृद्धि**) आयु के क्षय और (**क्षयोत्कर्ष हेतुं**) धन की वृद्धि का कारण है (**वाछतां धनिनां**) धन चाहने वाले धनवान् पुरुषों को (**जीवितात्**) अपने जीवन से भी (**सुतराम्**) अधिक (**धनं इष्टम्**) धन इष्ट होता है।

(**जीवितात्**) जीवन से, **धनं** धन **सुतरां** अच्छी तरह **धनिनाम्** जो धनिक हैं, उनको जीवन से भी अच्छा धन लगता है, **'लाभात् लोभो वर्धते'** लाभ होता है, तो लोभ बढ़ता है। व्यक्ति को जैसे जैसे लाभ होगा, वैसे वैसे लोभ बढ़ेगा, और लोभ बढ़ेगा तो दांव लगायेगा, और .... **'लाभात् लोभो वर्धते'** लाभ होने पर लोभ बढ़ता है, आचार्य कहते हैं–आयु का क्षय होता है, और वृद्धि धन की होती है। आप बैंक में एफ.डी. डालते हैं, स्वतः दस साल में, दुगनी होती है। धन दूना हो गया, ये तो दिखता है, लेकिन जीवन आधा हो गया, ये कब दिखता? जीवन इतना निकलेगा, ये कहाँ दिखता? भैया! धन का दुगनापन ही दिखता है, लेकिन जीवन का आधापना किसे दिखा? हम घर से कुछ लेके नहीं आये थे, इंदौर में सब वाले वाले हैं, और जो वाले वाले हैं, वह क्या लेके आये? अब बोलते भाई, कुछ लेके नहीं आये थे, हम तो ऐसे ही आ गये थे। सब हमने कमाया है, आचार्य कहते हैं–तू अपना जीवन तो लेके आया था, जब तू आया था, तब तेरी मुट्ठी में, कितने साल का जीवन था? देखो

आयु रेखा? 80 साल का जीवन था, अब शेष रेखा देखो, कितनी बची? तो वह कहते हैं, हम कुछ लेके नहीं आये थे। जीवन ऐसी चीज है, जो लेके आये थे, लेकिन उस पर ध्यान नहीं है। हम कुछ लेके नहीं आये थे। बोलो भैया। क्या जीवन लेके नहीं आये थे? लेके आये थे जीवन। तभी तो बोलते हैं– हमने जीवन सौप दिया, उससे बड़ा क्या तोहफा हो सकता है? उससे बड़ी क्या चीज जा सकती है? आपके घर में, नये घर की एक सदस्य आपके घर मे आई है, क्या लेके आयी थी? समग्र जीवन तो लेके आयी थी, समग्र जीवन तो सौप दिया, अब क्या पूछते हो, क्या लेके आई थी? सारा जीवन तो लेके आये थे, जीवन तो सोंप दिया। जीवन के इतने वर्ष तो यहाँ गुजार दिए। जीवन बड़ा होता है, कि धन बड़ा होता है? आचार्य कहते हैं– लोगों को धन इतना प्रिय है, कि धन के कारण जीवन को भी संकट में डाल देते हैं। आयु का क्षय हो रहा है। वृद्धि धन की हो रही है, काल निकलता जा रहा है। एक ही समय में दो काम होते हैं, एक ओर माइनस (–) एक ओर प्लस (+)। जीवन माइनस (–) हो रहा है, और धन प्लस (+) हो रहा है। भैया ! थोड़ा सा हम गणित लगायेंगे। एक मुहूर्त में 3778 सैंतीस सौ अठहत्तर श्वास जीव लेता है, यदि हम इसको 48 से भाजित करते हैं, तो लगभग 78 आता है। एक मिनिट में 78। यदि आप प्रतिदिन एक लाख बारह हजार रुपये कमाते हो, तब आपकी एक श्वास एक रुपये में बिकी। जब आप दुकान पर बैठते हो, जब आप कार्य करते हैं, तब आप दुकान पर, सिर्फ कपड़ा ही नहीं बेचते हैं, उतनी श्वासें भी बेचते हो, ग्राहक को सिर्फ आपने वस्तु ही नहीं दी है, उतनी श्वासें भी ग्राहक को दी हैं। जिन श्वासों से सिद्ध परमात्मा का नाम जपा जा सकता था, जिस श्वासों में तत्त्वार्थ सूत्र और समयसार का स्वाध्याय किया जा सकता था, उन श्वासों को हमने ग्राहक के लिए दे दिया। जो गणधर के लिए दी जा सकती थीं, वह ग्राहक को दी। एक दिन में करीब एक लाख बारह हजार श्वासें होती है, और हमारी कितने में चली गयी? एक लाख बारह हजार मिलते तो, एक रुपये में जाती। 1200 मिल रहे तो, एक पैसे में, एक श्वांस का मूल्य एक पैसा, यदि आप 1200 रुपये प्रतिदिन कमाते हैं, तो आप अनुमान लगाइये, स्थिति है क्या? कि हम श्वांस का मूल्य क्या कर रहे? और हमने तो अपने बेटे को, बाहर भेज दिया, और मेरा बेटा विदेश में है, भैया ! ध्यान देना **एक पेड़ उस**

पहाड़ी पर खड़ा है, जिसकी न तो हमें छांव मिलती है, न हमें फल मिलते हैं, सिर्फ दिखाई और सुनाई देता है, कि पेड़ है। उसी तरह जब हमारा बेटा बाहर पढ़ता है तो उसका न हमें फल मिल रहा, न उसकी छाया मिल रही।

प्रिय बंधुओ !

तत्त्व को समझो, सत्य को समझो। माली अपने बाग में, वृक्ष लगाता है, किसी पहाड़ी के ऊपर नहीं। माली भी एक पौधा लगाता है, तो बाग के भीतर लगाता है, जिस बाग के फल तोड़कर खा सके और खिला सके। लेकिन क्या महिमा, धन की अजब महिमा है, जिस धन के कारण हमें प्राणों से प्यारे अपने प्राण प्रिय पुत्र के लिए बाहर भेजना होता है। जाओ बेटा! कुछ कमाओ, कुछ करो। सुना था कि बेटा प्रिय है, लेकिन ये तो परम सत्य हो रहा कि। धन प्रिय है। तब तो कहते बेटा! जाओ कुछ कमाओ। कुछ करो। यानी धन इतना प्रिय है, और बेटा भी उतना कमाने के बाद भी कुछ नहीं। बीस साल की कमाई में तो अकेला मकान बना पाता है। क्या पाता है? कुछ नहीं, हम सोचते जरूर हैं, वहाँ कमाने गया तो बहुत कुछ कमा लेगा, लेकिन अंत में फल पाते हैं, आधे उम्र की कमाई में तो सिर्फ एक मकान ही बन पाता है। प्रिय बंधुओ! आयु वृद्धि, आयु का घटना और धन का बढ़ना, दो एक साथ चलते हैं। काल बीतता जाता है, समय निकलता जा रहा है, फिर भी **'धनिनां धनं इष्टं'** धनवान जीवों को, धन ही इष्ट होता है, उनकी अभिलाषा उसी में जाती है, उनकी इच्छा उसी में जाती है और निर्धन तो कोई है ही नहीं, एक इंद्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी के परिग्रह संज्ञा है। और जिसके परिग्रह संज्ञा है, वह निर्धन हो ही नहीं सकता। लोभ तो है ही, सत्ता में है। लोभ उदय में है, बंध में है। अब बताओ निर्धन कैसा? आचार्य भगवन् कहते हैं – **जीवितात्।** जीवन से भी प्रिय धन होता है। प्राचीन काल देख लो या आज देख लो, समुद्री यात्रा करके, 12–12 साल तक कमाने के लिए जाते थे। आज भी वही हो रहा, आज बेटा विदेश चला गया। तीन साल बाद अपने देश लौट के आयेगा। अब दो साल के बीच में क्या मम्मी को जुखाम नहीं होगा? क्या पापा को सिर दर्द नहीं होगा? जब बच्चा छोटा था, तब पिता जी एक रुपये देकर पाँव दबवा लेते थे, बुद्धू बना देते थे। लेकिन पिता जी अब क्या कर पाओगे? अब वह तीन लाख रुपये महिने कमा रहा है। अब तुम कैसे पाँव

दबवाओगे? भैया ! पूज्यपाद आचार्य भगवन् को पन्द्रह सौ साल पहले भविष्य दिख गया था। ये भविष्य है। जीवन से प्रिय धन है, और समाचार मिल जाता है, मेरे संघ में अध्ययन सागर जी महाराज हैं। बेटा अमेरिका में जॉब करता, समाचार मिला, पिताजी की दीक्षा है परन्तु आ नहीं सकता। क्योंकि आने के लिए पहले से टिकिट चाहिए, आने का एक लाख, जाने का एक लाख। दो महिने की कमाई तो किराये में लग जाये। भैया! पिताजी की दीक्षा हो जाये, तो नहीं आना और समाधि हो जाये, तो नहीं आ पाना। किसी का जन्म हो जाये तो नहीं, आ पा रहे, मरण हो जाये तो नहीं आ पा रहे। आयेंगे अपने समय पर। भैया ! इसलिए आचार्य सावधान कर रहे हैं, कि हे जीवो! काल निकल गया, तो फिर धन तुम्हारे साथ नहीं जायेगा। काल रहते, जितना धर्म करना कर लो, भैया ! त्याग करने के लिए भी कमाना ठीक नहीं

❑❑❑

16

त्याग के लिए संग्रह उचित नहीं

त्यागाय श्रेयसे वित्त, मवित्तः संचिनोति यः।
स्व शरीरं स पंकेन, स्नास्यामीति विलिम्पति।।

अन्वयार्थ – (**यः अवित्तः**) जो निर्धन मनुष्य (**त्यागाय श्रेयसे**) दान रूपी पुण्य के लिए (**वित्तं सञ्चिनोति**) धन को ग्रह करता है (**सः**) वह (**मनुष्य**) (**स्नास्यामि**) मैं स्नान करूँगा (**इति**) इस विचार से (**स्वशरीरं**) अपने शरीर को (**पङ्केन विलिम्पति**) कीचड़ से लिप्त करता है।

श्रावक कैलाशजी साहब! का कहना है, महाराज ! देखो हम अपने लिए तो कुछ कमा नहीं रहे, हम तो मन्दिर में दान करने के लिए कमाते हैं, हम तो कोई धर्म कार्य करने के लिए कमाते हैं। आचार्य कहते हैं भैया! ये भूल भी छोड़ दो, **तुम धर्म के लिए मत कमाओ, धर्म को तुम्हारी कमाई की जरूरत नहीं है।** हम तो मुनियों को दान देने के लिए कमाते हैं, मुनिराजों को भी इसकी जरूरत नहीं है। अरे ! धर्म के लिए मत कमाओ, फिर किसके लिए कमायें? भैया ! ये तो धर्म मना करता है, **कमाओ मत, आपके पास जो हो, उसमें से दे देना पुण्य है।** और नया कमाना पाप है। जो है, उसमे से दे दो। नया मत कमाओ। परिग्रह का त्याग तो तभी बनेगा जबकि जो हो, उसमें से दो। **अवित्तः वित्तं संचिनोति'** धन कमाता कौन है? **यः– अवित्तः** जिसके पास धन नहीं है, जिसके पास वित्त नहीं है, **यः अवित्तः सः वित्तं संचिनोति'** जो निर्धन है, वह धन कमा रहा है। कुआ पर पानी भरने कौन जायेगा? जिसके पास पानी नहीं है। जिसके पास छोटा बर्तन है, कम जरूरत है, तो वह छोटा बर्तन,

और जरूरत अधिक है तो बड़ा बर्तन, लेके पहुँच जाता है। भैया ! जिसकी जितनी जरूरत है, वो कमाता है। कमा कौन रहा है? जिसके पास अभाव है, इसलिए जब तक व्यक्ति कमा रहा है, तब तक ये सिद्ध होता है, वह निर्धन है। आप धनवान कहो, तो कहो – तुम कितना भी धनवान कहो, लेकिन कमाना जारी है, अब भैया क्या बोल रहे? मेरा बेटा बहुत कमाता है, मेरा बेटा बहुत कम आता है, हमने भैया से पूछा! बेटा मन्दिर नहीं आता? महाराज! बहुत कम आता है। क्यों? बहुत कमाता है। आचार्य कहते हैं, जो निर्धन है, वो कमाने की चेष्टा करता है, और सोचता है, मैं बहुत अच्छा कर रहा हूँ। आचार्य भगवन् कहते हैं– यदि तुम त्याग के उद्देश्य से कमा रहे हो, त्याग करने के लिए भी कमा रहो हो, तो तुम्हारा ऐसा करना, ठीक वैसा है, जैसा कोई सोचे, नहाने तो जा रहे, रास्ते में देखा, कि एक व्यक्ति नाली में लोट रहा था, उससे पूछा क्या कर रहे हो? बोले मैं तो गंगा नहाने जा रहा हूँ। तो ये क्या कर रहे? नहाना है ही, तो फिर अच्छे से.........। एक बार भैया से कहा, भटा का त्याग कर दो, ठीक है, कर देंगे त्याग। घर में गये, बोले मम्मी! मुझे कल भटे का त्याग करना है, तो क्या बात है? बोले आज बना दो, भैया! आज तो खा ही लो। भैया! ऐसे त्याग की चर्चा जैनागम में नहीं है। जैनागम कहता है, जो है उसका त्याग कर लो। ऐसे विचित्र लोग हैं, संसार में, कि कल तो त्याग करना ही है, आज तो खा ही लो। कल तो पर्युषण लग ही रहे, आज तो चौथ है ही, धांस के खाओ। भैया! जो संचित करके अपने को श्रेष्ठ मानता है वह मनुष्य ऐसा सोचता है, कि मैं स्नान करूँगा और इस विचार से अपने शरीर को कीचड़ से लीपता है। बताओ उसका अपने शरीर पर कीचड़ डालना अच्छा है क्या? नहीं। तो फिर **दान देने के लिए, धन कमाना अच्छा है क्या** ? आज तक तो हम मान रहे थे, कि महाराज खूब आशीर्वाद दो, खूब धन कमायेंगे, तो खूब दान करेंगे। आचार्य भगवन् कहते हैं–कम कमाओ। ये बात क्यों कह रहे हैं? क्योंकि मेरी दृष्टि ये है, यदि तुम समय से भोजन करते हो, और दान कम भी देते हो तो चलेगा। लेकिन रात्रि भोजन का पाप दान से चुक जायेगा क्या? नहीं एक सज्जन समय पर भोजन करता है, दान भले दे या न दे। दूसरे रात्रि में भोजन करते हैं, और पर्युषण आया तो खूब दान दे देते हैं, अब बताइये दोनों में कौन श्रेष्ठ है? दिन में भोजन करना धर्म है, 365 दिन चलने वाला धर्म है, इसलिए भैया ! इस बात

को ध्यान रखो कि दान देने से भी अधिक श्रेष्ठ है कि अपना धर्म पालन करना। कर्तव्य पालन करना पहला धर्म है। दान देना दूसरा धर्म है।

❑❑❑

17

हर स्थिति में भोग कष्टकर

आरंभे तापकान् प्राप्ता, वतृप्ति प्रतिपादकान्।

अंते सुदुस्त्यजान् कामान्, कामं क: सेवते सुधी:।।17।।

अन्वयार्थ –(**आरम्भे**) प्रारम्भ में (**तापकान्**) सन्ताप देने वाले (**प्राप्तौ**) प्राप्त हो जाने पर (**अतृप्ति**) तृष्णा (**प्रतिपादकान्**) बढ़ाने वाले तथा (**अन्ते**) अन्त में (**सुदुस्त्यजान्**) बड़ी कठिनाई से छूटने योग्य (**कामान्**) विषय भोगों को (**क: सुधी:**) कौन बुद्धिमान् पुरुष (**कार्म**) रुचि से (**सेवते**) सेवन करता है।

जीवन में दाम और काम, ये दो ही ज्यादा जीव को रुचते हैं, क्योंकि यदि जीवन में स्त्री है, तो श्री की जरूरत पड़ती है, और स्त्री नहीं है, तो श्री की जरूरत नहीं है और जहाँ श्री नहीं है, वहाँ स्त्री टिकती भी नहीं है, और स्त्री है तो श्री की आवश्यकता पड़ेगी ही पड़ेगी।

आचार्य भगवान कहते हैं – **'कामं क: सेवते'** ऐसा कौन सा सज्जन होगा, जो काम भावनायें मन में लायेगा? आपको धन वाला तो अच्छी तरह से समझ में आ गया, कि दान देने के लिए धन नहीं कमाओ। क्यों? **अल्पारंभ परिग्रहत्वं मानुषस्य** (1 7) यदि पुन: मनुष्य बनना है, तो अल्पआरंभ, अल्प परिग्रह रखो। पण्डित दौलतराम जी का आपने कथानक सुना वो अपनी दुकान पर बैठते थे, सुबह से एक नियम रखते थे, कि हमको इतना कपड़ा बेचना है, आज हमें इतने का माल बेचना है। चाहे वह दो घंटे में बिक जाये, चाहे तीन घंटे में, इसके बाद शेष समय धर्म ध्यान में लगाते थे, और कदाचित् दुकान न चले, तो उस दिन दुकान में पचास–साठ श्लोक जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड के याद कर लेते

थे। हम पचास साठ नहीं करते तो पांच छः भी कर लें, भैया! महिमा आये, जितनी सम्यक्ज्ञान की आ जाये, तो तुम्हारी हृदय की तिजोरी में सम्यक्ज्ञान के रत्न मिलेंगे। मैं अभी चातुर्मास में बाम्बे में था, जिस घर में जाओ उस घर के लोग, एक छोटा सा डिब्बा लेके तो आ ही जाते थे। अपन सोचते हैं, ये बाम्बे में क्या करते होंगे, छोटा सा मकान है, और एक छोटा सा डिब्बा दिखायेंगे, फिर जेब में से एक पुड़िया निकालेंगे महाराज श्री ! ये हीरा ये चार लाख का है, ये तीन लाख का है, ये दो लाख का है। बोरीवली में, मैं गया, तो व्यापार यही है ओ हो......छोटे से छोटा ले लो..... तात्पर्य ये है कि उन्होंने हीरे के कण–कण की कीमत की है, जड़ हीरे का संचय कर लिया। तुम यदि ज्ञान के हीरा की कीमत करोगे, तो तुम्हारे पास ज्ञान के हीरा मोती आयेंगे। भैया! **आप हीरे की दुकान पर जाते हो, और मेरे पास भी हीरे की दुकान वाले आते हैं।** सत्य कह रहा हूँ, आज आप यहाँ बैठे हो, मैंने जब बोरीवली में समयसार की वाचना की, ठण्डी की ऋतु में सुबह 8.35 बजे मैं वाचना लेता था, ठण्डी के मौसम, करोड़पति, अरबपति लोग उस प्रवचन सभा में, बैठते थे। मैंने पूछा–महाराज श्री ! लोग हमारे यहाँ हीरा लेने आते हैं, और हम आपके पास हीरा लेने आये हैं। मैंने कहा आपके पास तो लोग हीरा लेने आते हैं। तुम मेरे पास क्यों आये हो? बोले महाराज **मेरे पास लोग अचेतन हीरा लेते हैं और हम आपके पास चेतन हीरा लेने आये हैं।** मेरे पास जो हीरा है वह यहीं पर नष्ट हो जायेगा, यहीं छूट जायेगा, लेकिन **आपके पास जो ज्ञान का हीरा मिलेगा, वह भव–भव साथ जायेगा।** कुछ लोग कहते हैं– बोम्बे जाने से आप को क्या मिला? हमको इतना तो पता पड़ गया, उनके पास जो है, उससे कई गुना हमारे पास हैं। ये तो पता पड़ा, ये तो बोध हुआ, मेरे ज्ञान की कीमत करने वाले लोग, मेरे तप की कीमत करने वाले लोग वहाँ भी हैं, भैया! सौधर्म इन्द्र और धन कुबेर आदि। इसीलिए तो लिखा चारित्र भक्ति में –

झुका लिये अपने चरणों में, इंद्रों के माथा।
उन मुनियों के तपश्चरण की गाऊँ मैं गाथा।। चारित्र भक्ति (चा.भ)

स्वर्ग का सौधर्म इन्द्र भी चरणों में नत मस्तक हो जाता है चारित्र सम्पत्ति इतनी महान सम्पत्ति है, इसको प्राप्त करो। कहाँ लगे हो? यदि मन में, दाम और काम, आ जाये

तो जीव आगे नहीं बढ़ पाता है। इसलिए तेरहवीं कारिका से लेकर के चौदहवीं, पंद्रहवीं, सोलहवीं कारिका में दाम की चर्चा की है, और उसके आगे अब काम की चर्चा करते हैं। अर्थात् काम से तात्पर्य विषय भोग जो हैं उनकी चर्चा आखिर जीव चाहता है, चलो भाई सम्बन्ध हो जायें, शादी हो जाये, परिवार बसेगा, इत्यादि सोचता है। आचार्य भगवन् कहते हैं, आरम्भ में ताप, जब मन में कुविचार आते हैं, तब मन में, भावनायें जागृत होती है, मन में विकार जागृत होते हैं, तो ताप बढ़ता है और ताप कैसा बढ़ता है? पवनंजय के पिता जी ने और अजंना के पिताजी ने शादी तय कर दी। न पवनंजय ने अंजना को देखा था, न अंजना ने पवनंजय को देखा था। लेकिन पवनंजय की शादी दो दिन बाद होने वाली है, पवनंजय के मन में आया कि एक बार मैं उस प्रिया का मुख तो देख लूँ। अरे 48 घंटे की प्रतिक्षा कर लेते, लेकिन कहाँ प्रतीक्षा? मुख तो देख लूँ, जिससे शादी होने वाली है, भैया! **'आरंभे तापकान्',** आरंभ में ताप, प्राप्त होने पर अतृप्ति और कहाँ तो दो दिन के लिए धीरज धरने तैयार नहीं थे, और कहाँ बाइस वर्ष तक देखा नहीं, विचित्रता देखिए। **'आरंभे तापकान्'** आरम्भ में ताप को देने वाले और प्राप्त हो भी जाये तो अतृप्ति, कभी तृप्ति नहीं होती है। दो तरह की इंद्रियाँ होती हैं, एक काम इंद्रिय होती है, एक भोग इंद्रिय होती है, स्पर्शन और रसना काम इंद्रिय कहलाती हैं। आपको ये विषय प्राप्त हो भी जायें, तो आरम्भ में, संताप को देते हैं। प्राप्ति होने पर, चलो कोई बात नहीं प्राप्त हो भी गये, तो तृप्ति नहीं होती, भैया ! अब तो छोड़ दो, छोड़ दो, बहुत कठिन दिखता है, मैंने प्रायः अध्ययन किया कि बुंदेलखण्ड में, या अपने क्षेत्र में देखते हैं, कि छोटी–छोटी उम्र में व्यक्ति संयम धारण कर लेता है, जिनके अंदर तत्त्वज्ञान प्रकट हुआ है, और जिन्होंने तत्त्वज्ञान का आनन्द ले लिया है, जिनके अन्दर शब्द ब्रह्म की उपासना से प्रकटा हुआ ज्ञान का वैभव है वह जीव भव भ्रमण कारक बाह्य आनन्द में, विषयानन्द मैं नहीं झूलते हैं। त्याग कर देते हैं, जानते हैं कि संसार को बड़ाने में क्या रखा? हम पूजा करते हैं संसार को घटाने के लिए हम स्वाध्याय करते है संसार को घटाने के लिए, हम दर्शन करते हैं। संसार को घटाने के लिए और यदि हम काम भावना को ना त्याग पाये, तो हमारा संसार घटेगा कैसे? प्राप्ति होने पर अज्ञानी जन तो त्याग नहीं पाते हैं, पुष्पडाल त्यागने के बाद भी नहीं त्याग पाया, लेकिन

वारिषेण के सामने बत्तीस स्त्रियाँ थीं, एक क्षण में त्याग के चला गया। देर कितनी लगी? भैया! **'अतृप्ति प्रतिपादकान्' अंते सुदुस्त्याजानकामान्'** अंत में भी छोड़ना कठिन होता है। स्वर्ग में मिथ्यादृष्टि देव होते हैं, वह अज्ञान में इतने लीन होते हैं विषयाभिलाषा में इतने लीन होते हैं कि अंत समय में सम्यक्त्व के अभाव में, तत्त्वज्ञान के अभाव में, मरते समय भी विलाप करते हैं, हे देवी! अब तू मुझे कहाँ मिलेगी? **जिसे जिनेन्द्र के चरणों में माथा रखना था, वो देव देवी की गोद में माथा रखकर के रोता है,** क्योंकि माला तो मुर्झा गयी, छः महिने पहले से मालूम चला गया, कि मेरा मरण होने वाला है और कोई देवी को अभी छः माह भी नहीं हुए, अभी स्वर्ग में आई है। अब ऐसी नूतन देवी, अब बताओ कैसे छोड़ोगे? **तत्त्वज्ञान हो तो छोड़ने में देर कहाँ और तत्त्वज्ञान नहीं तो फिर छोड़ना कहाँ?** भैया ! इसलिए आचार्य कहते हैं, ऐसे कामों को जो अंत में छोड़ना कठिन हो। प्राण छोड़ना तो आसान होता है, लेकिन, काम कामनायें छोड़ना बहुत कठिन होता है। प्राण तो छूट जाते हैं लेकिन जीव के विषय भोग नहीं छूटते हैं। वह पर भव में भी साथ जाते हैं। इसलिए कुंदकुंद भगवान को समयसार की कारिका में कहना पड़ा।

सुदपरिचिदाणुभूया सव्वस्स वि कामभोग बन्धा कहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।।4॥ समयसार

हे जीव !

सुनी हुईं, परिचय में आयीं, अनुभव में आयीं।
काम भोग अरू बंध कथायें, सर्व जगत भायीं।।

ये काम, भोग और बंध की कथायें सम्पूर्ण जगत में सर्वत्र सुलभ हैं। जहाँ जाओ, वहाँ मिल जायेगी। ऐसा कोई स्टेशन नहीं, ऐसा कोई चौराहा नहीं, जहाँ पर ये काम, भोग बंध की कथा करने वाले लोग न मिलें। भगवान श्री अमृतचन्द्र सूरी ने लिखा – कि घर–घर में आचार्य विराजें हुए हैं, किसके आचार्य? काम, भोग, बंध की कथा करने वाले आचार्य तो, घर–घर में विराजमान हैं। लेकिन एकत्व विभक्त आत्मा की प्राप्ति जो अत्यंत दुर्लभ है, 'तं एयत्तविहत्तं' जो एकत्व विभक्त है, उसको पाओ। उसको न मैंने कभी सुना है, न कभी देखा है –न कभी अनुभव में आया है, इसलिए वह मुझे कठिन प्रतीत होता है, भैया! जिसे हमने

बार–बार सुना है, वह आसानी से समझ में आ जाता है। किन्तु जिसे कभी न सुना हो वह समझना कठिन हैं। जो हमें बार–बार मिल रहा न, ये समझो की हमने उसको बार–बार अभ्यास किया है, तो सरलता से समझ में आ रहा है। और जो नहीं आ रहा, हमने कभी अभ्यास नहीं किया तो नहीं आ रहा और आज नहीं करेंगे तो और कभी नहीं आयेगा। हमारा मन पानी की तरह नीचे की ओर जाता है, बुंदेलखण्ड में एक कहावत है –

'लपकी गाय गुलेदो खाय, बेर बेर महुआ तरे जाय'

अर्थात् एक बार गाय महुआ के पेड़ के नीचे आ गयी और महुआ का फल गुली होता है, वही उसके लिए रसगुल्ला होता है, बहुत मीठा होता है, और एक बार वह फल गाय ने खा लिया, दो बार खाया, तीन बार खाया। अब यदि कोई लाठी लेके भी पीटे तो तत्काल तो भाग जायेगी, लेकिन फिर वापिस लौटके आ जायेगी। हमारी स्थिति है, जो उस लपकी हुई गाय की स्थिति होती है, की बार–बार उसी पेड़ के नीचे जाती है। वही स्थिति हमारी है, हम बार–बार उस गाय की तरह, यद्यपि आचार्य परमेष्ठि कलम लेके खड़े हैं। लेकिन हम उस गाय की तरह है, जो बार–बार विषय भोगों के पेड़ के नीचे बार–बार पहुँच जाते हैं, और संसार के दु:खों की लाठियाँ खाते रहते हैं।

तात्पर्य ये है, **'कामं क: सेवते सुधी:'** जो सम्यक् बुद्धि वाले हैं, उत्तम बुद्धि वाले हैं, वह इनमें नहीं डूबते हैं। धन्य है उन बुद्धिमानों को जिन्होंने कुमार अवस्था में, ऐसे ब्रह्मचर्य असिधारा को अंगीकार किया और जिन्होंने जब जागे, तब सवेरा समझा। धन्य है जो परमात्मा के सदस्य बन चुके ऐसे उन ब्रह्मचारियों को। धन्य हैं जिन्होंने उस काम को त्याग करके निष्काम दशा की प्राप्ति के लिए कदम बढ़ाये हैं। उनको प्रणाम करते हुए यह इष्टोपदेश की 17वीं कारिक पूर्ण हुयी।

❑❑❑

18

अपवित्र शरीर की कामना व्यर्थ

भवन्ति प्राप्य यत्सङ्ग,मशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः सन्ततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ।।18।।

अन्वयार्थ – (**यत्सङ्‍्गं प्राप्य**) जिसका संयोग पाकर (**शुचीनि अपि**) पवित्र पदार्थ भी (**अशुचीनि**) अपवित्र (**भवन्ति**) हो जाते हैं (**स कायः**) वह शरीर (**सन्तत अपायः**) सदा क्षुधादि दुःखों का कारण है अतः (**तदर्थं**) उसके लिए (**प्रार्थना वृथा**) भोगों की कामना व्यर्थ है।

प्रिय आत्मन्!

त्याग के पूर्व कुछ अनिवार्यतायें हैं, वह प्रमुख रूप से तीन हैं, अशुचिता का बोध होना चाहिए, प्रतिकूलता का बोध होना चाहिए और उसके दुख रूप फल का बोध होना चाहिए। आचार्य पूज्यपाद देव हम से किसी भी पाप के त्याग की बात नहीं कर रहे हैं। कुंदकुंद भगवान ने, श्री समयसार जी में कहा आस्रव का त्याग करो, क्यों त्याग करो आस्रव का? क्योंकि आस्रव अशुचि है, आस्रव आत्मा के स्वभाव के प्रतिकूल है, तथा आस्रव का फल दुःखरूप है, इसलिए आस्रव के त्याग की बात कही। विषय बहुत गंभीरता से सुनना। त्याग योग्य वस्तुओं के नाम नहीं गिनाये, त्याग योग्य व्यक्तियों के नाम नहीं गिनाये। क्या कहा जो अपवित्र हो, जो प्रतिकूल हो, जो दुखरूप हो, उसका त्याग करो। इसी क्रम को अपनाते हुए, आचार्य भगवन् चर्चा कर रहे हैं, कि जिस शरीर के द्वारा तुम भोग भोगते हो, वह शरीर भी कैसा है? जिस शरीर की सेवा में हमारा अमूल्य समय निकलता है, वह शरीर किस प्रकार का है? जिस शरीर को हम सदा चाहते हैं, पोषण करते हैं–उस देह का परिचय प्राप्त कर लो–

पोषत तो दुख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन–देह–स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै।।
राचन–जोग स्वरूप न याको विरचन–जोग सही है।
यह तन पाय महा तप कीजे यामें सार यही है।।10॥ वैराग्य भावना

शरीर के विषय में यहाँ बता दिया, ये शरीर दुर्जन के समान है, दुर्जन को हम जितना महत्त्व देंगे, वो उतना हमारा बुरा करने को उतारू होता है। इस शरीर की हम जितनी सेवा करते हैं, शरीर उतना ही हमारा अहित करता है। गोमटेश्वर जब हम जा रहे थे, आचार्य पुष्पदंत सागर जी चल रहे थे, बोले–तांगे का घोड़ा क्या गर्मी देखेगा, क्या ठंडी देखेगा? उसको तो चलना ही है, नहीं चलेगे तो फिर हित नहीं कर पायेंगे। विशुद्धसागर महाराज का आठ महिने पूरा विहार चल रहा, चाहे 46 डिग्री तापमान की गर्मी हो, अब गर्मी देखोगे तो धर्म प्रभावना क्या देखोगे? दो में से एक कुछ देखना है। यदि धर्म की साधना और प्रभावना देखना है, यदि मोक्षमार्ग का प्रवर्तन देखना है, तो फिर गर्मी को एक तरफ रखना पड़ेगा शरीर को गर्मी लगती है। धन्य है जिनके अन्दर प्रबल भेदविज्ञान का उदय हुआ है, वह इस शरीर की सेवा न करके, इस शरीर से मोह न पाल करके धर्म के लिए बढ़ते जाते हैं, वीर सेना की तरह, जैसे सेना में नाना प्रकार के सैनिक होते हैं, कमांडो, ब्लैक कमांडो, अलग–अलग प्रकार के होते हैं। उसी तरह अलग–अलग प्रकार के साधु, मोह के त्यागी हैं, जिस शरीर के द्वारा मोक्षमार्ग साधा जाता है, जिस शरीर के द्वारा रत्नत्रय साधा जाता है, जिस शरीर के मिलने पर निर्वाण सुख मिलता है, जिस शरीर के द्वारा समवशरण की यात्रा होती है, जिस शरीर के द्वारा तीर्थंकर की दिव्यध्वनि का श्रवण होता है, जिन आँखों के द्वारा भगवान को देखा जाता है, अब जीव यदि उसका दुरुपयोग करे, तो क्या? शरीर तो साधना के लिए मिला था, अब यदि उसका सदुपयोग न कर पाये, सुबुद्धि नहीं जागी, तो फिर ये शरीर नरक का कारण भी बन जाता है। साधन है, कलम का क्या दोष? दोष तो कलम से लिखने वाले का है।

खिलता फूल तोड़ ले माली,

इसमें दोष चमन का क्या है।

श्रद्धा नहीं ह्रदय में सच्ची

इसमें दोष नमन का क्या है।।

'भवंति प्राप्य यत्संगं' जिस शरीर का समागम पाकर के, सान्निध्य पाकर के, **स्पर्श पाकर के, शुचिन्यपि,** पवित्र पदार्थ भी, **अशुचीनि भवंति** अपवित्र हो जाते हैं। तेल कैसा है? पवित्र है, घी कैसा है? पवित्र है। माला कैसी है? पवित्र है। चंदन कैसा है? पवित्र है। मिट्‌टी पर से जल बहके आ रहा है, जल पवित्र है, कि नहीं? कुआ से निकाला जल पवित्र है कि नहीं? पवित्र है। मिट्टी के घड़े से निकाला जल पवित्र है कि नहीं? पवित्र है। लेकिन यदि शरीर पर डाल दिया तो, अपवित्र हो गया। ये है शरीर की दशा इस शरीर की दशा को आचार्य निहार रहे हैं। 'संतत' हमेशा 'अपाय रूप' यानी शरीर दुख रूप है, उसके लिए **'कः प्रार्थना'** शरीर के लिए प्रार्थना करना भैया ! शरीर की चाह रखना, प्रार्थना से तात्पर्य सेवा, चाकरी, पोषण करना व्यर्थ है। **महात्मा गांधीजी के धर्म गुरु राजचन्द्र जी थे।** गांधी जी ने पूछा–राजचंद्रजी आप इतने कमजोर क्यों होते जा रहे हैं? राजचंद्र जी ने कहा– एक किसान के पास दो बगीचे हैं, एक में अच्छी फसल लगती है और एक में कुछ नहीं उगता। मालिक पानी किसको देगा? किसान पानी किसको देगा? जिसमें फसल उगती है। उसी तरह मेरे पास एक शरीर का बगीचा है, एक आत्मा का बगीचा है, बताओं मैं किसको पानी दूँ? किसको समय दूँ? पानी उतना ही है, यदि उस खेत में दें, जिस खेत में से कुछ नहीं निकलता, तो इससे कुछ निकलेगा नहीं और इसको कुछ मिलेगा नहीं तो दोनों तरफ से हानि उठाना पड़ेगी। इसलिए मैं आत्मा रूपी बगीचे में पानी देता हूँ तो आत्मा का बगीचा हरा–भरा हो रहा है, और देह का बगीचा सूख रहा है।

19

उपकारक/अपकारक

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्याऽपकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्।।19॥

अन्वयार्थ – (**यत् जीवस्य**) जो कार्य आत्मा का (**उपकाराय**) उपकार करने वाला है (**तत् देहस्य**) वह शरीर का (**अपकारकम्**) अपकार करने वाला है, तथा (**यत्**) जो (**देहस्य उपकाराय**) शरीर का उपकार करने वाला है (**तत्**) वह (**जीवस्य अपकारकम्**) आत्मा का अपकार करने वाला है।

आत्मा का जो भाव जीव के उपकार के लिए है, वह भाव देह के अपकार के लिए हैं। आत्मा के भाव जागे तप करना, साधना करना अब देखिए आप यहाँ स्वाध्याय के लिए आये हैं आपकी आत्मा का भला हो रहा लेकिन शरीर तो सूख रहा है ऐसी भीषण गर्मी में शरीर को कष्ट देकर पधारे हो देह का अपकार हुआ है। कौन चाहता ऐसी भीषण गर्मी में चलके आना? लेकिन धन्य हैं आपके भाव! जो भाव आत्मा का उपकार करने के लिए है वही भाव से देह का अपकार। अपकार कैसा? अरे शरीर ही नाश हो जायेगा।

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनःक्षणेन्
'देहं विहाय परमात्म दशां ब्रजन्ति'
तीव्रानलादुपल–भावमपास्य लोके,
चामीकरत्व मचिरादिव धातु भेदाः।।15।। कल्याण मंदिर

हे प्रभु! मैंने जिस शरीर में आपका हमेशा ध्यान किया है और आप ऐसे निकले कि

आपने उसी शरीर का नाश कर दिया। अर्थात् ठीक किया आपके ध्यान के प्रभाव से आत्मा को मोक्ष हो गया और शरीर यहीं छूट गया। देह का तो अपकार हुआ है उसकी ओर से अध्ययन करो, कर्म तो बिचारा मर गया आप कुछ नुकसान भी देखों, कुछ फायदे भी देखो। भैया ! आप मन्दिर आये हो प्रवचन में आये हो आपको कुछ पता है, आपको कितनी हानि होने वाली है? बहुत सारे नुकसान हैं, जब हम भगवान के मन्दिर आते हैं, दर्शन करते हैं, श्रद्धा भक्ति करते हैं, तो मालूम है, कितना नुकसान हो जाता है? अभी आप 84 लाख योनियों में से कहीं भी जा सकते थे, सभी दरवाजे खुले थे, लेकिन आप ज्यों ही मन्दिर आये, श्रद्धा से दर्शन किये, तो आपने 80 लाख योनियों का द्वार बंद कर दिया। क्या किया? हानि हुई कि नहीं? अब आप 80 लाख योनियों में जा नहीं सकते, चाहकर भी आप भटक नहीं सकते। अभी हर दरवाजा खुलता था, और तुमने भगवान का द्वार खोलकर के, अपने 80 लाख योनि द्वार बंद कर लिए। जो कर्म आपके पास अनादि से टिका था, उसको जाना पड़ रहा है, आपको फायदा हो रहा है, उससे तो पूछो। दो दृष्टि से अध्ययन होता है, आपकी कंपनी को फायदा है कि इतने व्यक्ति हटा देंगे, तो हमारी कंपनी को इतना फायदा होगा, लेकिन उस व्यक्ति की ओर से क्या होता है? आपका मार्केट अच्छा चलता है, तो आप दश व्यक्ति बढ़ा लेते हो और मार्केट डाउन होता है, तो व्यक्ति कम कर लेते हैं। लेकिन जो घटे हैं उनकी ओर से पूछो उनका तो नुकसान हुआ, उनको नुकसान हुआ। उसी तरह शरीर का तो अपकार हुआ, अपकार क्या शरीर ही नष्ट हो गया। यदि तुमने आत्मा का भला करना शुरु कर दिया, तो उस शरीर को क्या होना पड़ेगा? कुछ न कुछ भव में छूटना ही पड़ेगा। तुमने थोड़ा–थोड़ा अभ्यास शुरु कर दिया है, छोड़ने का कायोत्सर्ग, काय माने शरीर, उत्सर्ग माने त्याग, शरीर से ममत्व का त्याग, भले ही एक मिनिट को, दो मिनिट को, ये क्या है? त्याग। जब शरीर से ममत्व त्यागा, तो ध्यान में उपयोग लगा, सामायिक की आत्मा के उपकार के लिए। प्रतिक्रमण किया आत्मा के उपकार के लिए लेकिन उस भाव ने शरीर का अपकार कर दिया। अब बार–बार शरीर नहीं मिलेगा, एक ही बार मिला था, तुमने चाहा नहीं, फिर नहीं मिलेगा। ये सिद्धांत है, तुम चाहोगे तो मिलेगा, नहीं चाहोगे तो नहीं मिलेगा। घर पर आये मेहमान को एक बार सम्मान नहीं दोगे, तो दुबारा कैसे आयेगा? ऐसे

ही शरीर है शरीर को यदि पोषोगे तो शरीर बराबर मिलता रहेगा और नहीं पोषोगे तो नहीं मिलेगा। आचार्य ने स्पष्ट कहा है, ये शरीर कब तक मिलेगा? जब तक शरीर से तू प्रेम करेगा, तब तक शरीर बनता जायेगा।

यत्र काये मुनेः प्रेम, ततः प्रच्याव्य देहिनम्।

बुद्धया तदुत्तमे काये, योजयेत् प्रेम नश्यति।।40 (स.तं.)

जो लो तन से ममता है।

तो लो ही तन बनता है।।

जब तू तन से मोह तजे।

तब ही आतम तत्त्व भजे।।

ये स्थिति है जो देह के उपकार के लिए है, दूध, मलाई, रबड़ी, चलने दो, दिन रात, किसके लिए है? देह के उपकार के लिए 'तत्' वही राग भाव, वही मित्र भाव, वही जो शरीर की सेवा का भाव है, देह की चाकरी का जो भाव है, शरीर से ममत्व बुद्धि है, वह आत्मा का अपकार करने वाली है। आत्मा का तो बुरा कर रहे, क्योंकि आत्मा तो उससे अशुभ भाव में पड़ा है। शरीर को तो तुमने सेवा दे दी, सुविधा दे दी, लेकिन आत्मा तो साधना से वंचित हो गया। जब शरीर को साधन मिलते हैं, तो आत्मा साधना से वंचित हो जाता है। इसलिए **उतने ही साधन हों जो साधना में सहयोगी हों, साधना विरोधी साधन न हो।** तो ये कारिका बहुत महत्त्वपूर्ण है, जो कार्य आत्मा का कल्याण करने वाला है, वह शरीर का अकल्याण करने वाला है। हम अपनी ओर से देखेंगे तो, शरीर का क्या अकल्याण? हमको नजर नहीं आता,? जब आप अपनी कंपनी से किसी व्यक्ति को हटाते हैं, तो हमको अपना फायदा दिखता है, लेकिन उसका नुकसान नहीं दिखता, क्योंकि हमको निज लाभ ही देखना है। उसी तरह से हम ये देखे कि शरीर का अपकार, पुद्गल का अपकार क्या हुआ? यही अपकार हुआ कि शरीर को छूटना पड़ा। तुमने सामायिक की, आखिर कर्म पर ये अपकार हुआ, कर्म टूटे कि नहीं टूटे? लेकिन वह अपकार हमें ध्यान नहीं देना, क्योंकि कि मैं अपने कल्याण के लिए निकला हूँ, मुझे अपना कल्याण करना है, न कि कर्मों का, वो तो अनादि

से करते ही आये, भैया ! तुम कंपनी में कितने ही नोकरों को नोकरी देते रहना, लेकिन उसके देने से तुम्हारा भला नहीं होगा। अपनी स्वयं की पूंजी को संभालो।

❑❑❑

20

विवेकी किसमें आदर करे

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य, इतः पिण्याकखण्डकम् ।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाऽऽद्रियन्तां विवेकिनः ॥20॥

अन्वयार्थ – (**इतः दिव्य**) एक तरफ दिव्य (**चिन्तामणिः**) चिन्तामणि रत्न और (**इतः**) दूसरी तरफ (**पिण्याकखण्डकम्**) खली का टुकड़ा (**चेत् उभे**) ये दोनों यदि (**ध्यानेन लभ्ये**) ध्यान के द्वारा प्राप्त होते हैं तो (**ववेकिनः**) बुद्धिमान् मनुष्य (**क्व**) किसमें (**आद्रियन्तां**) आदर करेगा ?

तब फिर क्या करें? भाव करने वाला आत्मा एक है, कार्य करने वाला आत्मा एक है, श्रद्धा करने वाला आत्मा एक है, ज्ञान करने वाला आत्मा एक है। चर्या करने वाला आत्मा एक है, अब हम करें तो करें क्या? आत्मा पर ध्यान दें कि शरीर पर ध्यान दें हम क्या करें? हम दो तो हो नहीं जायेंगे। एक काल में दो काम हमसे हो नहीं सकते हैं, तो क्या करें? आचार्य कहते हें – इधर चिंतामणि रत्न रखा है, इधर खली का टुकड़ा, शुद्ध भाव चिंतामणि रत्न है, अशुद्ध भाव खली का टुकड़ा। आत्मा की साधना चिंमामणि रत्न है, और शरीर की सेवा खली का टुकड़ा है।

ध्यान से दोनों ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि ध्यान भी तो दो तरह के हैं, अशुभ ध्यान, शुभ ध्यान। अशुभ ध्यान हैं– आर्त, रौद्र ध्यान और शुभ ध्यान हैं धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान तो **'परे मोक्षहेतु'**

बादवाले दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं और प्रारंभ के दो संसार के हेतु हैं, तो जो मोक्ष

के हेतु हैं, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान, वह चिंतामणि रत्न के समान हैं और आर्त रौद्र ध्यान खली के टुकड़े के समान हैं। एक समय में एक ही चीज उठा सकते हो! एक टाइम में एक वस्तु ले लो। चाहे आर्त–रौद्र कर लो, चाहे धर्म ध्यान कर लो। आपके पास एक सामग्री यहाँ रखी, दूसरी सामग्री यहाँ रखी। इधर चिंतामणि रत्न रखा, उधर खली का टुकड़ा रखा और सामने से आपको दौड़ के आना है। आप क्या उठाओगे? बोलो ! उठा क्या रहे हो? भैया! एक ही टाइम में एक ही उठाना है, धर्मध्यान चिंतामणि रत्न है। एक समय में एक ही कर पाओगे, चाहे तुम आर्त रौद्र ध्यान कर लो, या धर्म– ध्यान कर लो। अविवेक ये कि हम डबल (–) माइनस में जाते हैं। जिस समय हम धर्म– ध्यान खोते हैं, तो माइनस हुआ और ये तो था ही, तो इसमें और प्लस (+) हो गया। जैसे कोई व्यापारी दुकान पर न जाये, व्यापार न करे, पैसा न कमाये, तो जितना कर्ज है, वह उसका और बढ़ता जा रहा, क्यों व्यवस्थाएँ तो चाहिए ही चाहिए। परिवार संचालन के लिए व्यवस्थाएँ लगना ही है, और तुम नया कमा नहीं रहे, तो इस स्थिति में वहाँ कर्ज बढ़ता है। उसी तरह से कोई धर्म ध्यान न करे, तो आर्त रौद्र ध्यान तो बढ़ना ही बढ़ना है। जब हम धर्म ध्यान करते हैं, तो द्विस्थानीय पुण्य प्रकृतियाँ चतुस्थानीय हो जाती हैं और चतुस्थानीय पाप प्रकृतियाँ, द्विस्थानीय हो जाती है। भैया! नीम, कांजीर, विष, हलाहल, ये चार रूप पाप प्रकृतियाँ है, और धर्म ध्यान के अभिमुख होते हैं, तो विशुद्धि बढ़ती है, उस विशुद्धि के प्रभाव से हलाहल और विष रूप प्रकृतियाँ हट जाती है। जो हजार था चार अंक थे वह दो अंकों पर आ गये, हजार के दश बचे, अब हमको दश कर्म बंध रहे और इधर गुड़, शक्कर, मिश्री और अमृत, तो गुड़ शक्कर की तरह जो हम कर्म बाँध रहे थे, अब वह गुड़ और शक्कर की तरह नहीं बंधेगा, वह मिश्री और अमृत को स्पर्श करेगा। बीच–बीच में इतनी विशुद्धि बड़ेगी, की मिश्री और अमृत का स्पर्श करेगा। दश से पहुँच गया हजार पर, पुण्य हो गया हजार गुना, जो दश अंक का पुण्य चल रहा था, वह हजार पर पहुँच गया और इधर जो हजार का पाप चल रहा था, वह दश पर आ गया। कितना फायदा हुआ? ये समीकरण बिठाना पड़ेगा। दो तरफ से फायदा होता है, जब हम यात्रा करते हैं, तो हमारी यात्रा दो रूप होती है, कि हम इधर से चलके आये, इतना चल भी लिया और इतना कम भी हुआ। आचार्य कहते हैं, विवेकी जीव

कहाँ आदर करेगा? आत्मा के प्रति आदर करेगा कि शरीर के प्रति आदर करेगा? धर्म ध्यान के प्रति आदर करेगा कि आर्त, रौद्र ध्यान के प्रति आदर करेगा? आचार्य ये बिल्कुल नहीं कहना चाहते, कि ये त्याग करो, कि ये त्याग करो। आचार्य कहते अपना, विवेक स्वयं लगाओ। मैं किस–किस बात को कहूँगा? यदि मैं एक चीज के त्याग की कहूँगा तो कल कहोगे, आपने कब कहा था आलू का त्याग करो? आपने कब कहा था प्याज का त्याग करो? आपने कब कहा था इस चीज का त्याग करो? इसलिए पूज्यपाद स्वामी ने अपना समीकरण बिठाया, भैया ! मैं तो बताये देता हूँ, ये रखा चिंतामणि रत्न और ये रखा खली का टुकड़ा और मैंने आपको खुली छूट दी। आपको जो उठाना, उठालो। हमारा किसी से राग–द्वेष नहीं है। तुम्हारे पास विवेक हो तुम्हे यह अच्छा लगता तो, ये ले लो, और ये अच्छा लगता तो ये ले लो। भैया जो अच्छा लगता हो, पिच्छी अच्छी लगती हो, तो पिच्छी ले लो और झाडू अच्छा लगता हो तो झाडू ले लो। कमण्डलु अच्छा लगता है तो कमण्डलु ले लो और लोटा अच्छा लगता हो तो लोटा ले लो। शास्त्र अच्छा लगता हो तो शास्त्र ले लो, संतान अच्छी लगती हो तो संतान ले लो। भैया ! योग्यता ही बोल रही है, कुंदकुंद भगवान से पूछो, योग्यता? भैया ! ध्यान देना भव्य जीव ! ये योग्यता जीव के पास है, और सोचो कि गुरु दे देंगे तो गुरु दे नहीं सकते, ये स्वयं को प्रकटाने की बात है, गुरु सिर्फ चारित्र देते हैं, पहले अपन सम्यक्दर्शन पर अच्छी चर्चा कर चुके हैं, कि जितना उपदेश हो रहा वह देशना लब्धि और चारित्र लब्धि के लिए हो रहा, ज्ञान के लिए तो ज्ञान है ही नहीं। जो सिर्फ ज्ञान पाना चाहता हो, वह ज्ञान सभा में आये न, जो सम्यक्दर्शन और चारित्र को प्रकट कराना चाहता हो, उसके लिए है, ज्ञान दर्शन तो उपादान भाव है, सत्ता में बहुत पड़ा है, उपादेय तो चारित्र है, ज्ञान उपादेय नहीं है, सम्यक्दर्शन उपादेय नहीं है, चारित्र उपादेय है। उपादान उपादेय सम्बन्ध है। ज्ञान दर्शन उपादान है। चारित्र उपादेय है, ज्ञान, दर्शन स्वरूपी तो आत्मा है ही, चारित्र स्वरूपी नहीं है, तो चारित्र को प्रकट करना। भैया ! योग्यता है, अपने आप को अयोग्य क्यों मानते हो? आज तक विवाह के पहले किसी कन्या ने नहीं कहा कि मैं बांझ हूँ। बहुत कठोर बोल रहा हूँ और तुम दीक्षा के पहले ही कह रहे, हम अयोग्य हैं। बोलो ! दीक्षा के पहले तुम कैसे घोषणा कर सकते हो कि हममें योग्यता है कि नहीं? तुम्हारी

योग्यता तुमने कैसे जान ली? भैया ! समझ रहे आप विवाह के पहले ही तुमने कैसे कह दिया, अभी तो पुत्र प्रसव का क्षण ही नहीं आया है, कैसे घोषणा कर दी? उसी तरह से हम योग्य हो जाए योग्यता ही बोल रही है, मनुष्य कुल में संयम लब्धि लेके जन्में हो। संयम लब्धि साथ में लेके आये कि नहीं आये? यदि जरा सा अपन करणानुयोग का स्वाध्याय करें, तो पायेंगे कि प्रत्येक जीव संयम लब्धि लेके आया है। मनुष्य भव में संयम लब्धि साथ में लेके आये हो, अब क्या चाहिए सम्यक्दर्शन को? क्योंकि संयम लब्धि मनुष्य भव के अलावा किसी भव में होती ही नहीं है, ओ तुम्हारे पास हैं। अब तुम प्रकट करो तो उपलब्धि, नहीं करो तो लब्धि। भैया ! पुरुषार्थ तत्त्व के अभ्यास में किया, अब उसके धारण करने में करो। नो महिने गर्भ को धारण तो करो, फिर कहना संतान होती कि नहीं होती। उसी तरह आचार्य कहते हैं, भैया ! **'किं अपरेण कोलाहलेन'** संपूर्ण कोलाहल को त्याग करके, साधु की संगति में बैठ करके पहले दीक्षा को धारण तो कर, जब दीक्षा को धारण कर लेगा, उसके बाद बैठ ध्यान में तब मालूम चलेगा कि, स्वरूप का भान हुआ कि नहीं और किसी के कहने से नहीं होना, ज्योतिषी ने कह दिया, इस कन्या के पांच बेटे होंगे और एक बेटा कलेक्टर बनेगा, एक इंस्पेक्टर बनेगा और तीन उच्च पदों पर होंगे। खुश हो गया, कुछ नहीं होंगे, जब तक विवाह नहीं होगा, तब तक पांच बेटे क्या एक भी बेटा नहीं होगा। उसी तरह जब तक तू दीक्षा नहीं लेगा, तब तक आगे की प्रक्रिया भी नहीं होना है, इसलिए आचार्य ने एक चिन्तन लिखा, यदि कोई जीव दीक्षा ले लेता है, और कदाचित् दीक्षा के पहले उसे सम्यक् दर्शन नहीं भी हुआ, सम्यग्ज्ञान नहीं भी हुआ। वह यदि दीक्षा के बाद आत्मा की साधना करता है तो गुणस्थान कौनसा होगा? बोले–सीधा सातवां, पहले से सीधा सातवां। भैया ! जैन दर्शन की विधा है, आप कह रहे अकेले राग–द्वेष हटाओ। आचार्य कह रहे, राग–द्वेष को हटाने के लिए ही दीक्षा ली जाती है। सम्यक्दर्शन के लिए आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में पहला अधिकार दे ही दिया, सम्यक्ज्ञान दूसरे अधिकार में करा दिया, अब उन 46 कारिकाओं में देखो कि आपको क्या प्रकट नहीं हुआ? भैया! आगे उस चारित्र को उगाना पड़ता है, खेत तुम्हारे पास है, बीज तुम्हारे पास है और सींचने के लिए पानी तुम्हारे पास है, खाद तुम्हारे पास है और ऊपर का प्रकाश सूरज दे ही रहा है, अब तुम

उगाओ। गुरुजनों की संगति पा करके, व्रत को धारण कर लो तो कर लो, अन्यथा दिन निकलते जा रहे, और एक दिन ऐसा आयेगा कि कहोगे, हमने जो समय खो दिया, उस समय धारण कर सकते थे, अब क्या धारण करें? अभी है अवसर, फिर अवसर नहीं रहता, अभी जिनने धारण कर लिया वे धन्य हैं। प्रिय बधुओ! कभी अपन को गुरुजनों की बात भी स्वीकार करना चाहिए, विलम्ब मत करो।

जो कुछ करना, जल्दी कर दो, सुकृत तरुण अवस्था में।
पैसा पास निरोगी काया, इन्द्रिय ठीक व्यवस्था में।।
कर न सकोगे वृद्धापन में, बल पौरुष थक जाने से।
आग लगी कुटिया में, फिर क्या होगा कूप खुदाने से।।

इसलिए अवसर है चूको मत मैं कह सकता हूँ, बाकि परिणमन आपका। लेकिन जो आपने कहा था, योग्यता नहीं है, योग्यता के निर्णायक आप नहीं हो सकते, उसका निर्णय तो हम अपने आपको गुरु चरणों में सोप देते हैं। प्रार्थना तक हमारा अधिकार है, निर्णय का अधिकार गुरु का होता है। हमारा अधिकार प्रार्थना तक है, यही लिखा न प्रवचनसार में की शिष्य के अंदर वैराग्य आया, ओ पहुँच गया गुरु के पास, निवेदन कर दिया। प्रवचन सार में स्पष्ट लिखा गुरु योग्यता देखते हैं, उत्तम वर्ण है, कि नहीं। मुख अच्छा है कि नहीं, अत्यंत बाल तो नहीं है, अत्यंत वृद्ध तो नहीं है, अत्यंत शिथिल तो नहीं है। अत्यंत अहंकारी तो नहीं है, अत्यंत कुरूप तो नहीं है, मंद बुद्धि तो नहीं है, पागल तो नहीं है, उन्मत्त तो नहीं है, सारे लक्षण देखना ये गुरु का काम है, स्वयं का नहीं है, ओ सब गुरु देखेंगे, प्रवचनसार में कुंदकुंद स्वामी ने ऐसा ही लिखा है, तो ये निर्णय गुरु का होता है। आप स्कूल में, एडमीशन लेने जाते हो, आप स्कूल में एप्लीकेशन लगाते हैं, जब ऊपर से रिजेल्ट आयेगा की आपका प्रवेश हो सकता कि नहीं? लेकिन आपका कर्तव्य निवेदन है। परीक्षा में एक लाख विद्यार्थी बैठते हैं। एक सफल होता है, लेकिन विद्यार्थी स्वयं निर्णय नहीं करता कि मैं इसके योग्य ही नहीं हूँ, भैया! ये कैसे कर लिया? भैया! संसार के कामों में हम कभी नहीं सोचते हैं कि मैं इसके योग्य हूँ या नहीं हूँ। लेकिन मोक्षमार्ग में ही सोचते हैं, कि हम इसके योग्य है कि नहीं? कुछ जिम्मेदारी गुरु की है, परीक्षक की है, निरीक्षक की है, उसको सौपना

चाहिए। तुम्हारा काम सिर्फ परीक्षा देने का है, न कि कॉपी जांचने का। योग्यता एक इंद्रिय के पास नहीं है, दो इंद्रिय के पास नहीं है, तीन इंद्रिय के पास नहीं है, चार इंद्रिय के पास नहीं है, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के पास नहीं है। आप संज्ञी पंचेन्द्रिय हो, श्रावक कुल में हो, मनुष्य हो, जाग्रत उपयोग वाले हो, विशुद्ध हो और क्या चाहते हो और कौन सी योग्यता लाना? देखिए हम जब अपने गुरुजनों से प्रार्थना करते हैं तो गुरुजन निर्णय करते हैं। जितनी सामर्थ होती उस सामर्थ के अनुरूप देखिए आप एडमिशन के लिए निवेदन करते हो, अब ऊपर वाला टीचर बोलता है, आप में मेथमेटिक्स में अभिरुचि नहीं है तो आप साइंस ले लीजिए, सांइस की योग्यता नहीं है, आप कॉमर्स ले लीजिए, कॉमर्स की योग्यता नहीं है, आर्ट लीजिए। या आपकी विशेष अभिरूचि किसमें है? यदि आपकी योग्यता क्षुल्लक की है तो क्षुल्लक दीक्षा लीजिए। यदि ऐलक बनने की योग्यता है, तो ऐलक दीक्षा लीजिए। मुनि की योग्यता है तो मुनि दीक्षा लीजिए। अब यहाँ पर मेथमेटिक्स नहीं है तो मैं पढूंगा ही नहीं, पढूंगा तो मेथमेटिक्स ही पढूंगा। नहीं भैया ! यदि आपके गाँव के कॉलेज में मेथमेटिक्स नहीं है, तो भैया। कॉमर्स से पढ़ लो आर्ट से पढ़ लो, आर्ट से पढ़ने वाले ही प्रधानमंत्री, कलेक्टर बन पाते हैं।

21

आत्मध्यान करने का उपाय

स्वसंवेदन सुव्यक्तस्, तनुमात्रोनिरत्ययः।
अत्यन्त सौख्यवानात्मा, लोकालोक विलोकनः।।21।

अन्वयार्थ –(**आत्मा**) यह आत्मा (**स्वसंवेदन**) आत्म अनुभव द्वारा (**सुव्यक्तः**) स्पष्ट प्रकट होता है जाना जाता है, (**तनुमात्रः**) यह, शरीर के बराबर है (**निरत्ययः**) अविनाशी है (**अत्यन्त सौख्यवान**) अनन्त सुख वाला है तथा (**लोकालोक**) लोक और अलोक को (**विलोकनः**) जानने देखने वाला है।

आओ ! अब आत्मा का जो स्वरूप है, उसको कह रहे हैं, आत्मा का हम कैसे अवलोकन करें? स्वसंदेवन, निज अनुभव, संवेदन माने अनुभव, आप ऐसा हाथ करो, इसको जरा सा दबाओ कुछ अनुभव हो रहा। ये एक अनुभव है। ये अनुभव किसने किया? ज्ञान ने अनुभव किया, जो ज्ञान कष्ट का अनुभव कर सकता है, वह ज्ञान निज सुख का भी अनुभव कर सकता है। जब हमने हाथ की चोटियाँ ली, तो हाथ को कष्ट हुआ, ज्ञान ने कष्ट का अनुभव किया, और जब मैं, निराकुल होकर शांत बैठूँगा, तो आत्मा उस निराकुलता का अनुभव करेगा कि नहीं करेगा? भैया! आत्मा का अनुभव कैसे करें? ये हाथ है, चोटियाँ ली, यहाँ चोटियाँ ली, और चहरे के भाव बिगड़ रहे हैं। समझना जब चोटियाँ लेने पर हाथ को कष्ट हुआ, तो आत्मा के ज्ञान ने कष्ट का अनुभव किया। उसी तरह जो प्रसन्नचित्त होकर के जिनेन्द्र की मुद्रा में ध्यानरूप बैठकर के आत्मा को लक्ष्य बनाकर के अपने आप का सिद्धस्वरूप का ध्यान करेगा तो क्या आत्मा को जो सुख होगा। आत्मा उसका अनुभव नहीं करेगा? आत्मा का अनुभव क्या कठिन है? ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा

की अनुभूति है।

आत्मानुभूतिरिति शुद्ध नयात्मिका या।
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्धवा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प,
मेकोऽस्ति नित्यमव बोध घनः समन्तात्।। (अ.क.)13

'ज्ञानानुभूति ही आत्मानुभूति है।'

आत्मा ज्ञानमयी है, तो ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है भैया ! शर्बत, में तूने शक्कर की अनुभूति कर ली, नीबूं की अनुभूति कर ली, पानी की अनुभूति कर ली। अब बचा क्या? कैसा है? मीठा है। ओ मीठे का अनुभव भी ज्ञान का अनुभव है, खट्टा है, तो ज्ञान ने ही अनुभव किया है, उसी तरह सबका अनुभव ज्ञान को ही करना है। जो आत्मा बाहर की वस्तु का अनुभव कर सकता है, वह क्या निज के भीतर का सुख का अनुभव नहीं कर सकता? बोलो ! जब बाहर के बाजार और बाहर की दुकान का सामान का तुम को मालूम हो सकता है, तो अपने घर के भीतर खोजने में कितनी देर? भैया ! लक्ष्य बनाओ, आपका लक्ष्य दुकान का है, तो दुकान का सामान खोजते हो इनका लक्ष्य घर का है, तो घर का सामान खोज लेते हैं। ज्ञान दोनों का लग रहा। जो ज्ञान उन्होंने घर में लगाया, तो घर का सामान खोजने में सफल है, इनने बाहर उपयोग लगाया, तो बाहर की खोज में सफल हैं और हम भीतर में लगा लेते हैं, तो भीतर की खोज में सफल हैं। आत्मा की अनुभूति कठिन है क्या? अब आत्मा में कौन से भाव चल रहे? उन भावों की अनुभूति करना हैं।, तो निराकुल स्वयं होना पड़ेगा, हमें स्वयं हाथ पर हाथ रख के बैठना पड़ेगा। अन्य कार्यों का परित्याग करना पड़ेगा। संकल्प करना होगा–

'सर्व–सावद्य–योगाद् विरतोऽस्मि'

व्रत लेना पड़ेगा, कि मैं इतने समय तक पांचों पापों का प्रतिज्ञा पूर्वक त्याग करता हूँ। जब त्याग करोगे, तो निराकुलता आयेगी, मोह ममता टूटेगी तो निराकुलता आयेगी, निराकुल होगे तो आत्मा के सुख का अनुभव करोगे। मुनिराज क्यों बना जाता है? आत्मा

के अनुभव के लिए, पाँच पाप क्यों त्यागे जाते हैं? आकुलता के त्याग के लिए। निराकुलता के लिए ही पाँच पाप त्यागे हैं। निराकुलता की प्राप्ति के लिए, आकुलता के त्याग के लिए, आकुलता के कारण भूत पाँच पाप का त्याग किया है। बुद्धिपूर्वक त्याग किया है, क्योंकि आकुलता बुद्धिपूर्वक हो रही थी। इसलिए बुद्धि पूर्वक आकुलता का त्याग किया है। मालूम 58 साल में रिटायर्ड होने वाले थे, और 56 साल में रिटायर्ड ले लिया कि भैया ! आकुलता से बचें, भैया ! बुद्धिपूर्वक पाप का त्याग करने का मतलब है, बुद्धिपूर्वक आकुलता का त्याग। आकुलता का त्याग ही निराकुलता है, और निराकुलता ही आत्मा के अनुभव का सुख है। सुख शक्ति क्या है?

'अनाकुलितत्व लक्षण सुख शक्तिः।'

उस आकुलता कारक जो भी प्रसंग हैं, मैंने घर को त्यागा, परिवार को त्यागा, पुत्र, मित्र, स्त्री का जो अपन ने त्याग किया, ओ सब क्यों त्यागा? क्योंकि वह आकुलता में कारण थे, तो त्यागा। इधर चिंतामणि, इधर खलि के टुकड़े। आकुलता खलि के टुकड़े, निराकुलता चिंतामणि रत्न है। **आज लो, या कल लो, संसार में लेने योग्य कोई चीज है तो दीक्षा और देने योग्य कोई है, तो दान।** दो शब्द में खेल खत्म। अनुभव आत्मा का ही करना है, चाहे दीक्षा के बाद करो, मात्र ये है कि क्वालिटी बदल जाती है। चौथे गुणस्थान की श्रद्धा में, पाँचवें गुणस्थान की श्रद्धा और छठवें गुणस्थान की श्रद्धा में, और तेरहवें गुणस्थान के परमावगाढ सम्यक्दर्शन दर्शन में अन्तर है कि नहीं? भैया! पानी जब शुद्ध बर्तन में रखेंगे, तो पानी की क्वालिटी अलग होगी, और नाली के पानी में कचड़ा पड़ा हुआ है, उसकी क्वालिटी अलग होगी। जैसे पानी की क्वालिटी बदल जाती है, क्यों? क्योंकि पानी जमीन पर बह रहा है। उसी तरह जब हम गृहस्थों के बीच में रह रहे हैं, राग द्वेषकारी निमित्तों के बीच में रह रहे हैं, तो हमारी परिणति भी वैसी हो जाती है। पानी का रंग कैसा? जैसी मिट्टी मिल गयी वैसा, जिस मिट्टी पर बह गया, वैसा। उसी तरह से आत्मा जिन संसर्गों में रह रही है, वैसा परिणमन कर जाता है। इसलिए गृहस्थी का त्याग किया। उस मिट्टी का त्याग कर दो। उसी पानी को स्फटिक के बर्तन में भर दो, काँच की बरनी में भर दें, ऊपर से ढक्कन लगा दें, कुछ नहीं हो रहा। इसलिए आचार्य भगवन ने कहा बारहवें

गुणस्थान का चारित्र स्फटिक मणि के बर्तन में रखे पानी की तरह है। बोले–ग्यारहवें गुणस्थान का कैसा है? शरद ऋतु के तालाब में स्थित पानी की तरह, क्योंकि शरद ऋतु के तालाब का पानी निर्मल तो हो गया है, लेकिन यदि जानवर प्रवेश कर जायेगा तो पानी पुनः गंदा हो जायेगा। उसी तरह से ग्यारहवाँ गुणस्थान है, लेकिन अभी तो अपनी दशा ऐसी है, पानी मटमेला है, ये तो पानी, भले ही मटमेला हो, मटमेला पानी ही स्वच्छ होता है। संसारी ही सिद्ध बनता है, बहिरात्मा ही परमात्मा बनता है। मिथ्यादृष्टि जीव ही सम्यक्दृष्टि बनता है। सम्यक्दृष्टि तो सम्यक्दृष्टि बनता ही नहीं है, मिथ्यादृष्टि ही तो बनेगा। इसलिए सबसे महान विशेषता है, स्व संवेदन, अनुभव करने बैठो, होगा। जब कंकड़ के चुभने का अनुभव हो सकता है, काँटे की चुभन का अनुभव हो सकता है, अरे भैया। जब तुम जय जिनेन्द्र कहते हो तो हमारा चेहरा खिल जाता है। तुम्हारे जय जिनेन्द्र का अनुभव हमें हो जाता है और कोई अपशब्द कहता है, तो उसका अनुभव हो जाता है, **तो तीर्थंकर की जिनवाणी का अनुभव क्यों नहीं हो सकता है?** निज आत्मा का अनुभव क्यों नहीं हो सकता है? लोग कहते आत्मानुभव दुर्लभ है। इसलिए अमृतचन्द्र आचार्य ने कहा बाल गोपाल को भी सुलभ हो सकता है। माणिक्यनंदी भगवान ने तो यहाँ तक कहा कि, जब पर का लक्ष्य बनाते हैं, तो पर का अनुभव होता है, जब निज का लक्ष्य बनाते हैं, तो निज का अनुभव होता है। स्वसंवेदन सुव्यक्त निज अनुभव के द्वारा प्रकट होती है, आत्मा। कितनी हैं? **'तनुमात्र'** अपने शरीर प्रमाण, **निरत्यय:** निरत्यय है, अर्थात् आत्मा अविनाशी है, अत्यंत सौख्यवान है, आत्मा और लोकालोक का अवलोकन करने वाली निज आत्मा है। कैसी आत्मा? अत्यंत सौख्यवान आत्मा, श्रद्धा करो, की मेरी जो आत्मा है, अत्यंत सुखशाली है, मेरी आत्मा में सुख की कमी नहीं है। कुआ में पानी की कमी आ सकती है, लेकिन आत्मा में सुख की कमी नहीं आ सकती है। ध्यान देना ! एक रस्सी आप डालते हो, तो कुए के भीतर से पानी निकाल लेते हो, तो उपयोग की रस्सी डालोगे तो, आत्मा में से सुख निकल आयेगा। उपयोग की रस्सी चाहिए, तुम्हारा उपयोग रस्सी है, यदि वही रस्सी तुमने बाहर में डाल दी तो, पड़ी रहेगी। कुंए पर रस्सी पड़ी रहती है। बालटी पड़ी रहती है। कुआ में पानी भरा रहता है, लेकिन कोई निकालता नहीं है। उसी तरह तुम्हारे पास उपयोग भी है, श्रुतज्ञान की बाल्टी

भी है, और आत्मकूप में सुख भी पड़ा हुआ है, लेकिन तुम न निकालो? भैया ! अपने आत्मा रूपी कूप में से उपयोग की रस्सी डालकर के, उसका जल निकाल लो। इस तरह से ये कारिकायें आचार्य भगवन ने यहाँ दर्शायी। इन कारिकाओं का भाव भी हमने देखा। इस प्रकार से इस ग्रंथराज का हमने अच्छी तरह से अनुभव किया, ये कारिकायें बहुत ही कल्याणकारी कारिकायें हैं, जिन कारिकाओं में ये बताया गया। शेष विषय को आगे और समझेंगे, क्योंकि ये विषय तो ऐसा है, जितना–जितना डूबते जाओ, उतना–उतना आनन्द लेते जाओ। शास्त्र समुद्र है, जितनी गहराई में गोता लगाओगे, और जितनी बार लगाओगे, उतने–उतने रत्न मिलते जायेंगे। उसी तरह कोई भिन्न अर्थ करता है, कोई भिन्न अर्थ करता है। क्योंकि कोई नयार्थ से बोलता है, कोई भावार्थ से बोलता है, कोई अन्वयार्थ से बोलता हैं। कभी–कभी भिन्नता आ जाती है, आप कहते हैं। इन महाराज ने तो ऐसा कहा था और आप ऐस कह रहे हो, तो कभी नय शैली अपनायी जाती है, कभी आगम शैली अपनायी जाती है, कभी भाव शैली अपनायी जाती है, कभी निक्षेप शैली अपनायी जाती है। ये तो शब्द का अर्थ किस अपेक्षा से किया गया है, इस अपेक्षा को भी ध्यान रखना। जैसे आज अपन ने किया। शब्द को लेकर कहा भाव जीव का उपकार करता है, वही भाव शरीर का अपकार करता है। इस विषय को आज हमने समझा, शेष विषय को कल समझेंगे।

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

❑❑❑

22

आत्मध्यान करने का उपाय

संयम्य करणग्राम, मेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मान् ध्यायेत, दात्मनैवात्मनि स्थितिः।।

अन्वयार्थ – (**आत्मवान्**) आत्मा (**करणग्रामं**) इन्द्रिय समूह को (**संयम्य**) संयमित कर विषयों से रोककर (**चेतसः**) चित्त की (**एकाग्रत्वेन**) एकाग्रता से (**आत्मनि**) अपने आत्मा में (**स्थितम्**) स्थिर होकर (**आत्मना एव**) अपने आत्मा द्वारा ही (**आत्मानं**) अपने आत्मा का (**ध्यायेत्**) चिन्तन करे।

प्रिय आत्मन्!

परम पूज्य गुरुवर श्री विरागसागर जी महाराज ने इष्टोपदेश पढ़ाते समय यह बताया था कि इंद्रियों के नियंत्रण के बाद आत्मा का ध्यान होता है। स्वरूप संबोधन में वही प्रक्रिया चल रही है और यहाँ इष्टोपदेश में भी वही प्रक्रिया चल रही– एक चिंतन सुनिए किसान के हाथ में बीज है, बीज को देखकर निर्णय कर लेता है कि ये फलरूप होगा। हमने पहली दूसरी कारिका में निर्णय कर लिया था कि आत्मा परमात्मा बनेगा। लेकिन किसान एक प्रक्रिया के दौर से गुजरता है, बीज को वृक्ष कैसे बनाया जाये? तो बंजर जमीन को उपजाऊ बनाता है, उसमें खाद बीज डालता है, समय–समय पर पानी देता है। समय–समय पर ध्यान रखता है। उसी तरह पूरे जीवन की भी यही प्रक्रिया है। इष्टोपदेश की दूसरे कारिका पढ़ते ही हमने निर्णय कर लिया कि आत्मा परमात्मा बनता है। उदाहरण से समझ लिया, कैसे बनता है? तो जैसे स्वर्ण पाषाण में योग्यता है, उसमें से सोना प्रकट हो जाता

है, वैसे ही आत्मा से परमात्मा प्रकट हो जाता है। इस रहस्य विद्या को जानने के लिए पूज्य आचार्य देव ने अपना अभिप्राय प्रस्तुत किया। आत्मा इंद्रिय समूह को, इंद्रियाँ पाँच– स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण। इंद्रिय क्या है? आत्मा के सूक्ष्म अस्तित्व का बोध कराने वाले चिन्ह को, इन्द्रिय कहते हैं। आत्मा का बोध करादे कि ये जीव है, वह इंद्रिय है। आत्मा के सूक्ष्म से सूक्ष्म अस्तित्व का बोध कराने वाले चिन्ह को इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रिय समूह को जब तक संयमित नहीं किया जावे, तब तक जीवन संयमित नहीं होता है। इन्द्रियों के विषय में आचार्य कहते हैं, इंद्रियाँ घोड़े के समान होती है। **घोड़े को जैसे लगाम आवश्यक होता है, हाथी को अंकुश आवश्यक होता है, पतंग के लिए डोर आवश्यक होती है, गाड़ी के लिए ब्रेक आवश्यक होता है। ऐसे ही इंद्रिय के लिए भी अनुशासन आवश्यक होता है। इन्द्रिय पर लगाये जाने वाले लगाम का नाम संयम है। संयम्य** संयमित करके, दण्डित करके नहीं, उज्जैन के महाकुम्भ में अनेक बाबा पधारे। जिनमें संयम की चर्चा नहीं है, वहाँ इन्द्रियों को दण्डित किया जाता है। अपने यहाँ संयमित किया जाता है। 'संयम्य' संयमित करके, **'करण', 'इन्द्रियाँ', 'ग्राम',** समूह, फिर **'एका–ग्रत्वेन चेतसः'** चित्त की एकाग्रता पूर्वक जब तक इन्द्रिय समूह को संयमित नहीं किया है, तब तक चित्त की एकाग्रता नहीं हो सकती। पहले काय योग, वचन योग, फिर मनयोग का निरोध ये क्रम है। आप अपने घर में रात्रि में सोने के पूर्व क्या करते हैं? मुख्य द्वार बंद कर दिया, फिर अंदर का दरवाजा, उसके बाद और छोटा दरवाजा'' सब दरवाजे बंद होने के बाद तिजोरी का दरवाजा खुल गया, बाहर के दरवाजे बंद करते हो तब तिजोरी का दरवाजा खोलते हो, इसी तरह जब इन्द्रियों के दरवाजे जब बंद हो जाते हैं, तब आत्मा का दरवाजा खुलता है। और इसका क्या प्रक्रम है? पहले बड़ा दरवाजा का योग का, मुख्य गेट बंद कर आओ फिर, दूसरा वचनयोग गेट बंद करो, फिर तीसरा काययोग गेट बंद करो। बड़े से छोटे की ओर आते बंद करने के लिए और जब खोलना हो तो, विपरीत क्रम से सबसे पहले आप जहाँ सोये वह कक्ष खोलते हो फिर दूसरा कक्ष खोलते हो, फिर उससे बड़ा का सबसे बाद में खुलता है, यही क्रम –

'कायवाङ्मनः कर्म योगः'॥1॥6 त. सू.

काय, वचन, मन, की प्रवृत्ति को योग कहते हैं।

क्षतिं मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शील व्रतेर्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचार–मिहाति–सक्तताम्।। सामायिक पाठ–9

मन शुद्धि की हानि से अतिक्रम हुआ, शील की मर्यादा भंग करने से व्यतिक्रम हुआ, विषयों में प्रवृत्ति करने से अतिचार हुआ और फिर आशक्ति पूर्वक बार–बार सेवन हुआ तो अनाचार हुआ। ये प्रवृत्ति का क्रम है। जब व्यक्ति बाहर की ओर जाता है तो पहले मुख्यता मन की होती है, और अंदर की ओर आता है तो मुख्यता काय की होती है। समेटते आना, आप घर पहुँचते हैं तो कहते हैं–बाहर का दरवाजा बंद करते आना बंद करने का क्रम यही है, और खोलने का अंदर क्रम, मन, वचन, काय का ये समझना कि नियंत्रण की रूपरेखा क्या है? और प्रवृत्ति की रूपरेखा क्या है? संयम्य संयमित करके, करण–ग्राम, इन्द्रियों के समूह को संयमित करके, अब पहला हो गया, इसी बात को मूलाचार में कहा 28 मूलगुणों में पाँच मूलगुण हैं, इन्द्रिय निरोध के इसी के शब्द पर इष्टोपदेश मुनियों के लिए भी है, और श्रावकों के लिए भी है, जो वर्णन यहाँ किया वरं व्रतैः पाँच महाव्रत मूलाचार में हैं। बात वही कहना है लेकिन सरल तरीके से कहना है ताकि आपके गले उतर जाए यदि हलुआ खिलाया जाए तो वह भी खा सकते हैं, लेकिन जब हलुआ भी न खाया जाए तो फिर लपसी खिलाई जाती है। सबसे अच्छी बात है कि रोटी खाये, जब रोटी नहीं खाई जाती तो हलुआ खिलाया जाता है, और हलुआ न खाया जाये तो लपसी खिलाई जाती है। चाहे लपसी खाओ, चाहे हलुआ खाओ, प्रयोजन क्या है? भैया ! प्रयोजन है भूख मिटाना। लपसी खायेगा, आटा पहुँचेगा तो रोटी की पूर्ति होगी, उसमे घी पड़ा है, तो घी की पूर्ति होगी, शक्कर पड़ी हुई है, तो पित्त नहीं भड़केगा। एक बात में अनेक की पूर्ति, 'एकाग्रत्वेन' एकाग्रता के साथ साधना करो। साधन क्या है? एकाग्रता, एक माने आत्मा, अग्रता, मुख्यता आत्मा को लक्ष्य बनाकर के, आत्मा को केन्द्र बनाकर के **'उत्तम संहननस्यैकाग्रचिंता निरोधो ध्यान ''मांतर्मुहूर्तात्॥27॥9 त. सू.।** शुक्ल ध्यान के सूत्र में आया। एक क्या है? आत्मा, अग्र क्या है? अभिमुखता, आत्मा के अभिमुखी होना एकाग्रता है। आत्माभिमुखी होना एकाग्रता है।

शब्दों की व्याख्या पर चल रहे हम चेतसः एकाग्रचित्त के साथ, चित्त की एकाग्रता आत्मा को ध्याना है। ध्यायेत है। ध्यान करे। कौन ध्यान करे? आत्मवान, जो आत्मवान है, देखो जिसके पास धन होता है, उसे धनवान कहते हैं और जिसके पास गुण होता है उसे गुणवान कहते है। जो आत्मज्ञ है वह आत्मावान, 'आत्मानं ध्यायेत्' जो आत्मा से सहित है, जो सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्र में प्रवृत्त है, एवं स्वसमय है, जिसका चित्त बाहर में नहीं उलझा है वह आत्मवान है जो कर्म कर्म प्रदेश फलों में ठहरा हुआ है, ओ अनात्मा परसमय हैं। ऐसा क्यों कहा आत्मवान? तो तत्काल कहेंगे –

येनात्माऽबुध्यतात्मैव, परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्त बोधाय, तस्मै सिद्धात्मने नमः॥1॥ समाधि तंत्र

जिन्होंने आत्मा को आत्मा ही जाना है और पर माने अनात्मा, को अनात्मा ही जाना है। तो मेरे लिए मेरा आत्मा ही आत्मा है। और अन्य का आत्मा भी अनात्मा है। जीव द्रव्य हेय है कि उपादेय है? शांतिलाल जी! आपका जीव द्रव्य मेरे ध्यान के काल में मेरे लिए हेय है, कि उपादेय है? मेरा आत्मा मेरे लिए उपादेय है, अन्य का आत्मा तो उस समय हेय ही है।

'जीवादि बहितच्चं, हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधि–समुभव, गुण पज्जाएहिं वदिरित्तो।। नि.सा. 38।।

बाह्य तत्त्व हेय है, आत्मद्रव्य को त्यागकर के अन्य द्रव्य में उपयोग उलझाना भी बाह्य तत्त्व है। इसलिए **'जीवादि बहितच्चं हेयं'** हेय है, छोड़ने योग्य है। उसको भी छोड़ दो। **'आत्मना एव आत्मनि'** आत्मा के द्वारा **आत्मनि** आत्मा में स्थित हो कहाँ ठहर के ध्यान करें? कहाँ बैठके ध्यान करें? अन्यत्र कहीं नहीं बैठो। आत्मा में बैठकर ध्यान करो। बस तुम्हारा क्षेत्र कितना है? आत्मा के असंख्यात प्रदेश ही तुम्हारा क्षेत्र है? आत्मा के असंख्यात प्रदेश ही तुम्हारी जगह है, वहाँ बैठो। अपने घर जाओ। आपका घर कौनसा है? निज आत्मा चैतन्य सदन ही तुम्हारा घर है। और यदि कोई बोल दे अपने घर जाओ, बुरा मत मान जाना है। फिर हम बोलेगे –

हम तो कबहुँ न निज घर आये
पर घर फिरत बहुत दिन बीते,
नाम अनेक धराये
हम तो कबहुँ न निज घर आये।

भैया ! पर घर वह है जो कर्म से प्राप्त घर है। ये नरनरकादि विभाव द्रव्य व्यंजन पर्यायें हैं, अथवा चौरासी लाख योनि रूप विभाव द्रव्य पर्यायें हैं। ये सब पर घर हैं, अंतिम शरीर से किंचित् न्यून सिद्ध पर्याय हमारा निज घर है, उस पर्याय को प्राप्त करें। आत्मा में ठहर के ध्यान करना है, और कहीं ठहरके नहीं अपने आप में ठहरके ध्यान करना है। पानी जब ठहरता है, तो पानी ही बर्फ हो जाता है और पानी पर का संयोग पाता है तो ऊष्ण हो जाता है। उसी तरह आत्माकर्मादि के संयोग में विभाव रूप हो जाता है और कर्मादि से रहित होता है, तो स्वभाव रूप हो जाता है। पर के संयोग का प्रभाव न पड़े, तो पानी बर्फ हो जाये और पर का संयोग पड़ा, तो बर्फ भी पिघल गया। बर्फ भी तो पानी था, लेकिन परिणमन कैसा ?

प्रिय बंधुओ!

ठहर के आत्मा में, और कहीं ठहरके नहीं, स्थिति देखो, पानी लीजिए और पानी को फ्रिज में रख दीजिए, रख दिया। पानी बर्फ बन जायेगा क्या? बिल्कुल नहीं बनेगा, आप दरवाजा खुला रख दीजिए। यदि दरवाजा खुला रहा, तो फ्रिज के अन्दर भी पानी बर्फ नहीं बनेगा। फ्रिज में तो रख दिया, लेकिन दरवाजा खुला रखा। तुमने भीतर शब्द रूप तो चिंतन कर लिया आत्मा का, लेकिन बाहर की प्रवृत्तियाँ चालू है। दरवाजा बंद नहीं है। तो भीतर में वह शब्द क्रिया नहीं कर पायेगा। ज्ञान क्रियारूप परिणमन नहीं कर पायेगा। ध्यान रूप नहीं हो पायेगा, जैसे पानी भीतर में रहके बर्फ रूप होता है, उसी तरह ज्ञान भीतर में रमता–रमता ध्यानरूप हो जाता है। वस्तुतः आप सोचते हैं, कि फ्रिज में रख देने से, आटे की सब्जी की मर्यादा बढ़ जाती है। वस्तुतः मर्यादा नहीं बढ़ जाती है, प्रभाव ये है, कि पर का प्रभाव कार्यकारी नहीं हो पा रहा। जिसे आपने फ्रिज में रख दिया, उस सब्जी पर, सेवफल पर, कोई भी फल है, सब्जियाँ हैं, उन पर बाह्य वातावरण का प्रभाव नहीं आ रहा।

पर के संयोग से होने वाली हानि उसमें नहीं हो रही है। जो पर के संयोग से होने वाली हानि थी, विभाव रूपता थी, ओ स्पर्श नहीं कर पा रही है, इसलिए, वस्तु ठहरी हुई है। उसी तरह से, हम एक सब्जी की रक्षा कर लेते हैं, हम एक फल की रक्षा फ्रिज में रखके कर लेते हैं, लेकिन हम अपनी रक्षा नहीं कर पाते हैं। आचार्य कहते हैं, ये संयम का फ्रिज है। इस फ्रिज में रखो। जब फ्रिज में रखने के बाद आपकी फल और सब्जियाँ खराब नहीं होते हैं, तो फिर यदि आप संयम के फ्रिज में रख लीजिए अपने आपको, फिर आप भी खराब नहीं होंगे। जीव खराब नहीं होगा, सब्जी खराब नहीं होगी। भैया ! एक उदाहरण आपको देते हैं, कभी आपने रेडियो चलाया, उसमे बहुत सुंदर गाना आते हैं। उसकी विशेषता है यदि आप उसके बटन को खिसकाते रहोगे तो आपको एक भी गाना सुनने को नहीं मिलेगा। आपको उसके बटन को स्थिर करना पड़ेगा! निश्चित स्टेशन पर आपको उसका बटन रोकना पड़ेगा, आपको पता है, 450 नम्बर पर कौन सा स्टेशन है? 500 नम्बर पर कौनसा स्टेशन है? 200 नम्बर पर कौनसा स्टेशन है आपको स्थिर करना पड़ता है। तब कहीं आप उसके गाने का आनंद ले सकते हैं, उस स्टेशन पर रोकिये उस बटन को, और कोई सिर्फ खिसकाता रहे, उस बंटन की चंचलता के कारण, उस बटन का आनंद नहीं आता है और मन की चंचलता के कारण आत्मा के सुख का आनन्द नहीं आता है। आप ये नहीं कह सकते कि उसके अंदर गाना नहीं है, एक बटन ऐसा खिसका रहा है, उसको गाना सुनाई नहीं दे रहा है, लेकिन जिसने बटन को स्थिर किया है, स्टेशन पर स्थिर लगा दिया है, तो दूसरा व्यक्ति उस गाने का आनंद ले रहा है। एक ही रेडियो में सैंकड़ों स्टेशन के गाने आ रहे हैं सैंकड़ों जगह से प्रस्तुतियाँ हो रही है, लेकिन हम कुछ भी नहीं सुन पा रहे। भैया ! जबकि हमारे अंदर आत्मा की अनंत शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। भैया ! इसलिए पूरी एकाग्रता चाहिए। आप चलभाष केन्द्र के माध्यम से नम्बर लगाते हो, और जरा सा एक नम्बर भी यहाँ का वहाँ हो गया तो, और कहीं पहुँच जाता है, इसलिए जब आप लिखते हो तो इतनी सावधानी से लिखते हो कि आप की अंगुलि वहीं होना चाहिए। उसी तरह से जब हम जाप करते हैं, तो हमारी स्थिरता पूरी होना चाहिए और हमारी स्थिरता बिगड़ेगी तो हमारा उपयोग कहीं से कहीं पहुँच जायेगा। आपको मालूम है, वेद जी साहब! कि आपका बेटा आप से चौदह हजार किलोमीटर दूर

रहता है, और आप कुछ सैकण्डों में अपने बेटे से बात कर लेते हो, आचार्य कहते हैं–ये पौद्गलिक स्कंध हैं, वचन वर्गणा से भी सूक्ष्म मनोवर्गणा होती है। तन की वर्गणा से सूक्ष्म वचन की वर्गणा होती है, और वचन वर्गणा से सूक्ष्म मनोवर्गणा होती है। आप तन से जितना कार्य करते हो, वचन से उससे अच्छा कार्य कर सकते हो, उससे कई गुना कार्य मन से कर सकते हो, इसलिए **मेहनत करना कोई महानता नहीं है, करवाना उससे ज्यादा महानता है।** करवाना भी, उतना महान नहीं है, जितना मेहनत का विचार करना, इसलिए महापुरुष सिर्फ चिंतन करते हैं, और मध्यम पुरुष उसका प्रचार करते हैं, और जघन्य पुरुष उसको क्रियारूप करते हैं। प्रज्ञ पुरुष ने सिर्फ कागज पर चित्र उतार दिया, चिंतन करके। उसके बाद दूसरा चरण। सबसे ज्यादा मेहनत करने वाले तसला ढोने वाले मजदूर, इस समय दोपहर में तसला ढो रहे होंगे, और सबसे कम वेतन उन्हीं को मिलेगा, क्यों? आप तन से काम कर रहे हो, और उन्हीं के ग्रुप का एक नायक सिर्फ वचन से कार्य कर रहा है, उसका उन सब से ज्यादा वेतन है, मन से जो योजना पारित कराके लाया, भैया ! रुपयों का वृक्ष तो उसी के घर में लगा है।

❑❑❑

23

जो है उसी का दान

अज्ञानोपास्ति रज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः॥23॥

अन्वयार्थ – (**अज्ञानोपास्तिः**) अज्ञानी की उपासना सेवा, (**अज्ञानं**) अज्ञान (**ददाति**) देती है (**ज्ञानिसमाश्रयः**) ज्ञानियों की उपासना सेवा, (**ज्ञानं**) ज्ञान, क्योंकि, (**इदम् वचः**) यह बात (**सुप्रसिद्धम्**) अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि (**यस्य**) जिसके पास (**यत्तु अस्ति**) जो होता है, उसी को वह, (**ददाति**) देता है।

इस कारिका को दो दृष्टि से देखें, अज्ञान तो जब मेरा अज्ञान विभाव, अज्ञान तो विभाव रूप है, कुंदकुंद भगवन की समयसार की कारिका है –

कणयमया भावादो, जायंते कुण्लादयो भावा।
अयमयया भावादो, जह जायंते दु कडयादी॥130॥(समयसार)

कनकमयी भाव से कनकमयी वस्तु उपलब्ध होती है, और लोहमयी भाव से लोहमयी, उसी तरह ज्ञानमयी भाव से ज्ञानदशा प्राप्त होती है, अज्ञानमयी भाव से अज्ञानदशा प्राप्त होती है। ध्यान से सुनना। एक ओर आटे का पिण्ड है, और एक ओर मावा का पिण्ड है, मावा का पिण्ड है। आटे पिण्ड से हम रोटी बनायेंगे और मावा, मावा के पिण्ड से रसगुल्ला निकलेगा। वस्तुतः किसने क्या दिया? उस पिण्ड के पास आटा था, तो आटा ही दिया और उसके पास मावा था, तो मावा दिया। आचार्य कहते है–हे जीव! अब बनाने के लिए हमने दो को बिठाया, एक ने रसगुल्ला बनाये, और एक ने रोटी बनायी, टाइम दोनों

को बराबर लगा, मेहनत दोनों की बराबर हुयी, लेकिन एक के हाथ से रसगुल्ला बने, दूसरे के हाथ में रोटी, ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि रोटी बनाने वाले के पास आटे का पिण्ड था, और दूसरे के पास मावा का पिण्ड था, जब पिण्ड मावा का होगा, तो रसगुल्ला का निर्माण होगा, और पिण्ड आटे का होगा तो रोटी निर्माण होगी। उसी तरह इस कारिका को समझाइये, यदि हम अज्ञान अवस्था में जियेंगे, तो मेरी आत्मा ही मुझे अज्ञान ही देगी। मैंने अपने कोपर में रखा क्या है? हम चाहते हैं कि हम रसगुल्ला बनायेंगे लेकिन कोपर में से बनाने के बाद देखते हैं कि बना क्या? बोले रोटी बनी, अरे भाई ! चाह तो रहे थे रसगुल्ला, लेकिन रखा तो आपने आटा था, तो बनेगी रोटी। उसी तरह चाहते तो हम कल्याण है, लेकिन **अज्ञान उपास्ति,** अज्ञान से तात्पर्य यहाँ विभाव परिणति लेना है। दूसरा देने नहीं आयेगा। रसगुल्ला भी आपके घर में बने, रोटी भी आपके घर में बनी। या दूसरा कोई देके आ गया? दे सकता है, पुद्‌गल है, लेकिन यह आत्मा का विभाव गुण, कोई दूसरा देने नहीं आयेगा। पुद्‌गल के खण्ड हो सकते हैं, पुद्‌गल को दिया जा सकता है। लेकिन यह जो अज्ञान है, स्वयं की विभाव परिणति है। हम सोच रहे थे, कि उसने दिया, **'ददाति यत्तु यस्यास्ति'** तो आचार्य ने प्रश्न किया किसके पास क्या है? आचार्य कहते है, तुम ज्ञानी बनो, तुम अपनी आत्मा को ज्ञान की पर्याय का दान दोगे, लेकिन निश्चय में क्या है? निज ज्ञान की जो पर्याय उत्पन्न हो रही है, वह निज ज्ञान की पर्याय ही, निज को मिली, यही निश्चय दान है। हम एकांत में बैठे हैं, मेरे पास न कोई लेने वाला है, न कोई देने वाला है, सिर्फ शांति से बैठकर के, अनुभव कर रहा हूँ। उस समय मैं दान दे रहा कि नहीं? आचार्य कहते हैं– दान दे रहे, किसको दे रहे? निज आत्मा को अपनी ही ज्ञान की पर्याय। अब कोप भवन में बैठे हुए हैं और कोप भवन में बैठकर के, दशरथजी की रानी, कोप भवन में बैठ गयी। किस लिए बैठ गयी? क्योंकि मेरे पास गंधोदक नहीं आया और उनके पास पहुँच गया। भैया! वह कोप कौन दे रहा है? स्वयं का अज्ञान जनित कोप है, कोप में बैठी हुयी थी, राजा को मालूम चला कि रानी तो जहर खाने की तैयारी कर रही है, महिलायें है, कुछ भी हिला दे, महिलायें है, कभी भी महानता ला दे। राजा दशरथ पहुँचे, बोले–क्या बात है? मेरे लिए गंधोदक नहीं आया, उन्होंने बुलाया वृद्ध के लिए, वृद्ध दशा का वर्णन यदि किसी को देखना हो तो पद्म

पुराण के उन्तीस पर्व, श्लोक 42 से 71 को देख लें, वह वृद्ध को बुलाते हैं, वृद्ध अपनी दशा का वर्णन करता है, मैं आपके राज्य का सबसे पुराना व्यक्ति हूँ, बाल्यावस्था से मैं राज्य की सेवा कर रहा हूँ। पहले इन सीढ़ियों को मैं कुछ सैकण्डों में चढ़कर पार करता था, अब तो दीवाल का सहारा लेके आना पड़ता है। अब मेरी स्थिति देखिए। मैं इस गंधोदक को कैसे सुरक्षित लाता, और कहीं बूँद नीचे न गिर जाये, क्यों कि पूज्य है, तो मैंने उसका भी ध्यान रखा है, तात्पर्य यह है, रानी को बाद में पश्चाताप होता है, ओ हो.....राजा का मेरे प्रति दुर्भाव नहीं था, मैने ही अपनी दुर्बुद्धि से, अपनी अज्ञानदशा से सोच लिया, यानी मेरे अज्ञान ने ही, मुझे अज्ञान दिया। मेरे पास अज्ञान था, मैंने अज्ञान निकाल लिया, आप कल्पना करिए, घर में शक्कर का डिब्बा रखा है, कल्पना करिये कि आप के पास चंदन का चूर्ण रखा है, कल्पना करिये आपके पास कोयले का डिब्बा रखा है, अब रखा तो आपके पास है, हाथ आप ही डालोगे, यदि आपका चंदन के चूर्ण से हाथ सुगंधित होके आ जाये, तो उसमें यह मानना पड़ेगा कि यह डिब्बा मेरे ही घर में था, और मैंने ही हाथ डाला है। उसी तरह कोयले के अंदर से काला होके आयेगा, तो भी मैंने हाथ डाला। उसी तरह से **अज्ञान उपास्ति,** उपास्ति माने संगति करने से अज्ञान और ज्ञान **संगति करने से ज्ञान**? तुम किसकी संगति कर रहे हो, पर की नहीं? निज की। अपने भीतर में, ज्ञानमयी साधना कर रहे हो, कि अज्ञानमयी, रागमयी, वेराग्यमयी, त्यागमयी, अनुरागमयी कौनसी प्रवृत्तियाँ चल रही है? यहाँ तो सिर्फ संकेत मिलेगा और संकेत नगर नहीं होता, संकेत कोई शहर नहीं होता है, संकेत सिर्फ दिशा सूचक होता है, सिर्फ दिशा दे दी अज्ञान की उपासना से अज्ञान, संयम की उपासना से संयम, कषाय की उपासना से कषाय, तुम्हारे अंदर अपार भण्डार है, हर विभाव परिणति का, जिस रूप से प्रकट करोगे, उस रूप से प्रकट होता आयेगा, ध्यान देना ! यह वस्तु व्यवस्था है, आपके घर में, अनेक जगह नल के पाईप फिट है, और पानी की टंकी ऊपर है, जब किचिन का नल खोला तो किचिन में पानी आने लगा, जब आपने बाहर वाले कक्ष का खोला तो, वहाँ आने लगा। ऊपर वाले कक्ष का खोला तो, वहाँ आने लगा, पानी, एक ही कुँये का है, एक ही जगह से आ रहा है लेकिन आप जहाँ स्विच ऑन करते वहाँ से । देखिए आप बहुत अच्छी तरह से और भी देखिए ! बिजली पावर से बिजली आ

रही लेकिन पंखा चलेगा, लाईट जलेगी, की हीटर चलेगा, फ्रीजर चलेगा, ठण्डा वाला चलाओगे कि गर्म वाला चलाओगे बोलो ? मीटर एक ही है, बिजली एक ही जल रही है, चाहे ठण्डा चलाओ तो भी तुमको बिल लगना है, चाहे गर्म चलाओ तो भी बिल लगना है। चाहे क्रोध करो, तो भी समय नष्ट होना है, चाहे क्षमा करो तो भी तुम्हारा समय लगना है। चाहे ज्ञान में लग जाओ, तो भी तुम्हारा समय बीत रहा, चाहे अज्ञान में लग जाओ, तो भी समय बीत रहा। समय बीतता ही जायेगा। समय बीत रहा है लेकिन आप कैसा उपयोग कर रहे? ठण्डे में करना है, कि गर्म में करना है। काल वही बीत रहा, समय वही बीत रहा। इसलिए बुद्धि इसमें है, गर्मी के दिन है, तो आप ठण्डे रूप में समय लगाते हो और ठण्डी के दिन होते हैं तो उसी बिजली का उपयोग हीटर के रूप में, गर्म के रूप में कर लेते हो। बुद्धि लगाते की नहीं? ऐसा तो नहीं कि जिस रूप मे आना होगा, तो आयेगा, नहीं। वहाँ तो हम बुद्धि लगाते हैं, कि अब हमको लाईट जलाना है, तो क्या चालू करना है? ट्यूबलाईट कि पंखा, फ्रिज, कूलर, ए.सी. क्या चालू करना है? आप वहाँ बुद्धि लगाते हो। उसी तरह आचार्य भगवन् कहते है, ज्ञान आपके पास है, आप अपना स्वयं निर्णय करिए कि मुझे उस ज्ञान का उपयोग क्रोध में करना कि क्षमा में करना। स्वभाव में करना कि विभाव में करना, आत्मा वही है, मीटर वही चलेगा। एक ही आत्मा है। कथन सिद्ध हो गया। सोने की दुकान पर जायेंगे तो सोने के आभूषण मिलेंगे, लोहे की दुकान पर जायेंगे, तो लोहे के आभूषण मिलेंगे। एक और बात है, एक बार स्विच ऑन कर दो, फिर चलता रहता है, उसी तरह चाहे आत्मा में विभव का स्विच ऑन कर दो , या स्वभाव का स्विच ऑन कर दो, ध्यान देना, आप इस पंखे का स्विच ऑन करोगे तो पंखा चालू हो जायेगा, फिर आपके द्वारा कुछ नहीं करना, अब तो आप छोड़ दीजिए। लाईट का स्विच ऑन करके छोड़ दीजिए, अब चलते रहेंगे अपने आप। उसी तरह तुमने क्षमा का स्विच ऑन कर दिया तो क्षमा, चलती रहेगी। कुछ समय तक, उसी तरह विभाव परिणति का खेल है, इसलिए स्वतः हमे देखना पड़ता है, कि मुझे किस रूप परिणमन करना है? स्वयं को इस विवेक की कसौटी पर खरा उतरना पड़ता है। कर्म का उदय कर्म बंध का कारण नहीं है। आप चौराहे पर खड़े हैं या बस स्टेण्ड पर खड़े हुए हैं, ऐसी स्थिति में रास्ते से अनेक बसें निकलती जा रहीं, बस वाले बोल भी

रहे हैं, बैठिये, बैठिये, लेकिन आप नहीं बैठते क्यों? आपको पता है, यह नम्बर वाली बस, वहाँ नहीं जाती, जहाँ मुझे जाना है। उसी तरह से आचार्य भगवन् कहते हैः– जो प्रकृति, जहाँ तुमको जाना है, वहाँ वह प्रकृति न जाती हो, तो उस प्रकृति में क्यों बैठते? उस विभाव परिणति में क्यों विराजते हो, जो विभाव परिणति तुम्हें वहाँ न ले जाये। हमें समवशरण में जाना है, हमारा निर्णय है, तो समवशरण कौनसी प्रकृति ले जायेगी? अनंतानुबंधी माया, भैया! जाना है, मुनि बनके समवशरण में जाना है, अब मुनि बनके जाना है, जो अनंतानुबंधी माया तो ले नहीं जायेगी, तो अभी उस प्रकृति में मत बैठो। आचार्य भगवान् यही सिद्धांत और यही देशना दे रहे है, कि अपने पास आप जैसा अनुभव करोगे, अज्ञानमयी उपासना से अज्ञान का जन्म होगा और ज्ञानयी भावना से ज्ञान का जन्म होगा। जैसी–जैसी भावना करते जाओगे, वैसी–वैसी परिणामों की उत्पत्ति होती जायेगी।

प्रिय आत्मन्!

निज स्वभाव, निज परिणति, निज स्वरूप का जब आत्मा, आश्रय लेता है, तब स्वभाव ही प्रकट होता है, मिट्टी के पिण्ड से, मिट्टी का ही स्थास निकलता है। मिट्टी का ही कुसूल निकलता है, मिट्टी का ही कलश निकलता है। मिट्टी का ही दीपक निकलता है। उसी तरह तुम ज्ञान का स्वभाव का आश्रय लोगे, तो प्रत्येक पर्याय ज्ञानमय निकलेगी। परिणति आप की है, स्वरूप आपका है, आप कैसे स्वरूप का आश्रय लेते हो? ध्यान देना, एक ओर इक्षु रस रखा हुआ है, एका ओर निम्ब रस रखा हुआ है। यदि इक्षु रस का गिलास लेंगे, तो घूंट – घूंट में इक्षु रस का स्वाद आयेगा और निम्ब रस लेंगे तो हर घूंट–घूंट में नीम का कड़वापन आयेगा। इक्षु रस की मधुरता नीम की कटुता दोनों अपना–अपना स्वभाव लिए हुए हैं।

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

❑❑❑

24

आत्म–ध्यान का फल

परीषहाद्य विज्ञाना, दास्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्म योगेन, कर्मणामाशु निर्जरा।।24।।

अन्वयार्थ – (**अध्यात्मयोगेन**) अध्यात्म के योग से (**चिन्तन**) से (**परिषहादि**) परीषह आदि का (**अविज्ञानात्**) अनुभव नहीं होता, जिससे (**आस्रवस्य**) आस्रव को (**निरोधिनी**) रोकने वाली (**कर्मणाम्**) कर्मों की (**निर्जरा**) निर्जरा (**आशु जायते**) शीघ्र होने लगती है

प्रिय बंधुओ !

आत्म स्वभाव का आश्रय ले लिया है, तो बाहर में क्या हो रहा? इससे योगी अपरिचित होता जाता है। साधक ने जब स्वभाव का आश्रय ही ले लिया, तो बाह्य जगत से अपरिचित हो जाता है। क्यों? एक समय में दो से परिचय सम्भव नहीं है, एक से ही संभव है, तो स्वभाव का आश्रय लिया, आत्मा से परिचय चल रहा है, आत्मा से मिलन चल रहा है, आत्मीय आनंद चल रहा है, आत्मीय रमण चल रहा है, जहाँ निजानंद में लीनता हो, उस समय भैया! बाहर में कौन है? बाहर की आवाज हानि नहीं करती है। ध्यान दे रहे आप ! जब आप अपने कक्ष में भोजन में लीन है, या संगीत में लीन है, तो बाहर में क्या होता है, पथ से कौन से वाहन आ रहे हैं, जा रहे हैं, प्रयोजन नहीं रहता, यद्यपि वाहन की आवाज आती है, लेकिन वाहन से प्रयोजन नहीं होता। इसलिए आप उन वाहनों से अपरिचित रहते हैं, उनसे प्रयोजन नहीं होता। उसी तरह आत्मा को जिसने जान लिया, जिसके ज्ञान की

पर्यायें ही उदय में आ रही हैं, प्रकट में आ रही हैं। परिषह आदि, क्या आपको कष्ट नहीं आयेगा? क्या साधु जीवन से कष्ट नहीं होता है, परिषह नहीं होते? आचार्य कहते हैं, परिषह भी होते हैं, कष्ट भी होता है, तब स्थिति क्या होती है? उन उपसर्ग और परिषह के काल में, अविज्ञान, 'परीषहाद्यविज्ञानात्' ज्ञान में कष्ट नहीं लाना है, कष्ट आ रहा है, आने दो। परिषह आ रहा, आने दो। पीड़ायें आ रही, स्वागत है। लेकिन अपने ज्ञान स्वभाव को उधर नहीं ले जाना। ध्यान देना, जिस समय दुल्हे के टीका को खड़े होते हो उस समय आजू-बाजू से कितने लोग निकलते हैं? पूरी बारात, जब तक दूल्हे का टीका होता है, स्वागत होता है, उतने में पूरी बारात अंदर निकल जाती है, लेकिन जिसे दुल्हे का ही टीका करना है, उसका ध्यान क्या बारात पर जाता है? नहीं जाता है। बस इतना ही तो समझना है। दूल्हे के टीके की तैयारी है, इस राशि से, इस द्रव्य से, इस गुण से, इस भाव से। इस प्रकार से मुझे दूल्हे का स्वागत करना। बारात में, कितने लोग? स्वागत करने वाले का लक्ष्य कहाँ है? उपयोग सिर्फ एक जगह केन्द्रित है। उसी तरह हे साधु ! तुझे अपने आत्म स्वभाव का स्वागत करना है। कष्ट आने दो, कष्टों की परवाह मत करो। मच्छर भी आयेंगे, मक्खी भी भिनभिनायेंगी, बाधायें भी आयेगी।

अर्घावतारन असि प्रहारन में, सदा समता धरन। छहढाला 6/6 हे ज्ञानी। ऐसे काल में, अविज्ञान, मैं नहीं जानता, उन अवस्थाओं को दर्पण की तरह निहारो और ज्ञान में मत लाओ, $x\ y\ z$ । जिनसे प्रयोजन नहीं है, उनमें चित्त को नहीं उलझाना ही साधना है। प्रयोजनभूत सात है, कहाँ तुम अनंत में जा रहे हो प्रयोजनभूत एक है, एक का स्वागत करो। कहाँ तुम सबमें उलझ रहे? भैया अविज्ञान, **जिनसे प्रयोजन ही नहीं है। उनका ज्ञान न लो तो अच्छा है,** क्यों? समय तो उतना ही है, चाहे प्रयोजनभूत में लगा दो, चाहे अप्रयोजनभूत में लगा दो। शक्ति तो उतनी ही है, चाहे प्रयोजनभूत में लगा लो, चाहे अप्रयोजनीय में लगा दो। परिषहाद्यविज्ञाना-दास्त्रवस्य निरोधिनी वह परिषह आदि भी अविज्ञान में है। अर्थात् ज्ञान में नहीं है। क्या चल रहा, यशोधर मुनिराज के ऊपर तीन दिन से सर्प डला हुआ है। ये जो केवल भगवान ने बताया है, सो हमको पता है, यशोधर ने नहीं बताया। यशोधर क्या डला है? यशोधर का ज्ञान नहीं गया, उस कष्ट पर, उस पीड़ा पर, **न पीड़ा ज्ञान में आयी,**

न पीड़ा देने वाला ज्ञान में आया, 'उभयो धर्म वृद्धिः' अपना कर्तव्य है, मुझे ध्यान से विचलित नहीं होना इतना ही ज्ञान में रहा। ज्ञान में क्या रहा? यह काल हमारे ध्यान का है। **न तो पीड़ा का विचार, न पीड़ा देने वाले का विचार। ओ हो......सुदर्शन का चरित्र** भूल गये क्या? श्मसान में सामायिक कर रहा है। रानी ने उठवा लिया, बताओ क्या हुआ? किस अनुभव किया? पर के भावों का अनुभव नहीं किया सुदर्शन ने, न पर को दोष दिया उपसर्ग का भी अनुभव नहीं किया, उपसर्ग करने वाले को दोष भी नहीं दिया, अपनी बुद्धि में ही नहीं लाये कि कौन उपसर्ग कर रहा है? बस, यह काल मेरी परीक्षा का है, मेरे ध्यान का है, सम्यग्ज्ञान का अनुभव चल रहा था, सम्यग्ज्ञान शुभोपयोग में ही है। सम्यग्ज्ञानमयी आत्मा है, अभेद है, गुण और गुणी का इसलिए सम्यग्ज्ञान का अनुभव भी आत्मा का अनुभव है, जब गुण और गुणी में अभेद करते हैं, तो भैया! गुण और गुणी में अभेद तो करो। कितनी बार भेद करोगे? द्रव्य में गुण होते हैं, गुण का अपना स्वभाव होता है। द्रव्य का अपना स्वभाव होता है, स्वभाव दोनों के भिन्न–भिन्न है, किन्तु गुण तो गुणी में ही है। गुणी को छोड़कर गुण रहता कहाँ है? ज्ञानमयी अनुभव। अनुभव सिर्फ ज्ञान का कर रहे हैं, उस समय संवेदन ज्ञान का कर रहे हैं, न कि उस रानी का। आचार्य कहते हैं, तब ये चमत्कार प्रकट होते हैं। सीता को अग्नि कुण्ड में कूदने को कह दिया गया। सीता के मन में कलुषता नहीं जागी कि राम क्या अत्याचार कर रहे हैं? सीता के मन में कलुषता नहीं जागी कि लक्ष्मण क्या देख रहे? सीता के मन में और कुछ नहीं जागा, मात्र सीता सोच रही है, **अविज्ञान भाव से, मुझे इस ओर लक्ष्य नहीं ले जाना है। मेरा लक्ष्य तो उस परम पिता परमात्मा की साक्षी में है कि हे परम पिता परमात्मा तू ही साक्षी है।** ये नहीं सोचा कि आग जला देगी? परिषह से अविज्ञात, आस्रव का निरोध, दशा तो निहारो सुदर्शन स्वामी, शूली पर चढ़ने को तैयार हैं, लेकिन जानते हुए भी ये नहीं कह रहे कि रानी ने ऐसा किया। क्यों? मैं ऐसा कहूँगा तो अपराधी मैं हो जाऊँगा क्यों? रानी को दण्ड मिलेगा और रानी को दण्ड दिलाने का अपराधी में हो जाऊँगा। कदाचित राजा रानी को फांसी दे दे तो उसका अपराधी में ही होऊँगा न। सुन लिया, क्या श्रीपाल को भांड कहा गया तो भी अपशब्द तो कहा गया न। श्रीपाल ने कैसे सुन लिए? 'परीषहद्याविज्ञान' अविज्ञान, **हर जगह ज्ञान दौड़ना नहीं,** भाई

आपका ऑफिस जहाँ है, सीधी गाड़ी वहीं रोकी तुमने, अगर हर जगह रोकते तो पहुँचते कैसे? केन्द्र पर निशाना साधो, निशाना साधना है तो कुछ से अविज्ञान। भैया ! लक्ष्य को साधना है तो सिर्फ उस आत्मा को देखना है, आत्मा के सिवाय अनात्मा को देखना ही नहीं है और आत्मा को छोड़कर **'जीवादिवहितच्चं हेयं'** जो हेय है, वहाँ दृष्टि कैसे गयी आपकी? गहरा तत्त्व है।''जायते अध्यात्म योग'' यहाँ से अध्यात्म योग उत्पन्न हो गया। अब बिल्कुल मध्य मे आ गये, अभी तक अध्यात्म की विधि चल रही थी, अब अध्यात्म योग के द्वारा क्या होता है? **''निर्जरा आशु कर्मणाम्''** कर्मों की शीघ्र निर्जरा चालू हो गयी है। कारिका 24 आप मध्य में पहुँच गये, भैया। फूल तो सुबह–सुबह खिल जाता है, लेकिन उस फूल का पौधा उगाने में तो समय लगता ही है। सूरज उगेगा फूल खिल जायेगा। अध्यात्म योग ये नया शब्द है। अध्यात्म योग अभी योग होता है, तन का योग होता है, आपके यहाँ शारीरिक योग होता है, जगह–जगह योग शिविर चल रहे हैं, सिर्फ शारीरिक योग है, योग दिवस, योग शिविर, लेकिन ये अध्यात्म योग हैं। **अध्यात्म योग क्या कहलाता है? जो योग आत्मा को आत्मा से जोड़े, वह योग अध्यात्म योग है।** निज को निज स्वरूप से जोड़ दे, वह अध्यात्म योग है। नियमानुसार में इस अध्यात्म योग का कुंदकुंद स्वामी ने वर्णन किया है।

विवरीया भिणिवेसं, परिचत्ता जोण्ह कहिय तच्चेसु।
जो जुंजदि अप्पाणं, णिय भावो सो हवे जोगो।।139।।

अर्थ– विपरीत अभिप्राय को छोड़कर के जो जिनभाषित तत्त्वों में आत्मा को जोड़ता है, उसका आत्म भाव ही आत्म योग है।इस योग के द्वारा 'अप्पं जुंजइ' जो आत्मा को आत्मा से जोड़ता है, ध्यान देना।ये तार, उस करंट से जुड़ गया, तो उसकी ऊर्जा फैल रही है।उसी तरह से, अपना उपयोग अपने से ही तो जोड़ ले। ध्यान देना !जब नीचे पानी हो और उस पानी को लाना हो, तो नली में पानी भरा जाता है, यहाँ से, जबकि सामने नहर बह रही है, लेकिन जिस नली से पानी लाना है, उन नली में यहाँ से पानी भरा जा रहा है, वहाँ के पानी का यहाँ के पानी का एक बार सम्पर्क हो जाये इस सन्दर्भ में एक संस्मरण हैं वर्ष 2017 मैं नैनागिर से आ रहा था, मैंने देखा नहरों के पास, बिना लाइट के खेतों को पानी दिया जा रहा है, मैंने कहा ये प्रक्रिया क्या है? बोले ये प्राचीन पद्धति है, तब मैंने देखा–इस तरह से

वहाँ से पानी थोडा आया, और थोड़ा पानी यहाँ से भरा और हवा से फूँका तो ये पानी भीतर तक चला गया, उस पानी से जुड़ गया, दोनों जुड़ेंगे तो ये पानी दो पानी पकड़ लेंगेऔर फिर सटक नीचे डाल दी, तो जो पानी एक बार शुरु होता है, तो फिर नहीं चाहिए कुछ बिजली, 24 घंटे चलता रहता है। अब बाहर से कोई प्रयोजन नहीं रहा कुछ नहीं चाहिए। पहले इस पद्धति से नहर से पानी निकाल लेते थे, योग कर दिया जोड़ दिया जो बीच में वायु थी, उसको अलग कर दिया और पानी से पानी का जुड़ाव कर दिया। उसी तरह आत्मा को आत्मा से जोड़ दिया गया निर्जरा चालू हो गयी। ये है अध्यात्म योग, आत्मा में अधि माने अधिकरण में, आत्मा में योग, आत्मा में साधना। अब साधना कहाँ हो रही है? आत्मा में, ध्यान देना। जब कहीं तालाब में पानी हो, कुआ में पानी हो, तो तालाब के पानी को कौन निर्मल करता है? **तालाब की लहर ही तालाब के पानी को निर्मल करती है।** तालाब में उठने वाली लहर, **जल में उठने वाली लहर ही तालाब के पानी को स्वच्छ करती है।** उसी तरह, अपने स्वभाव के भीतर जो ज्ञान स्वभाव की लहर उठती है, वह लहर ही हमारे अंदर विशुद्धि को प्रदान करती है। उस विशुद्धि से कर्मों की निर्जरा होती है। अध्यात्म योग के द्वारा **कर्मणाम्** कितने कर्मों की निर्जरा होती है? ध्यान देना ! अधिकांशतः मुनिराजों को उपसर्ग के काल में केवलज्ञान हुंआ। बहुत सारे ऐसे मुनि हैं, उपसर्ग हुआ केवलज्ञान हो गया। उन्होंने उपसर्ग कर्ता पर ध्यान नहीं दिया। उपसर्ग पर ध्यान नहीं दिया, अपनी आत्मा के भीतर लीन हो गये। और हम कान लगाये रहते हैं। कौन क्या कह रहा है? हम भले ही यहाँ बैठे, वहाँ हमें कौन क्या कह रहा है? और आवाज न आये तो दूसरे से पूछ लेते हैं, क्यों, वह क्या कर रहे थे? भैया ! अध्यात्म योग शुरु नहीं हुआ? **निज को निज से जोड़ लेना अध्यात्म है।** एक दो कर्मों की निर्जरा नहीं, आठों कर्म निर्जरा को प्राप्त हो रहे, कर्मों की कड़ियाँ टूटती जा रहीं 'अविरल शुद्धात्म प्रदेशों में अविरल निर्जर के झरने फूट पड़े। ये है, निज को निज से तो जोड़ो, कहाँ जुड़े हो, किनसे सम्बन्ध जोड़ रखा है? ये रिश्ते, **ये नाते इन्हीं में हमारा समय निकल जाता है और निज से हम अपना रिश्ता जोड़ नहीं पाते।** सम्बन्ध और बंध हमेशा दो में होता है तो सुन लो –

25

एकत्व में सम्बन्ध नहीं

कटस्य कर्त्ताहमिति, सम्बन्धः स्याद् द्वयो र्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यादत्मैव,सम्बन्धः कीदृशस्तदा ॥25॥

अन्वयार्थ – (**अहम्**) मैं (**कटस्य कर्ता**) चटाई का कर्ता हूँ (**इति सम्बन्धः**) इस प्रकार कर्ता–कर्म सम्बन्ध (**द्वयोर्द्वयोः**) भिन्न–भिन्न दो पदार्थों में (**स्यात्**) होता है, परन्तु (**यदा ध्यानं ध्येयं**) जब ध्यान (**आत्म एव**) आत्मा ही हो (**तदा**) तब (**कीदृशः सम्बन्धः**)कैसा सम्बन्ध हो सकता है?

पूज्यपाद स्वामी ने देखा एक आदमी चटाई बुन रहा था, उसको देखकर भैया ! यह चटाई अलग है और निर्माता अलग है **कटस्य कर्ता अहं** मैं चटाई का कर्ता हूँ, चटाई अलग है और मैं अलग हूँ, सम्बन्ध कहाँ हुआ? **द्वयोर्द्वयोः, दो में सम्बन्ध हुआ की चटाई अलग और व्यक्ति अलग, तो दो के बीच मे सम्बन्ध होता है, कभी की बंध और सम्बन्ध में दो में ही होते है** एक में नहीं होते। जहाँ दो पना आयेगा, अणु–अणु दो मिल गये, बंध हो गया, सम्बन्ध हो गया और जहाँ बंध है, वहीं विभाव है, **एक है, तो स्वभाव में, दो है तो विभाव में।** भैया ! स्वभाव पर्याय, और विभाव पर्याय में क्या अंतर है? स्वभाव पर्याय और विभाव पर्याय, स्वभाव व्यंजन पर्याय, स्वभाव द्रव्यव्यंजन पर्याय, विभाव द्रव्यव्यंजना पर्याय में क्या अंतर है? स्वभाव द्रव्यव्यंजन पर्याय, शुद्ध द्रव्य की पर्याय है, विभाव द्रव्यव्यंजन पार्यय, अशुद्ध द्रव्य की पर्याय है। आप कौन हो। मनुष्य हो कौन सी पर्याय है तुम्हारी? विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय। क्यों? क्योंकि तुम कर्मों से मिले–जुले हो। **'ध्यानं ध्येयं यदा'** यदा जब,

आत्मा एव आत्मा ही ध्यानं। ध्यान किसका करना है? आत्मा का, ध्येय क्या है? आत्मा। ध्याता कौन है? आत्मा। ध्यान का फल किसे मिलेगा? आत्मा को। चारों प्रत्यय ध्यान कर्म ध्याने के योग्य क्या है? आत्मा। ध्यायेगा कौन? आत्मा। ध्यान का फल किसे मिलेगा? आत्मा को। जब आत्मा ही ध्याता हो, और आत्मा ही ध्यान हो और आत्मा ही ध्येय हो, तब फिर सम्बन्ध कैसा? कैसी पार्टनरी? निजी मालिक, स्वतः मालिक हो गये न, एक ही व्यक्ति पूरी दुकान का कार्य करता हो, उसे ही । A to Z पूरा करना हो पर कि वहाँ परवाह नहीं है, यहाँ तो मैं जो करूँगा आत्मा का ध्यान, आत्मा ही ध्येय आत्मा ही ध्याता और निर्जरा ध्यान का फल है तो फल पहले बता दिया, कर्मों की निर्जरा ध्यान का फल है। कहाँ था –

णाणेण झाण सिद्धि, झाणादो होइ कम्म णिज्जरणं।
णिज्जर फलं तु मोक्खं, णाणब्भासो तदोकुज्जा।। अष्ट पाहुड

सम्बन्ध कीदृशः, तब सम्बन्ध किस प्रकार ठहरेगा? सम्बन्ध तो तब होता है, जब ध्यान नहीं होता, सम्बन्ध तो तब होता है, जब ध्येय नहीं होता, सम्बन्ध तो तब होता है, जब ध्याता नहीं होता है। सम्बन्ध तो तब होता है, जब ध्यान के फल से कोंसो दूर होता है। भैया ! आओ ! कुछ पल ही सही जरूरी नहीं 24 घंटे यह कर सको, लेकिन 24 घंटे में एक बार भी वृक्ष को पानी दे दो, तो वृक्ष फल और फूल दोनों देता है। उसी तरह एक बार तो निज आत्मा को निहार लो, इसका किसी से सम्बन्ध नहीं है। सभी सम्बन्धों से परे है। तब फिर कभी बिलखना नहीं पड़ेगा, क्योंकि दो ही है, **लखो या बिलखो। नहीं लखोगे तो बिलखोगे। लखोगे तो नहीं बिलखोगे** तो यह जो बंध होता है, कौन बंधता है, किससे बंधता है? क्यों बंधता है? ये प्रश्न उत्पन्न होते हैं, कौन बंधता है? किससे बंधता है? क्यों बंधता है? क्या कभी छूटता भी है? प्रश्न आ गया।

26

बन्ध और मुक्ति के कारण

बद्धयते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्त्येत्।।26

अन्वयार्थ– (**समम:**) ममता भाव वाला और (**निर्मम:**) ममता रहित (**जीव:**) जीव (**क्रमात्**) क्रम से (**कर्मो से**) (**बध्यते**) बँधता है तथा (**मुच्यते**) छूटता है (**तस्मात्**) इस कारण (**सर्वप्रयत्नेन**) सर्व प्रयत्न से (**निर्ममत्वं**) निर्ममत्व को (**विचिन्तयेत्**) ध्यावे ।

बध्यते जीव: कौन बँधता है? जीव याने आत्मा, आत्मा बँधता है। ध्यान देना। पूज्यपाद आचार्य की यह बात याद रखना भूल नहीं जाना **'जीव: बध्यते'** अन्यथा तुम्हें सिर्फ यह सुनने को मिलेगा कि जैसे रस्सी से रस्सी बँध जाती। ऐसे कर्मों से कर्म बधते है, आत्मा नहीं बंधती। लेकिन आचार्य कहते हैं, **'बध्यते जीव:'** जीव बँधता है, आत्मा बंधती है, तत्त्वार्थ सूत्र का सूत्र, नय भिन्नता हो सकती है।

नाम–प्रत्यया: सर्वतो योग–विशेषात् सूक्ष्मैक क्षेत्रा–
वगाह स्थिता–सर्वात्म प्रदेशेष्वनन्तान्त–प्रदेशा:॥24/8॥ (तत्त्वार्थ सूत्र)

सम्पूर्ण आत्मप्रदेशों में बंध होता है, कितने परिमाणुओं का? अनंतानंत परमाणु प्रतिसमय आकर के बंधते हैं।

'जीरदि समय पबद्धं'।। कर्म का. गा. 5

एक समय प्रबद्ध परमाणु खिरते हैं, और उतने ही आत्मा में बंधते रहते हैं। भैया! एक समय में कितने कर्म परमाणु बंध को प्राप्त होते हैं? अनंतानंत कर्म परमाणु बंध रहे हैं,

क्षेत्रावगाही सम्बन्ध है। जैसे–दूध में पानी का सम्बन्ध है। संशलेष सम्बन्ध नहीं हैं कर्मों का, संयोगी सम्बन्ध भी नहीं है, तादात्मय सम्बन्ध भी नहीं है, एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध है इसे संश्लेष सम्बन्ध भी कहते है। आत्मा के क्षेत्र में तभी तो आत्मा को उठाके ले जा रहा है। आत्मा को नरक की ओर ले जा रहा है। **'जीव : बध्यते'** जीव बँधता है। क्यों बँधता है? बिना परिणति के, तो नहीं बँधता है, कोई दूसरा व्यक्ति नहीं बाँधता है, जीव कोई लकड़ी का गट्ठा नहीं है कि दूसरो बाँध दे। कोई कार्टून का डिब्बा नहीं है कि दूसरा व्यक्ति बाँध दे। जीव कैसे बँधता है? सममो ममता सहित हुआ जीव, रागी जीव, मोही जीव **बध्यते** बँधता है और **निर्मम :** यदि ममता रहित जीव है, तो जीव ही **'मुच्यते'** छोड़ता कौन है? जीव। बँधता कौन है? जीव। आत्मा को **बँधता** है, आत्मा ही छूटता है। **परिणति जब ममतामय होती है तो बँध ाता है और समतामय होती है, तो छोड़ता है।** **'तस्मात्'** तो हम क्या करें? सम्पूर्ण प्रयत्नों से भाग्य तो नहीं, सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा **निर्ममत्वं** मैं ममता रहित स्वभाव वाला हूँ, मुझे वही विचार करना चाहिए। यदि मेरी कहीं जरा सी भी बुद्धि है, तो मेरा विकार है, मेरा दोष है, लेकिन मेरा स्वभाव ममता रहित ही है। अपने स्वभाव को याद करना चाहिए, स्वभाव को याद करने से विजय प्राप्त होती है और यदि स्वभाव को भूल जाओगे तो, विभाव मिल जायेगा। ध्यान दे लेना। यदि सिर्फ स्वभाव का बोध हो जाये। आपने कथानक सुना था, शेर गधों की संगति में आ गया, कुछ पल के लिए स्वभाव को भूल गय तो गधों के साथ मिट्‌टी ढो रहा, और जब पानी में परछाई पड़ी, सामने वाले शेर की आवाज सुनी तो अपने सिंह स्वभाव का बोध हो गया, तो सिंह की संगति में पहुँच गया। भैया ! आचार्य कहते हैं, अपने स्वभाव का बोध करो। निर्ममत्वपने का बोध करो। तभी तुम्हें इसका फल मिलेगा। मेरा स्वभाव क्या है? मैं कौन हूँ, मैं कैसा हूँ? मेरा स्वरूप क्या है? मेरी परिणति क्या है? और मेरे सामने जो है, इन सबसे मेरा क्या सम्बन्ध है? मेरे लिए कुछ इस विषय में भी बता दीजिए। क्यों? मैं आपके सिवा कहाँ पूछूँगा, कहाँ जाऊँगा?

27

निर्ममता की सिद्धि योग्य विचार

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावाः, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा॥27॥

अन्वयार्थ – (**अहम् एकः**) मैं एक हूँ (**निर्ममःशुद्धः ममता**) रहित शुद्ध हूँ (ज्ञानी) ज्ञानी हूँ तथा (**योगीन्द्र गोचरः**) योगियों केवली, श्रुतकेवली, द्वारा जानने योग्य हूँ (**सर्वे अपि**) सभी (**संयोगजा भावा**) संयोग से उत्पन्न होने वाले पदार्थ (**मत्तः**) मुझसे (**सर्वथा बाह्याः**) सब तरह से भिन्न हैं।

अहं एकः मैं एक हूँ, भैया ! जिस समय प्रवचन सुनो उस समय पीछे वाले को मत देखो, पूरी सभा में, मैं अकेला हूँ, प्रवचन सिर्फ मेरे लिए हो रहा है। भैया ध्याान देना! जब आँखों से आंसू टपनके लगे, तब समझना, आज मैंने प्रवचन सुना है। तालियाँ नहीं, क्या लिखा? जब भगवान के दर्शन करते समय आँखों से आंसू झरने लगे तक समझना की दर्शन हुआ है। कहीं यह नहीं लिखा कि तालियाँ बजने लगे। पहले मैं सोचता था कि तालियाँ बजे तो प्रवचन बढ़िया कहलाता है। लेकिन जब मैंने स्वाध्याय किया तो पाया प्रवचन तालियों वाला नहीं कहलाता है, प्रवचन तो आंसुओं वाला कहलाता है। अनुभव वाला कहलाता है, जो प्रवचन अनुभूति करा दे, अनुभूति करायेंगे तो आंसू भी झरेंगे।

आनन्दाश्रु–स्नपित–वदनं गद्‌गदं चाभिजल्पन्,
यश्चायेत त्वयि दृढ–मनाः स्तोत्र–मन्त्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह–वल्मीक–मध्यान्,

निष्कास्यन्ते विविध–विषम–व्याधयः काद्रवेयाः ॥3॥ (एकीभाव स्त्रोतम्)

एकीभाव में चलो जहाँ तारतम्य बनता है। ओ हो...........मैं कौन था? क्या था, क्या हूँ, क्या हो गया? क्या होना? चलते जाओ भीतर में, उतरते जाओ भीतर में, जैसे जैसे भीतर में उतरते जाओगे भैया! श्वास को साधले तो हाथ पाँव नहीं चलाना पड़ते हैं। जो पानी में श्वास साध लेता है, उसको हाथ पाँव चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जो श्वास नहीं साध पाता है, उसे हाथ पाँव चलाना पड़ता है। अर्थात् जो भीतर की साधना नहीं कर पाता है, जो शुद्धोपयोग की साधना नहीं कर पाता है उसे बाहर में, शुभोपयोग की साधना करना पड़ती है। क्यों पार तो होना है, कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा, कोई नदी में कूद जाये, श्वास साधके न जानता हो, तो क्या करेगा? डूबेगा। इसलिए पार होने के लिए क्या उपाय है? अब शुभोपयोग का आधार लो। या तो **शुद्धोपयोग की श्वास साधलो, या शुभोपयोग के हाथ पाँव चलाके पार हो जाओ, अन्यथा तुम अशुभोपयोग की नदी में डूब जाओगे। भैया !** मैं एक हूँ, अब जो नदी में कूद गया है, वह पीछे वाले को देखेगा तो डूब जायेगा। अब एक बात और बता दूँ, यदि कोई डूब रहा हो तो भैया। पकड़ने का तरीका दूसरा है, मैं बताता हूँ वह तरीका है, पहले दो तीन हाथ लगा दो, ताकि वह अपने पर हाथ न उठा पाये, आप उसके हाथ पकड़ लो, लेकिन वह आपके हाथ न पकड़ पाये, अन्यथा हाथ पकड़ेगा, आपका सीधा गला पकड़ेगा। भैया ! जो अशुभोपयोग में डूबा है, उसको अपना हाथ से पकड़ने दो, समझ रहे, वह सीधा तुम्हारा गला पकड़ेगा। इसलिए उसको गले मत लगाओ। जो अशुभोपयोग में डूबा है। या तो स्वयं पार हो जाओ। पानी में भँवर उठती है, पानी में चलने वाले को उस भँवर से बचना पड़ता है, यदि भँवर के बीच में पहुँच गया, तो अच्छे–अच्छे तैराक भी नीचे डूब जाते हैं। इसलिए भँवर से बचे रहो और हम –

ओई तरफ से चले नाव खो जिते भंवर थी भारी।
रागद्वेष के मगरमच्छ ने गत गंगा कर डारी
दशधर्मों के दश घाटों में एकऊ तो घाट पकरते
तो चतुर्गति की वैतरणी मे बिना मौत न मरते।।

भैया! **एकोऽहं** मैं एक हूँ, ओ लक्ष्य बनाके हाथ पाँव चलाते रहो। **निर्ममः** किसी से

ममता मत पालो, तो पार हो जाओगे, और वहाँ पर तुमने ममता पाली, समुद्र के बीच में ममता पाल ली, यह उठा लो, यह उठालो तो क्या होगा? समुद्र पार करना है, और सामान लाद के पार किया जाता क्या है? भवसागर से पार होना है, तो जितना चाहे लादते जा रहे, नदी पार करना है, तालाब तैरना है, तो कितना सामान पीठ पर लादते हैं? बिल्कुल नहीं लादते। भैया ! यह संसार रूपी समुद्र पार करना है तो फिर ये परिग्रह क्यों लादे बैठे हो? बस **निर्मम:** निर्मम हो जाओ, **शुद्धा:** तीसरा विशेषण है, मैं शुद्ध हूँ। कैसा हूँ? मेरा स्वरूप शुद्ध है। आचार्य का अभिप्राय बहुत ऊँचा है, अभिप्राय बहुत उच्च बनाया, लक्ष्य हमेशा ऊँचा रखो, **ऊँची सोच, ऊँचा लक्ष्य, उन्नत विचार ही उन्नति के सूचक होते हैं। शुद्धा:** अब अपने शुद्ध पर भी दृष्टि डालना है, अशुद्ध पर दृष्टि नहीं डालना है।

कणयमया भावादो जायंते कुण्डलादयो भावा।
अयमयया भावादो जह जायंते दु कडयादी॥30॥ (स.सा.)

सोने के पिण्ड से सोने के आभूषण तैयार होते हैं, लोके के पिण्ड से लोहे के औजार तैयार होते हैं। उसी तरह जब शुद्ध का विचार करोगे, तो शुद्धता आयेगी और अशुद्ध का विचार करोगे तो अशुद्धता आयेगी।

द्रव्यकर्म मलैर्मुक्तं भावकर्म विवर्जितं।
नोकर्म रहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मन:॥ परमानंद स्त्रोत 8

'यो जानाति स: पंडित:' पंडित कौन है? द्रव्यकर्म से मुक्त, भाव कर्म से मुक्त, नोकर्मों से मुक्त, मैं तीनों मलों से मुक्त हूँ। शुद्ध क्यों हूँ? क्योंकि द्रव्यकर्म से मुक्त, भावकर्म से मुक्त, नोकर्म से मुक्त हूँ। इस तरह का विचार करना, द्रव्य निक्षेप की अपेक्षा ऐसा विचार करना की मैं इस तरह की शक्ति से सम्पनन्न हूँ। और फिर उसी को प्राप्त करना। चौथा विशेष है ज्ञानी, ज्ञानवान हूँ, धनवान संयोगी अवस्था है, ज्ञानवान तादात्मय अवस्था है, अविनाभाव सम्बन्ध है, ज्ञान से ज्ञानी का इसलिए जिसका संयोग होता है, तो उसका वियोग हो जाता है। धनवान का धन से वियोग है, रूपवान का रूप से वियोग है, लेकिन ज्ञानवान का ज्ञान से वियोग नहीं है। क्यों? अविनाभाव सम्बन्ध है चार विशेषण हो गये। **योगीन्द्रगोचर:** जो योगीयों के इंद्र है उनके स्वरूप को सब नहीं जान सकते, यह

स्वरूप योगियों के गम्य है। यह स्वरूप योगियों के ज्ञान में आता है, यदि भोग लीला मे लीन है जीव, राम लीला और कृष्णलीला में लीन है जीव, प्रभु ! कहाँ नजर आयेगा? आचार्य कहते है, योगी दशा में, **बाह्या : संयोगजा : भावा :** ध्यान देना। उपयोग भीतर की ओर जाये, तो फिर लक्ष्य भीतर का बने, तो वह स्वरूप को जाने और बाहर की ओर **बाह्या : संयोगजा :'** संयोग से उत्पन्न हुए भाव हैं, जितने कर्मज भाव हैं, संयोगज भाव हैं, जितने भी सम्बन्ध हैं, पहले कहाँ था –

वपुर्गृहं धनं दारा: पुत्रा मित्राणि शत्रव:।
सर्वथान्यस्वभावानि, मूढ: स्वानि प्रपद्यते॥8॥

यह कारिका अभी आचार्य ने छोड़ी नहीं है, वहाँ से छुड़ाके लाये थे, तब इस स्थिति में लाये हैं, और फिर से कह दिया, यह फिर से याद आ रहे हों आपको, तो वह संयोगज हैं, यह तेरे स्वभावज नहीं हैं, कर्मोपाधिनिरपेक्ष नय की दृष्टि से देखेंगे तेरा आत्मा **'सिद्धसदृशशुद्धात्मा' केवलज्ञानादयो जीव गुण :** केवलज्ञान आदि यह जीव के गुण हैं। ँ, **मत्त : मुझसे सर्वेऽपि** सभी प्रकार से सर्वथा बाह्याः, जितने भी संयोगी सम्बन्ध हैं, जितने भी रिश्ते हैं, नाते हैं, सम्बन्ध हैं, सिर्फ संयोग के हैं। एक सम्बन्ध होता है, आठ दश रिश्ते तैयार हो जाते हैं, आठ–दश घर तैयार हो जाते हैं, और यदि वह सम्बन्ध बिखर जाये, तो आठों के रिश्ते टूट जाते हैं, क्यों? क्योंकि एक के कारण बने थे। संयोग के कारण बने थे, ममत्व के कारण हमने स्वीकार किया था और जहाँ ममत्व टूट गया, सम्बन्ध टूट गया संयोग छूट गया। तो संयोग, सर्वथा मुझसे बाह्य हैं, क्योंकि 'अत्यंताभाव' मेरे आत्म द्रव्य से अन्य द्रव्य भिन्न हैं। समन्तभद्र की दृष्टि से देखों तो एक जीव से दूसरे जीव का अन्योन्याभाव/पुद्गल आदि द्रव्यों का अत्यंत अभाव है। लेकिन जब अमृतचंद्राचार्य जी की दृष्टि से देखते हैं, अध्यात्म की दृष्टि से वह कहते ये भी अत्यन्त अभाव जैसा ही है। क्यों? मेरी आत्मा से तो वह आत्मा अनात्मा ही है।

'जीवादि बहितच्चं हेयं'

यह भी छोड़ने योग्य है, **सर्वेऽपि** 'सर्वथा' सभी प्रकार से, अरे किसी भी प्रकार से तो हम उनको रख सकते न। किसी भी प्रकार से रख लें, चलो भाई। हम माँ के रूप में

साथ में रख लें, बहिन के रूप में साथ में रख लें, बेटी के रूप मे साथ में रख लें, किसी भी रूप में साथ में रख लें, तो सर्वथा सभी प्रकार से मुझसे बाह है। तुम्हारे स्वभाव में किसी भी प्रकार से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। आचार्य भगवन् का कहना है, **जितने यह तूने सम्बन्ध जोड़ रखे हैं, यह ममता और मोह की निशानियाँ हैं। जितने तेरे दु:ख हैं, वह तेरे अज्ञान की कहानी है।** मत्तः मुझसे, मत्तः शब्द पंचमी विभक्ति में आता है, तसल् प्रत्यय उसमें लग गया मत्तः मुझसे अस्मद् शब्द में मुझसे सर्वथा और जहाँ हटाव होता है, छूटना होता है, भिन्नता होती है, वहाँ पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। तो मुझसे सर्वथा ही भिन्न है, किंचित भी मेरा नहीं है। यह है स्वभाव का बोध, जैसे–जैसे स्वभाव का बोध आत्मा को होता है वैसे–वैसे आत्मा अपनी ओर झुक जाता है। सम्बन्ध कब तक चलेगा, एक दिन बोध हो जाता है। कभी कुंवारे थे, उसके पश्चात् पति–पत्नी हो गये और सम्बन्ध चला, लेकिन कुछ समय बाद सम्बन्ध का भी बोध हो गया, पुनः ब्रह्म की उपासना की ओर बढ़ गये। बाहर वाले कहेंगे लेकिन भीतर वाले को पता है, हम भाई और बहन है। बाहर वाले कहेंगे यह पति–पत्नी है, यह श्रीमान्, यह श्रीमति है लेकिन भीतर वाली आत्मा को पता है, कि हमने बह्म की उपासना में समय लगा दिया है, हम अब पति–पत्नी नहीं है। क्योंकि मुझे अगली पर्यायों मे अब पति–पत्नी नहीं बनना है, अब तो मुझे परमात्मा बनना है और परमात्मा बनने के लिए इन सम्बन्धों में नहीं उलझना है। निर्बंध दशा की ओर जाने की साधना हमने इसके माध्यम से सुनी।

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

28

सम्बन्धों को त्यागने की प्रेरणा

दु:ख–सन्दोह–भागित्वं, संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं तत: सर्वं मनोवाक्काय कर्मभि:॥28॥

प्रिय आत्मन्!

अध्यात्म युग के सृष्टा श्रमण संस्कृति में, परम प्रतिष्ठित आचार्य श्री पूज्यपाद जी पूर्व की 27 कारिकाओं में, यह स्पष्ट बता चुके हैं। मैं क्या हूँ? आज यह दर्शा रहे हैं, कि संसार में संयोग दु:ख का कारण है। यदि तुम सुखी होना चाहते हो, तो साझेदारी छोड़ दो। जहाँ–जहाँ संयोग होते हैं, वह वियोग पर जाकर अंत को प्राप्त होते हैं।

संयोगतो दु:खमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्॥28॥

अन्वयार्थ –(**इह**) इस संसार में (**देहिनाम्**) जीवों को (**संयोगात्**) संयोग से (**दु:खसंदोह**) दु:ख समूह का (**भागित्वं**) भागीदार बनना पड़ता है (**तत:**) इस कारण (**एनं सर्व**) इन सभी शरीर और कर्म के, संयोग को (**मनोवाक्कायकर्मभि:**) मन, वचन, काय की क्रिया से (**त्यजामि**) छोड़ता हूँ।

भगवान कहते हैं, दु:ख कहाँ से प्रकट हुआ?

'संयोगतो' पंचमी विभक्ति का प्रयोग है– संयोग से प्रकट हुआ दु:ख है। पूज्यपाद भगवान कहते हैं, हे जीव ! सुन कब तक तुझे दु:ख का भागी बनना पड़ेगा? मैं और कब तक दु:खों का भागी बनूँगा? आचार्य कहते यदि दु:ख नहीं चाहता है, तो सुन ! क्यों?

तत्त्वज्ञान से हीन जीवों का मैं दुःख दूर नहीं कर सकता। पूछा हे भगवन! मेरा दुःख कब तक रहेगा? तो आचार्य भगवन्! बोले हाँ दुःख शाश्वत रहेगा। क्यों रहेगा प्रभु? **'तत्त्वज्ञान हीनानाम् दुःखमेव शाश्वतम्'** जो तत्त्वज्ञान से हीन रहेगा, उसका दुःख संसार में कोई दूर नहीं कर सकता। भैया। भारत सरकार दुःख दूर करने के लिए चाहे, दो रुपये किलो चावल बेचे, चाहे एक रुपये किलो गेहूँ बेचे, चाहे तीन रुपये किलो शक्कर बेचे। क्या यह दुःख दूर करने का उपाय है? सरकार का भण्डार गरीबों को लुटा देने से गरीबों का दुःख दूर नहीं हो जायेगा। क्योंकि दुःख का कारण गरीबी नहीं है, दुःख का कारण अज्ञान है, दुःख का कारण सुसंस्कारों की कमी है। सम्यक् सोच की कमी है। जब तक जन–जन में अज्ञान का निवारण नहीं होगा तब तक गरीबी नहीं जायेगी। आचार्य कहते हैं–जब तक तत्त्वज्ञान का अभाव है, तब तक दुःख है। जब तक मोह है, तब तक अज्ञान है। अज्ञान है सो मोह है, मोह है सो दुःख है। हम इस तत्त्व को भली भांति समझ लें कि दुःख मेटने के लिए ज्ञान का दीप जरूरी है। यदि ज्ञान का दीप जल गया, तो मोह का अंधेरा हट जायेगा। फिर दुःख काहे का, इसलिए समन्तभद्र स्वामी से पूछा कि हे भगवन् दुःख दूर कैसे होगा? सिर्फ एक प्रश्न रखा दुःख दूर कैसे होगा? समन्तभद्र स्वामी ने समाधान में कहा –

अज्ञान–तिमिरव्याप्ति–मपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासन माहात्म्य, प्रकाशः स्यात्प्रभावना॥18॥ (रत्नकरण्ड–श्रावकाचार)

'अज्ञान' अंधेरा है और दुःख अंधेरे में है, उस अंधेरे को जैसे बने वैसे हटाओ, और जैसे ही अंधेरा हटेगा सुख प्रकट हो जायेगा। ज्ञान में सुख है, अज्ञान में दुःख है। आओ–

संयोग के कारण दुःख होता है, जब कोई पदार्थ प्राप्त होता है, तो तत्क्षण सुख लगता है, लेकिन वही पदार्थ जब कोई हानि कराके जाता है, तब दुःख प्राप्त होता है। भैया! संसार में कुछ पदार्थ ऐसे भी है, पुण्य के योग में वह पदार्थ सुख के साधन बन जाते हैं और पाप के योग में वही पदार्थ दुःख के कारण बन जाते हैं। उपघात नामकर्म का उदय जब आता है, तो अपने ही नाखून से ही घाव बन जाता है, अपने ही दांत से अपनी जीभ कट जाती है। जो दाँत भोजन चबाने के काम आते थे, पाप कर्म का उदय आता है, तो अपने ही दाँत से अपनी जीभ कट जाती है। अब पराये को कितना दोष दें? बोलो अपने ही दाँत से अपनी

जीभ कट जाती है। भैया! आचार्य कहते हैं, **'दु:ख सन्दोह भागित्वं'** दु:खों, संदोह माने समूह, संयोग के कारण दु:खों के समूह का भागी होना पड़ेगा। एक संयोग बनता है, कुछ समय बाद दु:ख का कारण बन जाता है। जो मिठाई आज अच्छी लगती है, कल डाईबिटीज बीमारी बन जाती है। संयोग दु:ख का कारण बन गया, भैया ! **इसलिए संसार में मेहमान की तरह रहो, शरीर में भगवान की तरह रहो। मकान मे मेहमान की तरह, तन में भगवान की तरह।** सम्यक्दृष्टि जीव समझ गए, इस विज्ञान को, थोड़े से संयोग ने इतना दु:ख दिया, तो जितने संयोगों को मैं जोड़ता जाऊँगा। उतने दु:खों में प्रवेश करता जाऊँगा। दु:खों से मुक्ति का उपाय निकालना है, क्या करो भाई? मन–वचन–काय तीनों के द्वारा **त्यजामि** छोड़ता हूँ, संकल्प आ गया जीव के अन्दर, जीव ने जब यह जान लिया कि मैं तो एकत्व भावना से सम्पन्न हूँ।

''एकोऽहं निर्ममः शुद्धो। इ.उ., 27
अहमिक्को खलु सुद्धो''। स.सा., 38

ऐसा स्वभाव मैं लिए हूँ, ओ हो.......... और मैं संयोगों के कारण दु:खी हो रहा हूँ। भैया! आग को कभी पिटते देखा? आग को कौन पीटने जाये? क्या करे? लोहे की संगति में आ गयी, तो आग को भी पिटना पड़ता है। आग क्यों पिट रही है? लोहे की संगति करने से आग भी पिटती है। उसी तरह पर के संयोग करने से, कर्म का संयोग करने से, यह आत्मा संसार में दु:खी होती है और वही लोहा धीरे–धीरे जब ठण्डा हो जाता है, तो फिर क्या उस लोहे को पीटा जाता है? नहीं। लोहे को कब तक पीटते हैं? जब तक उसमें आग है और आग शांत हो गयी, तो फिर ठण्डा लोहा कोई आकार नहीं लेता, नहीं पीटा जाता। गर्म है, उसमें आग का संयोग है, आग पिट रही है। भैया ! दु:ख का कारण समझ गये। आचार्य कहते हैं–आग लोहे के संयोग में पिट रही है। आत्मा शरीर के संयोग में पिट रही है। मैं क्या करता हूँ? संयोग तीन प्रकार का है। मन का संयोग, वचन का संयोग, काय का संयोग। पूज्यपाद आचार्य को जगत का कोई व्यक्ति नहीं दिखा, कि मैं इसको दोष दे दूँ, कि मैं उसको दोष दे दूँ। इतना कह दिया कि संयोग के कारण दु:खी है, यह और कह देते कि संयोग में बाह्य जगत ले लेते लेकिन नहीं उसमें भी ये कह दिया, मन का संयोग, वचन का

संयोग, काय का संयोग। काय के द्वारा जब कुचेष्टायें करते हो, तो बंधन में पड़ जाते हो। मैं मांगीतुंगी में था, मूर्ति निर्माण में पाटिल जी का बहुत बड़ा योगदान है, मैंने पूछा मूर्ति निर्माण में कई बाधायें आयी होगी, कैसे पार पाये? बोले महाराज श्री बाधायें तो क्या शेर भी सामने आया, तो फिर मैंने कहा शेर के सामने आपने क्या किया? बस, मैं शेर के सामने वीर बन गया। कैसे? मैं अपने कायोत्सर्ग में लीन हो गया, हिला–डुला नहीं कुछ भी नहीं किया। शेर सूंघता रहा। मात्र मेरे सामने एक समस्या थी। शेर की दुर्गन्ध ज्यादा आ रही थी, उस दुर्गन्ध को जीतना ही मेरी सबसे बड़ी साधना थी, और मैंने उसको जीता, शेर वापिस चला गया। मैंने कहा शेर कितनी दूर था? बोले हम आमने–सामने थे, डेड हाथ, शेर सूंघ के गया। भैया। तात्पर्य यह है, यदि उस समय काय का जरा सा भी दुरुपयोग करते, हलन–चलन करते तो बंधन मे पड़ सकते थे, चिल्लाने की कोशिश करते तो बंधन में पड़ सकते थे। लेकिन इन्होंने ऐसा नहीं किया, संयोग नहीं किया, मन, वचन, काय का बच गये, दुःख से बच गये। हमारे मन की चेष्टा, वचन की चेष्टा, काय की चेष्टा, ये तीनों चेष्टायें संयोगों को उत्पन्न करती हैं। मन का सम्यक् प्रकार का उपयोग है, किन्तु यह नहीं अब तुम्हें इस योग का भी निरोध करना है, क्योंकि और आगे जाना है न, चेष्टायें बहुत कर लीं। इन चेष्टाओं के पार जाना है, प्रवृत्ति से निर्वृत्ति की ओर जाना है। **त्यजामि छोड़ता हूँ। 'त्यजामि'** त्याग करता हूँ। अभी तक त्याग की बात कहीं नहीं कही पूज्यपाद आचार्य ने, कारिका 28 में जाकर त्याग की बात कही और त्याग में भी मन की चेष्टा का त्याग, वचन की चेष्टा का त्याग, काय की चेष्टा का त्याग

'काय–वाड्.–मनः कर्म योगः'॥1/6॥ (त.सू.)

आस्रव अधिकार का त्याग, बंध अधिकार का त्याग, एक शब्द कहा–पूरा शास्त्र हो गया। आस्रव तत्त्व की जो भूल चल रही थी, उस आस्रव तत्त्व की भूल का भी त्याग, बंध तत्त्व की जो भूल चल रही थी, उस भूल का भी त्याग हो गया। आस्रव–बंध कराने वाले प्रत्ययों का भी त्याग। **'काय–वाड्–मनः कर्म योगः'** उमास्वामी ने तो यह बताया, मन, वचन, काय से कर्म योग होता है। कर्म योग से आस्रव होता है, वह उपदेश देकर चले गये, लेकिन पूज्यपाद कहते मैं उपदेश नहीं दे रहा। मैं अध्यात्म में जी रहा हूँ और अध्यात्म में

जीने वाला पर को उपदेश नहीं देता है। इन्होंने यह नहीं कहा कि छोड़ो, क्या लिखा? यह भी नहीं कहा कि **त्यजेत,** कोई दूसरा छोड़े क्या लिखते हैं? **त्यजामि** मैं त्यागता हूँ, आपसे यह नहीं कहा। **यह अध्यात्मिक संत की प्रतिष्ठा और अध्यात्मिक ग्रंथ की प्रतिष्ठा देखिए। यहाँ पर से नहीं कहा जाता तुम ऐसा करो। यहाँ किया नहीं जाता, यहाँ हुआ जाता है। चारों अनुयोगों की भाषा शैली समझिए–**

देखो – प्रथमानुयोग

जानो – करणानुयोग

करो – चरणानुयोग

बनो – द्रव्यानुयोग

अब मैं ऐसा होता हूँ, होना परिणमन करता हूँ। त्यागता हूँ, मतलब परिणमन करता हूँ। मैं स्वयं परिणमन करता हूँ, मैं मन की चेष्टा नहीं करता, क्यों? द्रव्यसंग्रहकार ने लिखा–

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥56॥ (द्र.सं)

उमास्वामी कहके गये, काय वाङ् मनः कर्म योगः। द्रव्यसंग्रह में नेमीचंद सिद्धांतदेव कह के गए– परम ध्यान की ओर ले जाने की कला है, क्या है?

चलो फिरो मत, हिलो डुलो मत बोल नहीं बोलो।
कुछ न सोचो, कुछ न चाहो बस निश्चल होलो।।
राग द्वेष अरु मोह करो मत, विधि आवश्यक है।
ममता तजना, समता भजना ही सामायिक है।। भक्तिभारती (प्रतिक्रमणं)

यह समतामय श्रमणाचार में प्रतिष्ठित करने की कला है। दूसरे से मत कहो, 'तुम छोड़ दो, मैं छोड़ता हूँ। एक कथानक आता है– प्रथमानुयोग में– राजा को वैराग्य आता है। तो मुनिराज कहते हैं, चले साथ में, वह कहता है, मैं अभी आता हूँ, मुनिराज बोले ठीक–ठीक आप रानी से पूछ के आओ। वह पूछने गया, तो रानी बोलती है। मैं थोड़ी देर में बताती हूँ, तब तक रानी गयी अंदर और सफेद साटिका धारण की और सीधे वन की

ओर प्रस्थान कर दिया, बोले यह क्या कर रही हो? बोली जिसको वैराग्य आता है, वह पूछने नहीं आता। अभी आपके वैराग्य मे कमी है। आप यहीं रहो मैं जाती हूँ। वैराग्य पूछके नहीं आता है,क्योंकि वैराग्य प्रकट होने वाली अवस्था है, घटित होने वाली अवस्था है, पाने वाली अवस्था नहीं है, आने वाली अवस्था नहीं है, प्रकट होने वाली अवस्था है, दो तत्त्व है पाना और प्रकटाना, पाया बाहर से जाता है, प्रकटाया भीतर से जाता है। संयोग पाया जाता है, जो भी संयोगी है, वह पाया जाता है। इसलिए आचार्य ने स्वभाव को प्रकटाने की बात कही थी। कहा **'यस्य स्वयं'** वहाँ प्रकटाने की बात कही। और यहाँ त्यागता हूँ। किसे? जिसे मैंने पाया है। कुछ मन के संयोग से पाया, कुछ वचन के संयोग से पाया, कुछ कार्य के संयोग से पाया है मन, वचन, काय योग है, योग से कौन सा कर्म पाया जाता है? प्रकृतिबंध और प्रदेश बंध 'जोगा पयडी पदेशा' 'प्रकृति बंध और प्रदेश बंध' हमने पाया है। और मुझे वह त्यागना है, तो संयोग को त्यागो। अब वस्तु के पास मत जाओ, वस्तु को धक्का मत दो, कि मैं तुम्हें छोड़ता हूँ, अपने मन को हटा लो, मन के द्वारा त्याग। वचन को वहाँ से रोक लो, वचन के द्वारा त्याग। काय की चेष्टा बंद कर दो, किसी वस्तु को धक्का नहीं देना है, कि मैं तुम्हें छोड़ता हूँ, मैं तुम्हें छोड़ता हूँ। बोलते क्यों हो, जब छोड़ रहे तो, और बोल रहे तो। इसका मतलब छोड़ नहीं रहे। आचार्य कहते हैं – कभी–कभी जीव ऐसा बोलता है, मैं तुम्हें याद नहीं करूँगा, इसका मतलब क्या है? याद करके ही हम से बोल रहे, याद आये तभी तो बोल रहे यदि मैं याद नआता, तो तुम बोलते कैसे? **सर्वं** सभी प्रकार से त्यागता हूँ। यह संकल्प आ गया, पहले जान लिया, अब त्याग आ गया। एकत्व भावना अन्यत्व भावना सभी भावनायें यहाँ चल रही हैं। एकत्व भावना **'एकोऽहं'। बाह्याः संयोगजा भावा** अन्यत्व भावना आ गयी। उसके पश्चात् समझ गये, कि मेरी आत्मा के सिवा मेरा कुछ नहीं है।

एको मे सासदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा॥102॥ (नियमसार)

एक शाश्वत आत्मा ही मेरा है, शेष तो सब संयोगी लक्षण है जिसका संयोग है, उसका वियोग नियम से है। काल का परिवर्तन है, किसी के घर आज, किसी के घर कल, बस काल परिवर्तन है, उसके बाद तो संयोग का वियोग निश्चित है तब फिर स्थिति यह

आती है, इन संयोगों को छोड़ने के बाद वैराग्य के तत्त्व और प्रस्फुटित होते हैं, क्यो? क्योंकि ध्यान करने वाले को, वैराग्य चाहिए, तत्त्व का ज्ञान चाहिए, परिषह पर विजय चाहिए।

वैराग्य तत्त्व विज्ञानं, निर्ग्रन्थश्च जितेन्द्रियः।
परीषहजयश्चेति, सामग्री ध्यान जन्मनः। (तत्त्वानुशासन)

निर्ग्रंथता चाहिए। परिषह जय चाहिए, इंद्रिय विजय चाहिए, तब ध्यान होता है।

❑❑❑

29

पौद्गलिक परिणति मेरी नहीं

न मे मृत्युः कुतो भीति, र्न मे व्याधिकुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले।।

अन्वयार्थ – (**मे**) मेरी (**मृत्युः न**) मृत्यु नहीं होती (**इस कारण**) (**कुतः भीतिः**) भय कहाँ से हो सकता है ? (**मे**) मुझे (**व्याधिः न**) कोई रोग नहीं होता (**इसलिए**) (**कुतः व्यथा**) दुःख कहाँ से हो सकता है? (**अहम्**) मैं (**बालः न**) बालक नहीं होता (**वृद्धः न**) बूढ़ा नहीं होता (**युवा न**) जवान नहीं होता (**एतानि**) ये सब बातें (**स्थितियाँ**) (**पुद्गले**) **पौद्गलिक** शरीर में होती हैं।

न मे मृत्युः पूछा! यदि तुम संयोग छोड़ दोगे तो मेरे बिना रहोगे कैसे? मर नहीं जाओगे मेरे बिना, जिओगे कैसे, प्रश्न आ गया, अभी तक तो तुम्हीं ने पाला है, अभी तक मैंने सम्भाला है, अब तुम मेरे बिना रहोगे कैसे? प्रश्न तत्काल खड़ा हो गया। जब आचार्य ने संयोग की बात कही, कि मैं छोड़ता हूँ, तत्काल जो संयोगी जन थे, बोल पड़े, तुम मेरे बिना रहोगे कैसे, जिओगे कैसे, शरीर बोल पड़ा, मेरे बिना रहोगे कैसे, वचन बोल पड़ा, बिना बोले कैसे रह पाओगे? भैया आचार्य ने फिर बोल दिया **न मे मृत्युः** मेरी मृत्यु ही नहीं है, ओ हो.............आज तक तो मैं सोच रहा था कि मैं भोजन दे रहा हूँ। सो तू जी रहा है, मुख सोच रहा था कि मैं भोजन चबा रहा हूँ, तो तू जी रहा है। आचार्य ने कह दिया 'न मे मृत्युः' मेरी मृत्यु नहीं है। जब मृत्यु होती है, तो डर होता है, संसार में सबसे ज्यादा डर यदि किसी का होता है, तो मृत्यु का और दुःख होता है, तो जन्म का। **जन्म के समान दुःख**

नहीं, मृत्यु के समान भय नहीं। और व्याधि जैसी पीड़ा नहीं, रोग जैसी पीड़ा नहीं। आचार्य कहते हैं, देखो ! 'न मे मृत्युः' जब मेरी मृत्यु ही नहीं है, तो मुझे भय किस बात का, मैंने छोड़ दिया। लोग कहते, यदि तुम मुझे छोड़ दोगे तो मेरे बिना रह नहीं पाओगे, ऐसा हो जायेगा। आचार्य कहते – चिंता मत करो, मुझे भय नहीं है, ये तो हर भव की कहानी है, आप जानते हो, 'न मे मृत्युः' मेरी मृत्यु नहीं है। 'कुतो भीतिः' तो भय कहाँ से आयेगा? जिसकी मृत्यु होती है उसे भय होता है, जिसे मृत्यु सता रही हो, क्यों, भय क्यों नहीं है? क्यों कि मैं जानता हूँ, क्या जानते हो? मैं ये जानता हूँ।

बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो, नित्यं शिवं वाञ्छति नाऽस्य लाभः।
तथापि बालो भय–काम–वश्यो, वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः॥34॥(स्वम्भू स्तोत्रम्)

'बिभेति मृत्यु' संसार मृत्यु से डरता है, लेकिन मृत्यु से डरने से, मृत्यु से मुक्ति नहीं मिल जाती । यदि हम मौत से डरेंगे, तो क्या मौत हमसे दूर हो जायेगी। नहीं होगी, और तीव्र गति से आ जायेगी। मैं यदि प्रतिपल मोक्ष चाहूँ तो चाहने से मोक्ष मिलना नहीं है, तो फिर क्यों मौत से डरूँ, और क्यों मुक्ति चाहूँ, मैं दोनों ही नहीं चाहता न व्याधिः मुझे कोई रोग नहीं है, रोग शरीर को है, और शरीर अनित्य है, नाशवान है, क्षणभंगुर है। सनतकुमार मुनि की कृपा है सनतकुमार मुनिराज ने कई हजार वर्ष रोगी रहने के बाद भी कभी वैद्य का स्मरण नही किया। स्वर्गों में चर्चा चली, मनुष्य लोक में ऐसे महामुनिराज है, जो अपने शरीर से इतने निस्पृह है, कि शरीर मे कुष्ठ रोग होने के बाद भी उसका उपचार नहीं चाहते, ओ हो..........उपचार तो मोह चाहे, और मोह ही नहीं है तो उपचार कौन चाहे? समझ रहे – हमारा सिर दर्द करता है, कोई हमारा ध्यान नहीं देता कौन बोल रहा ? मोह बोल रहा। लेकिन सनतकुमार चक्रवर्ती, मोही जीव नहीं थे, निर्मोही थे। कई हजार वर्ष तक कुष्ठ रोग रहा। वह जानते थे पुद्गल का रंग बदला है, मेरा स्वरूप नहीं बदला। रोग होने से मेरा स्वरूप तो नहीं बदल गया, मेरा स्वभाव तो नहीं बदल गया। पन्ना में एक लड़के ने सिर्फ इसलिए आत्महत्या कर ली, कि उसको कुष्ठरोग हो गया था, उसे अच्छा नहीं लगता था, उसने पत्र में लिखा, कि मुझे सबके सामने अच्छी फीलिंग नहीं होती है, मैं ऐसा कर रहा हूँ। भैया! यदि जरा से अहंकार को पी जाता, तो और जी सकता था कि नहीं, लेकिन तत्त्व का

ज्ञान नहीं था, शरीर को अपना मान बैठा, यदि भेदविज्ञान होता तो, यह भी कह सकता था, यह शरीर मेरा नहीं है, मेरी तो आत्मा है, शरीर को रोग है, आत्मा को नहीं है। मैं तो जन्म, जरा, मरण से मुक्त आत्मा हूँ। यह शरीर नाशवान है, रोग भी नाशवान को है। मैं तो अनंतकाल तक रहने वाली आत्मा हूँ। इसलिए इस रोग के प्रति मेरा कोई भी आदर भाव नहीं है। यह तत्त्वज्ञानी सोचता है। अनंगसरा के लिए, सर्प निगल गया, अनंगसरा के पिताजी हरिषेण चक्रवर्ती उसी मौके पर आ गये, और आने के बाद क्या हुआ? बेटी का सिर्फ मुख बाहर था और पूरा शरीर साँप निगल चुका था। बेटी ने कहा पिताजी, मेरी अंतिम इच्छा पूरी कर दो, बेटी बोल तेरी क्या है अंतिम इच्छा? पिताजी इस सर्प को अभयदान दे दो। यह सर्प अज्ञानी है, मुझे ज्ञान है, सर्प नहीं जानता है, कि काटना चाहिए कि नहीं काटना चाहिए। लेकिन मैं जानती हूँ मेरे पिताजी इस सर्प को मार के हिंसक न बने। क्योंकि मेरा इतना शरीर तो चला ही गया है। मैं जीऊँगी कि नहीं जीऊँगी, लेकिन सर्प तो जी जाये। यह होता है, सम्यक्दृष्टि का विचार कि –

'मित्ती में सव्व–भूदेसु'

सर्प के प्रति भी मैत्री भाव, मैत्री का तात्पर्य वैर के अभाव को मैत्री कहते हैं। वैर नहीं बांधा, कमठ ने वैर बांधा था, लेकिन अनंगसरा ने वैर नहीं बांधा। अगले भव में उसे सिद्धि प्राप्त हो गयी कि उसके स्नान के जल से विष दूर हो जाता था। अगले भव में विशल्या बनी। सोचिए आप **न मे व्याधि :** सम्यक्दृष्टि जानता की व्याधियाँ यों तो पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवें हजार पाँच सौ चौरासी बीमारियाँ होने की क्षमता इस शरीर में है। जब शरीर ही मेरा नहीं है तो बीमारी किसको समझना। आप अनेक बार देखना जब किराये के मकान में रहते हैं तो भीतर–भीतर झारा फूकी, पोछा, बाहर क्या हो रहा है? कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि मकान किराये का है, उससे मोह नहीं है, हमको जितने में रहना है, उतना साफ करो फुर्सत। मैं मुंबई में, कई बार आहार चर्या के लिए जाता था, पाँच मंजिल, दश मंजिल की स्थिति क्या है? वहाँ सीढ़ियों का उपयोग ही नहीं करते, सीधे लिफ्ट से जाते है, महाराज को सीढ़ी से जाना, सीढ़ी कौन साफ करे? सीढ़ी से किसी को मोह नहीं है। सबको अपने भीतर के मकान में मोह है। भैया! समझ रहे न अपने–अपने फ्लैट में सब सीमित है, सीढ़ी से कोई

प्रयोजन नहीं। आचार्य यही तो कह रहे हैं जब तेरा सीढ़ी से प्रयोजन नहीं है तो सीढ़ी पर उपयोग नहीं जाता। उसी तरह शरीर से प्रयोजन मत रख। जब शरीर तेरा नहीं है, तो शरीर को चमकाने का भाव जागेगा क्या? सीढ़ी क्यों नहीं झाड़ी? कौन झाड़े, प्रयोजन नहीं तो उस पर ध्यान नहीं। भैया! जब शरीर तेरा नहीं है, उधर क्या लक्ष्य है? यह सीढ़ी मेरी नहीं है, सिर्फ अन्दर का मकान मेरा है। उसी तरह यह लक्ष्य आ जाये आत्मा मेरा हे, शरीर मेरा नहीं है तो शरीर क्यों झाड़ते फिरोगे, शरीर को क्यों पोछते फिरोगे? यह स्थिति देखो, जिसे तत्त्वज्ञान निकालना है वह तो हर दृश्य को देख के तत्त्वज्ञान निकालेगा। प्रकृति का कण–कण उपदेश देता है, जो जिससे सीखले **'नाहं बालो'** न मैं बालक हूँ, यह बाल तो पुद्गल की पर्याय है। **'न वृद्धो'** न मैं वृद्ध हूँ। **'न युवा'** न युवा हूँ। तुम कौन हो? युवा सम्राट युवातपस्वी, युवा ह्रदय सम्राट। भैया! यह सब अज्ञानता की उपाधियाँ हैं। खूब लिखो युवा ह्रदय, खूब लिखो युवा सम्राट, युवा तपस्वी, लेकिन जब भीतर का बोध हो तब काहे का युवा, काहे का वृद्ध, काहे का बाल, यह तो सब पुद्गल की पर्याय के सम्मान का विषय बना लिया। पुद्गल की पर्यायें सम्मान का विषय बनेगी। ओ हो..... नाशवान को सम्मान का विषय बना लिया। ओ ज्ञानी ! न तू सदा युवा रहेगा, न तू सदा वृद्ध रहेगा, न तू सदा बालक रहेगा, ऐसा जानो। **'पुद्गले'** बाल पना किसमें है? पुद्गल में। यह युवापना किसमें है? पुद्गल में। यह वृद्धपना किसमें है? पुद्गल में। भैया ! एक से एक वृद्ध पुरुष ऐसे मिलेंगे जो डाई करा रहे, बाल काले दिखना चाहिए, उनको पता ही नहीं है कि यह वृद्धावस्था भी पुद्गल का परिणमन है। भैया! मेरे बस की बात नहीं है, मैं परद्रव्य के परिणमन को कैसे रोक सकता हूँ। यह पुद्गल का परिणमन है, मैं कह दूँ कि बाल तू सफेद नहीं होना, तो क्या बाल मान जायेगा। जब मेरे कहने पर बाल सफेद होने से नहीं रुकता, मैं कह दूँ चेहरा तुझ पर एक भी झुर्री नहीं आना चाहिए। तो क्या नहीं आयेगी? वह पुद्गल का परिणमन चल रहा है। अगुरुलघु गुण का विकार कहाँ जायेगा? भैया ! यह विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है, नर पर्याय, और विभाव में, विभाव रूप परिणमन चलना ही है। युवा, वृद्ध, बाल्यावस्था यह भी स्थिर नहीं है। पहले लिखते थे बाल कवि फिर लिखने लगे युवा सम्राट, और थोड़े आगे बड़े तो लिखने लगे वृद्ध तपस्वी, वयोवृद्ध ज्ञानी महाराज ! श्रावक को तो सम्मान देने की

आदत पड़ गयी है, 2007 में तपस्वी सम्राट सन्मति सागर जी महाराज की 69वीं जयन्ति औरंगाबाद में मनायी जा रही थी, हम सब साधुओं का उपदेश हुआ, आचार्य महाराज के आगे तो घड़ी फैल हो सकती, लेकिन तपस्वी सम्राट फैल नहीं हो सकते। उनको कुल 4–5 मिनिट का समय मिला, समय तो पूरा था, वह बोले भैया! **यह प्रशंसा करने वाले लोग, मुझे पतन में डालने वाले हैं। यदि मैं इनकी प्रशंसा मे पड़ जाऊँ और मान लूँ अपने आप को वैसा ही, तो मुझे नरक के सिवा और कुछ नहीं मिलने वाला। इसलिए तुम तो मेरी बात मानों इनने जैसा कहा मैं वैसा नहीं हूँ और मैं जैसा हूँ, वैसा यह कह नहीं सकते। क्यों? मैं जैसा हूँ, उसे केवली भगवान बता सकते हैं। इसलिए यह भक्ति के बहाने, भाई भक्ति करना है, तो मन्दिर में बैठकर कर लेते, गुरु को परेशान करके क्यों कर रहे हो?** बहुत अच्छा मार्मिक उद्बोधन उन्होंने दिया। चलो भाई तुम्हारी भक्ति होगी और हमारा प्रतिक्रमण छूटेगा। तुम्हारी भक्ति होगी, हम अपनी सामायिक छोड़ेंगे। क्यों श्रावकों! यही भक्ति है न। धन्य है तपस्वी सम्राट न अहम् बालो, न मैं बालक हूँ। कोई यह सोच ले, चलो यार बच्चा है, चलता है, कोई यह सोच ले साधना का मार्ग है, आचार्य कहते साधना के मार्ग में, कोई बालक नहीं होता है। कोई युवा नहीं होता, कोई वृद्ध नहीं होता, यहाँ सिर्फ ज्ञानी होता है। यह बाल, वृद्ध, युवा पर्यायों को त्याग करके इनको पार करके आओ, तो लक्ष्य को पाओगे। इस तरह से आचार्य भगवन् ने इन दो कारिकाओं के माध्यम से, हमे बोध दिया और कहाँ पर्यायों के पार चलो।

''**पर्यायों के पार देखले, मानव तू भगवान है।**'' पर्यायों के पार जाओ, **पुद्गल की पर्याय को अपना परिचय प्रमाण–पत्र न बनाओ।** आप का आई.डी. आपके पास है, आपके आई.डी. में आपका क्या परिचय है? नाम पर्याय का, फोटो पर्याय का , अब तो आँख की फोटो आने लगी, वह भी पुद्गल की मात्र यह परिचय तब तक रहेगा, जब तक पर्याय है, पुद्गल की पर्याय तुम्हारा परिचय पत्र बन रही है। इसलिए आचार्य उमास्वमी जी से पूछा भगवन् मुझे तो ऐसा परिचय दो जिसमें तीन लोक के जीव आ आये, और एक शब्द में परिचय आ जाये। तीनों लोकों के जीवों का एक शब्द मे परिचय हो जाये, तो उमास्वामी बोले –

उपयोगो लक्षणम्॥ (2 अं. 8 सू.)

तीन लोक के जितने जीव है, सबका परिचय उपयोग, ज्ञान–दर्शन। ज्ञान दर्शन मेरा परिचय है। यह कहलाता है आत्मभूत लक्षण। और आपने क्या बनाया? अनात्मभूत लक्षण। भैया ! अपने अस्तित्व का भान करो, अपने स्वरूप अस्तित्व की पहचान करके, स्वयं के अस्तित्व आदि गुणों पर श्रद्धा करके अपने आत्मतत्त्व को जानकर के, उसमें लीन होने का उपाय, यह इष्टोपदेश है, ऐसा जानकर के शास्त्र के प्रति पूरा बहुमान रखो, और जो सुना, उसे बार–बार गुनों ऐसी मंगल भावनाओं के साथ।

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

–––––

30

ज्ञानी की अनासक्त बुद्धि

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्‌गला:।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा।।30।।

अन्वयार्थ – (**सर्वे अपि**) सभी (**पुद्‌गला:**) पुद्‌गल परमाणु (**मया मोहात्**) मैंने मोह से (**मुहु:**) बार–बार (**भुक्तोज्झिता**) भोगकर छोड़ दिये हैं अत: (**अद्य**) अब (**उच्छिष्टेषु**) जूठन के समान (**तेषु**) उन पुद्‌गलों में (**मम विज्ञस्य**) मुझ बुद्धिमान् की (**का स्पृहा**) अभिलाषा कैसे हो सकती है ?

प्रिय आत्मन्।

अठारह दोषों से रहित, विश्व तत्त्व के ज्ञाता कर्मरूपी पर्वतों के भेत्ता, वीतरागी सर्वज्ञ, हितोपदेशी, सच्चे देव के द्वारा भाषित, जिनवाणी का, श्रवण, ग्रहण, चिंतन, मनन प्रति समय असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा का कारण है। जिनवाणी का ऐसा प्रताप है, जो जीव अनादि से लेकर अनंतकाल तक कभी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं हुआ, कभी सम्यग्ज्ञान को प्राप्त नहीं हुआ। पुस्तकें अनंतों पढ़ी होगी, लेकिन जिनवाणी को नहीं पढ़ा होगा, गुरु अनंतों मिले होंगे, लेकिन निर्ग्रंथ गुरु नहीं मिले होंगे और भगवान अनंत बार मिले होंगे लेकिन जिनेन्द्र भगवान नहीं मिले होंगे।

प्रिय आत्मन्।

नर देह बहुत बार पायी होगी, लेकिन व्रत देह इसी भव में पाने का अवसर मिला, धन्य है, जिस जिनवाणी माँ की अनुकम्पा से, गुरु की कृपा से, प्रभु के वचनों को पाकर के

मैं आपके पास उपस्थित हूँ। हे जिनवाणी माँ! तू ऐसी कृपा सब पर वर्षा। **माँ का दुग्धपान संतान को बलवान बनाता है, जिनवाणी माँ का रसपान, इंशान को भगवान बनाता है,** यदि शरीर की ताकत कम होने लगे तो दूध पीना चाहिए और आत्मा की ताकत कम नजर आये, तो जिनवाणी माँ का रसपान करना चाहिए, ध्यान देना! माँ के दूध की ताकत और धाय के दूध की ताकत में अन्तर होता है। उसी तरह से सम्यग्ज्ञान में और लौकिक ज्ञान में अंतर होता है। भैया! डिब्बा बंद कितना भी दूध पी लो लेकिन उसमें वात्सल्य के विटामिन नहीं मिल सकते, उसी तरह लौकिक ज्ञान कितना भी पा लो, लेकिन आत्मकल्याण के विटामिन नहीं मिलेंगे। आओ हम अपनी जिनवाणी माँ की गोद मे बैठकर के अपनी जिनवाणी माँ के पास पूरे वात्सल्य और प्रेम से, जिनवाणी माँ से तत्त्व रसपान करें। इष्टोपदेश ग्रंथराज के माध्यम से इस सौभाग्य कि संधि को प्राप्त करें। जिनवाणी माँ ने मुझे बोध दिया, जन्म हुआ माँ ने मुझे बताया, यह माँ, यह पिता, यह मौसी, यह बुआ, यह दादी, यह नानी, यह दीदी, यह माँ ने बताया। एक माँ तो सिर्फ एक भव का परिचय करा पाती है। लेकिन जिनवाणी माँ पूर्व के अनंत जन्मों का परिचय करा देती हैं। माँ अंगुली पकड़ती है, तो गाँव की गलियों में घुमाती है, लेकिन जिनवणी माँ अंगुली पकड़ती है तो संसारपुर से निकाल कर मोक्षपुर कि ओर ले जाती है। माँ अपने स्थान पर बैठकर के दूरदर्शन दिखाती है, लेकिन जिनवाणी माँ अपने स्थान पर बैठकर के तीन लोक लोकालोक का दर्शन करा देती है। ऐसी परमपूज्य जिनवाणी माँ से मैंने कहा माँ पुद्गलों में, मेरा प्रेम क्यों जागता है? जब पुद्गल की पर्यायें हैं, जितने भी सुंदर असुंदर आकार है, यह सब पुद्गल की पर्याय हैं। रंग हो, रूप हो, आकार हो प्रकार हो पुद्गल के हैं, तो मेरा संदेह क्यों जागता है? जिनवाणी माँ बोलती है, कि मोह जनित अज्ञान से। माँ क्या उपाय है? बेटा! तू यह समझ कि ऐसे पुद्गल परमाणु जो तेरी दृष्टि में आज आ रहे हैं, ऐसे पुद्गल परमाणुओं को हे चैतन्य आत्मन्! तूने भव–भव में भोगा है, भैया ! ऐसे पुद्गल परमाणुओं को **भुक्तोज्झिता** भोगा और छोड़ा, जब जीवकाण्ड कि दृष्टि से देखते हैं, तो ग्रहीत वर्गणायें अग्रहीत वर्गणायें कुछ ग्रहीता–ग्रहीत वर्गणायें, जिन वर्गणाओं को मैंने ग्रहण कर लिया है, वह ग्रहीत वर्गणायें हैं। जिनको ग्रहण नहीं किया है, वह अग्रहीत वर्गणायें है और कुछ को ग्रहण भी किया है और

कुछ को ग्रहण नहीं किया। ऐसी ग्रहीता–ग्रहीत वर्गणायें। आचार्य कहते हैं, अनंत आकाश में आप जहाँ भी खड़े होंगे, वहीं पर वर्गणायें हैं। यह आकाश वर्गणाओं से प्रचुर मात्रा में भरा हुआ है, ऐसी अनंतानंत वर्गणायें है, जिन वर्गणाओं को तुमने कभी प्राप्त ही नहीं किया है और ऐसी भी अनंत वर्गणायें हैं, जिन वर्गणाओं को प्राप्त करके तूने अनंतों बार छोड़ दिया है। **भुक्तोज्झिता** भोगा–छोड़ा, **'मुहुर्मोहान्'** बार–बार भोगा और बार–बार छोड़ा, क्यों किस कारण से छोड़ा? किस करण से भोगा? वैराग्य से नहीं भोगा। वैराग्य से नहीं छोड़ा। आचार्य भगवन् कितनी पैनी बात बोल रहे है कि न तो वैराग्य से भोगा है, न वैराग्य से छोड़ा है, कैसा भोगा? **'मोहात्'** मोह भाव से ही भोगा है, और मोह भाव से ही छोड़ा है। जगत की वस्तु प्राप्त की तब भी मोह, यानी मोह भाव से छोड़ने का मतलब है, तुमने छोड़ा नहीं हैं, छूट गया। घर में रहते–रहते, मृत्यु हो गयी, घर छोड़ा था क्या? छूट गया। छोड़ा में नहीं आयेगा। अभी हम बॉम्बे में थे, वहाँ पर विशेषता किराये के मकान में रहने वाला, यदि नये मकान में रहने जाता वेदजी, तो क्या होता? वह दस लाख का भी फर्नीचर उसमें लगायेगा और जब वापसी निकलेगा तो क्या करेगा? वह फर्नीचर छोडके आयेगा और जो अगला किराये वाला आयेगा, उसको वह फर्नीचर निःशुल्क प्राप्त होगा। मैंने पूछा जब व्यक्ति यहां से जाता है, तो यह फर्नीचर साथ में क्यों नहीं ले जाता? बोले महाराज श्री जितने का लगा है, उसको निकलवाने में और उसके पश्चात् वहाँ फिटिंग करने में और यदि वहाँ पहले से लगा है, तो फिर। इसलिए निकलवाने में टूट जाता है । पहले लकड़ी के बनते थे अब कहीं से उपयोग कर लो, पत्थर का फर्नीचर है किचिन में तो क्या करोगे? तात्पर्य यह है, छोड़ा नहीं था वैसे बोलते कि कुछ दान दो तो नहीं देते, लेकिन यदि मकान बदलना पड़ रहा है तो उतना फर्नीचर वहीं छोड़ना पड़ेगा। बोरीवली मुंबई में एक सज्जन ने किराये का मकान लिया, महाराज श्री आहार सम्पन्न। आहार के अनंतर मैंने पूछा आपने तो कल ही मकान लिया है और यह सब फर्नीचर बोले महाराज श्री! इतना तो गिफ्ट में मिलता ही है, वह छोड़के गया, और मैं भी वहाँ छोड़के आया, लेकिन मोह, तात्पर्य यह है कि छोड़ना पड़ा है, छोड़ा नहीं था, **'मोहात्'** भोगा भी है, छोड़ा भी है, मेरे द्वारा किसके द्वारा **मया** तृतीया विभक्ति, मैंने अपने आप को भोगों का साधन बनाया, भोगों को नहीं भोगा, भोगों ने मुझको भोगा।

''भोगो न भुक्ता'' मैंने भोगों को नहीं भोगा, भोगों ने मुझको भोगा। मया मेरे द्वारा **सर्वेऽपि**, सभी प्रकार के **पुद्गला:** पुद्गल बार–बार मोह भाव से भोगे गये **'उच्छिता'** वमन किये गये। कुछ भी नया नहीं है, नये में प्रीति होती है। लेकिन यह तो विचार करो नया है क्या? राग कैसे घटे? मोह कैसे टूटे? मोह का शमन कैसे हो? इंद्रियों का दमन कैसे हो? उसकी विधि चल रही है। हे जीव! एक बार किसी ने खाया, वमन हो गया तो क्या उस वमन को पुनः खाया जायेगा? तो फिर **उच्छिष्टेषु**' उच्छिष्ट माने वमन और बहुवचन ऐसे वमन किये हुए पदार्थों में उल्टी किये हुए पदार्थों में, **अद्य** आज **मम** मेरे जैसे विज्ञ बुद्धिमान की क्या **स्पृहा** हो सकती हैं। अभिलाषा हो सकती है, यदि हम ज्ञानी हो चुके हैं तो फिर इन पदार्थों से मोह कैसा, पदार्थों की अभिलाषा कैसी? जो पदार्थ संसार बंधन में रखने वाले हैं, उन पदार्थों के प्रति मोह भाव कैसा? जम्बूस्वामी क्या हुआ? विवाह हो गया। चोर को पता चला इतना वैभव आ रहा है, रात में 500 चोरों के साथ सरदार ने योजना बना ली। आँगन में पूरा द्रव्य रखा था। स्वर्ण मुद्राओं से पेटियाँ पेक थी, माँ को धन की चिंता नहीं थी, माँ को बेटे की चिंता थी। बेटे का वचन था, संकल्प था मैं प्रातःकाल दीक्षा के लिए चला जाऊँगा। अब आप कहोंगे, जब जाना था, तो शादी क्योंकि? इसलिए क्यों कि पिता ने वचन दे दिया था, कि मेरे बेटे की शादी, आपकी बेटी से होगी। पुत्र को बाद में मालूम चला कि मेरी शादी तय हो गयी है। आज की विधि में और कल की विधि में इतना अंतर है, देखिए। साहित्य बताता है, कि समय कैसे बतलता है? पुत्र जम्बूस्वामी को मालूम नहीं और शादी तय हो गयी। क्यों कि कन्या का विवाह कन्या नहीं करती है, कन्या के पिता करते हैं, पुत्र का विवाह पुत्र नहीं करता, पिता करते हैं। यह हमारी भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा रही है और इसी पवित्र प्रतिष्ठा को कायम रखते हुए, पिता ने कहा–बेटा ! मेरे वचन का क्या होगा? मैं तो वचन दे चुका हूँ। पुत्र ने कहा–पिताजी, यदि आपने वचन दिया है, तो आपने शादी का ही वचन दिया है, आगे का तो नहीं दिया। बोले–हाँ बेटे मैंने आगे का नहीं दिया। तू मेरे वचन को आज निभाले जी पिताजी! आपके वचन को मैं निभालूँगा, लेकिन आप सूचना कर दीजिए, कि मेरे बेटे का संकल्प है, कि मेरी आज्ञा के पालन के लिए बेटा शादी तो कर लेगा, लेकिन दूसरे दिन, दीक्षा लेने के लिए वन में चला जायेगा। पिता को विश्वास था, मेरा बेटा

दृड़संकल्पी है, वह चला जायेगा पिता ने तत्काल समाचार भेज दिया। कन्या के पिता के पास, एक साथ आठ कन्याओं से विवाह था। समाचार पहुँचा, कन्या भी सत्कुल की थी, लेकिन फिर भी इतना तो सोचा–ऐसा तो सभी कह लेते हैं, लेकिन जो एक बार स्त्री कि कोमल भुजाओं मे पड़ जाते हैं। इसलिए अभी तो शादी होने दो, हम तो उसको एक ही रात में वश में कर लेंगे। अभी बिना चखे लड्डू का तिरस्कार वह कर रहा है, जब लड्डू खाये फिर तिरस्कार करे, तो जानेगे। ठीक, कुछ कन्यायें ऐसी भी थी। उन्होंने कहाँ यदि वह संन्यास लेंगे तो मैं भी संन्यास ले लूँगी। शादी हुई, सारी कन्याओं को पता है, यदि में , आज रात में पाली हार गयी, तो यह सुबह हम को छोड़के चल देंगे। हर तरह कि चेष्टा, हर तरह का प्रयत्न, हर तरह के हाव–भाव, विलास, विभ्रम के द्वारा वह सभी वधुयें, जम्बूस्वामी का चित्त द्रवित करने के लिए तैयार है। लेकिन जम्बूस्वामी जिस दृढ़ संकल्प के साथ जुटे हुए है, रात्रि के नो बजे से लेकर रात्रि के तीन बज चुके हैं, वह चोर देख रहा है, कि पलभर के लिए तो यह झपकी लगाले, कि मैं चोरी करूँ और माँ बार–बार आती कक्ष में क्या हो रहा है, खिड़की से ताकती चली जाती, कि मेरा बेटा सुबह चला न जाये, ऐसा सोचकर पीड़ा से पीड़ित है, जिसकी खिड़की से माँ ताकना चाहती थी, उसी खिड़की पर चोर खड़ा था। माँ ने पूछा तुम क्यों आये हो? माँ तुम जानती नहीं मैं चोर हूँ। मैं चोरी करने आया हूँ। आज तुम्हारे यहाँ इतना सब वैभव आया है, तो कुछ हिस्सा हम लोगों का भी तो बनता है। बेटा तुम्हें चोरी की आवश्यकता क्या है? यह सब तुम्हारा ही तो है। रात में क्यों ले जाना? दिन में ले जाओ। मैं तुम्हारी माँ हूँ न, मैंने बोल दिया न, ले जाओ, लेकिन मेरा एक काम कर दो। बोलो माँ क्या काम करना है? तुझे विश्वास तो है, कि मैंने बोल दिया कि यह धन तेरा है। हाँ माँ तुम जिनवचन को मानती हो, और मैं तुम्हारे वचन को प्रमाण मानता हूँ। बेटा एक काम कर, मेरा पुत्र सुबह वन को निकल जायेगा। इसलिए तू किसी भी प्रकार से मेरे पुत्र को समझा ले। आज ही तो शादी हुई है, उसको समझा कि संसार सुखमय है, इन वधुओं का त्याग न करें, माँ को सुख दे कुछ समय, फिर चला जाये। माँ में अवश्य जाता हूँ, और प्रयत्न करता हूँ। उसने दरवाजा खटखटाया। अंदर से दरवाजा खोल दिया गया। चोर ने कहा सामने आयी हुई थाली को छोड़कर के तुम भविष्य की कल्पना कर रहे हो, सामने जो

सुख है, उस सुख को तुम भोग नहीं रहे, और भविष्य के सुख के लिए वर्तमान के सुख का त्याग कर रहे हो। जम्बू यह ठीक नहीं है। जम्बू स्वामी बोलते हैं, एक बार किसी ने विष खाया। उसी समय पुण्य के योग से कोई वैद्य उसे मिल गया, और वैद्य की दवा के प्रयोग से उसके प्राण बच गये, बताइये। क्या उसे पुनः विष खान चाहिए? तो बताइये, मैंने भव–भव में इन भोगों को भोगा। क्या अब पुनः विष के समान इन भोगों में फिर पड़ जाऊँ? चोर कहता यह विष कैसे? देखिए! विष तो सिर्फ एक ही भव का नाश करता है, लेकिन यह विषय के विष भव–भव की साधना को नष्ट कर देते हैं। इस विषय में **अष्टपाहुड** में आठ–नौ कथायें है, जिसमें चोर जम्बू को समझाता है, और जम्बू चोर को समझाते हैं। चोर के कथन से जम्बू का चित्त विचलित नहीं हुआ, लेकिन जम्बू के उपदेश से चोर का चित्त विरक्त जरूर हो जाता है, और जम्बू स्वामी, जिस राह पर चले, चोर उस राह पर चल देते हैं, जम्बूस्वामी के साथ उन 500 चोरों की भी दीक्षा हो जाती है। यह है, चोर को ज्ञान हो गया कि मैं इन नश्वर पुद्गलों की पीछे इतना पाप कर रहा हूँ। मैं नाशवान पुद्गलों के पीछे डांका डाल रहा हूँ। मैंने इन पुद्गलों को कितनी बार भोगा है? कितनी बार छोड़ा है? ओ हो..........यह तो देखो, जो इन मुद्राओं का स्वामी है, उसके अंदर जरा सा भी मोह नहीं है। वह छोड़ने के लिए कह रहा, ले जाओ, ले जाओ, और मैं पापी उठाने तैयार, चोर को बोध ा हो जाता है, ये तो आखिर आत्मा, और आत्म बोध कब हो जाए, इसका कोई पता नहीं है, आखिर चोर भी दीक्षा ले लेते हैं।

प्रिय बंधुओ !

मोह के साथ भोगा, और छोड़ा भी तो मोह के साथ छोड़ा। क्या सार निकला? पुष्पडाल ने छोड़ना नहीं चाहा था, वह तो अपने मित्र मुनि की संगति में गया था। हँसी–हँसी में मित्र ने कह दिया गुरुदेव, यह दीक्षा लेने आया है, मित्रता गहरी थी, मना नहीं कर पाया, दीक्षा हो गयी, लेकिन मोह कहाँ लगा था? कानी स्त्री में, वारीषेण समझ गये, कि साधना में चित्त क्यों नहीं लग रहा हैं। क्योंकि चित्त जब अन्यत्र लग जाता है, तो फिर साधना में कैसे लगेगा? आखिर वारीषेण ने उसका उपाय भी खोज लिया, तीर्थंकर प्रभु के समवशरण से विहार करके वारीषेण स्वामी कहते हैं, पुष्पडाल, चलो कुछ समय नगर–नगर में प्रभावना

करेंगे, अंधा क्या चाहे? दो आँखें पुष्पडाल तो चाह ही रहा था कि एक बार देखतो आऊ। वारीषेण ने कहा एक काम करो। अपन इस दिशा में चलते हैं, पुष्पडाल का मन थोड़ा खिन्न हुआ। वारीषेण ने कहा मैं इस दिशा में जाता हूँ, तो पुष्पडाल ने कहा मैं इस दिशा में जाता हूँ। आप इस दिशा में चले जाओ। वारीषेण समझ गये, कि यह दिशा इसके घर की ओर जाती है, चलो कोई बात नहीं, वारीषेण स्वामी इस दिशा में चले गये। पुष्पडाल उस दिशा में चले गये। कुछ के बाद वारीषेण लौटकर शीघ्रता से आ गये, पुष्पडाल समझ रहे थे, वारीषेण विपरीत दिशा में निकल गया, लेकिन इधर, गाँव में प्रवेश के समय दोनों साथ हो गये। रानी चेलना को समाचार मिला। मेरा पुत्र असमय में नगर में आ रहा है। क्या कारण है? यह तो आहार की बेला भी नहीं है। लेकिन विश्वास था अपने बेटे पर, फिर भी परीक्षा, एक सोने का सिंहासन डाला, एक लकड़ी का सिंहासन डाला। वारीषेण तो लकड़ी के सिंहासन पर बैठे। पुष्पडाल, स्वर्ण सिंहासन पर माँ को संतोष हुआ कि मेरा बेटा संयमित है, लेकिन थोड़ा सा संतोष होते ही वारीषेण ने बोल दिया, माँ मेरी 32 रानियों को सश्रृंगार उपस्थित किया जाये। अब माँ क्या बोले? होगा कोई रहस्य, मैं क्या जानूँ? मैं नहीं भी बोलूँगी तो भी रानी दर्शन करने आयेगी ही। बोल दिया, समाचार पहुँच गया। 32 रानियाँ सम्मुख खड़ी हो गयी। पुष्पडाल देखो कौन पसंद है? मैंने इन 32 का त्याग किया है और मैं चाहता हूँ कि तुम स्वीकार कर लो। पुष्पडाल की आँखों से आँसूओं की धारा। यानी पुष्पडाल समझ गये कि वारीषेण मेरे मन के अभिप्राय को जान चुका है, और मेरी तो एक कानी स्त्री है, यह तो इतनी सुंदर–सुंदर रूपवति कन्याओं का त्याग करके वैराग्य को प्राप्त हुये हैं। धन्य हैं प्रभु! पुष्पडाल उठकर के वारीषेण के चरणों में नतमस्तक हो जाता है, प्रभु ! मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे तो अब निज आत्मा का स्वरूप चाहिए। 12 साल के बाद यह पहला दिन था कि पुष्पडाल का मोह टूटा। सुसंगति में आया, भले ही मोह12 साल बाद टूटा, टूटा तो। आखिर पुष्पडाल ने कल्याण कर ही लिया न, हमारा तो आज तक नहीं टूटा। हम उस पुष्पडाल पर हँस लेते हैं, कि वह कैसा था पुष्पडाल। लेकिन एक न एक दिन तत्त्वज्ञान प्राप्त करके पुष्पडाल का मोह टूट गया।

प्रिय बंधुओ!

यही बात यहाँ कह रहे हैं, **भुक्तोज्झिता** तूने कितनी बार भोग लिया, अब तो छोड़ क्या पर में आस लगाता है, वहीं पुद्गलों के सेवन का आनंद कब तक लेगा? कितने भव–भव में लिया है, तू जिस पुण्य से पिच्छी–कमण्डलु प्राप्त कर सकता था, जिस पुण्य से तू जिनवाणी प्राप्त कर सकता था, उस पुण्य को तूने पुद्गलों की प्राप्ति में लगा दिया। जो पुण्य तेरे रत्नत्रय के मार्ग में सहकारी होगा, उस पुण्य को तूने विषय भोग के मार्ग में नष्ट कर दिया। हुआ पुण्य ही नष्ट, और क्या हुआ? बोलो भाई ! जिस पाँच करोड़ का मकान बनाया है, उस पाँच करोड़ का एक भव्य मंदिर भी बना सकते थे। लेकिन विवाह के पहले मकान भी तो अच्छा चाहिए। भैया! किसलिए? सिर्फ पुद्गलों की संगति के लिए। आओ इतना गहरा चिंतना दे दिया इन्होंने, सिर्फ संकेत–संकेत देते जा रहे हैं। **मम** यदि ज्ञानी हो तो **स्पृहा।** कैसी? **स्पृहा :** है तो ज्ञानी कैसे? अरे, ज्ञानी हो तो नादानी कैसी? नादानी है तो ज्ञानी कैसे? भैया ! **का स्पृहा :** ये स्पृहा क्यों? यह अभिलाषा क्यों? यह आकांक्षा क्यों? जागो, त्यागो और भागो। जितने जल्दी जागोगे, उतने जल्दी त्यागोगे, जितने जल्दी त्यागोगे उतने जल्दी भागोगे।

❑❑❑

31

सभी अपना प्रभाव बढ़ाते हैं

कर्म कर्म हिताबन्धि, जीवोजीव हितस्पृहा।
स्वस्वप्रभाव भूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वांछति।।31।।

अन्वयार्थ – (**कर्म**) कर्म (**कर्म हिताबन्धि**) अपने हित रूप साथी कर्मों को ही बाँधता है तथा (**जीव:**) आत्मा (**जीवहितस्पृह:**) अपने आत्मा के हित की इच्छा करता है (**स्वस्व**) अपने–अपने (**प्रभाव भूयस्त्वे**) शक्तिशाली प्रभाव के होने पर (**को वा स्वार्थं**) कौन सा व्यक्ति अपना हित (**न वान्छति**) नहीं चाहता ?

भैया! अब क्या कहे तुमसे? महाराज चाहते तो हम भी यही है, लेकिन करे क्या भीतर में भाव ही नहीं होते? जब कभी साधुओं के पास बैठते हैं तो मन मे आता है, लेकिन ज्यों ही आप लोगों से दूर होते हैं और मन डाउन हो जाता है। क्यों? कर्म–कर्म का हित चाहता है, जीव–जीव का हित चाहता है। **स्व–स्व प्रभाव भूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वांछति।** आचार्य भगवन् ने कह दिया–भैया ! कर्म–कर्म का ही भला चाहेगा। पुद्गल–पुद्गल को ही जोड़ेगा। अच्छा यहाँ पानी रखा हो और नीचे पानी हो, वह पानी पानी की ओर जायेगा, नीचे पानी गया है, तो पानी की ओर जायेगा। तुम पियासे खड़े रहो, तुम्हारे पास नहीं आयेगा। अरे पानी ने इतना भी नहीं सोचा कि मैं ऊपर पियासा खड़ा हूँ, तो मेरे पास आ जाता, लेकिन नहीं आया। पानी–पानी की ओर गया, पानी उसी की ओर गया, उसी कि संगति किया न, मेरा भला तो नहीं किया न भैया! कर्म–कर्म का ही भला चाहता है, जीव अपना भला सोचता है कि मेरा भला हो जाये, कर्म कहता है कि मैं और ज्यादा मात्रा मे बँध जाऊ।

मैं और ज्यादा मात्रा में एकत्रित हो जाऊँ। यदि यह दीवाल चिकनी हो, तो इस दीवाल पर क्या होगा? परमाणु और ज्यादा चिपकेंगे। क्यों? उसमें चिपकाने की क्षमता है, उसी तरह कर्म–कर्म का हित करता है। जीव **स्व–स्व प्रभाव,** अब प्रभाव किसका है? यदि कर्म अपनी सत्ता में बैठा है, ये होती पद्धति। अभी देखा पिता मुख्यमंत्री तो बेटे को सांसद की टिकिट तो मिल ही गयी। क्यों भैया ! **स्व–स्व प्रभाव,** जिसका प्रभाव होता है, वह अपने के व्यक्ति को, उठा देता है। जब लोक में ऐसी स्थिति हैं, तो आचार्य कहते हैं। इसी तरह कर्म होता हैं, अशुभ कर्म के बेग आते हैं, तो वह अशुभ कि ओर ले जाते हैं। आत्मा पुरुषार्थ करे। आत्मा भला सोचता तो है, लेकिन शक्ति ज्यादा किसकी है? कर्म की भैया! अपन जो डेम बाँधते है, वह कब बांधते हैं? गर्मी के मौसम में कि वर्षात् के मौसम में? कब के लिए बाँधते हैं? गर्मी के लिए बांधते है कि वर्षा के लिए बाँधते हैं। बाँधते गर्मी में, वर्षा में पानी एकत्रित हो जाये और गर्मी के समय बाधते क्योंकि उस समय पानी नहीं है। उसी तरह जब कर्म का मंदोदय हो, आत्मा को बिल्कुल दाव लगा के बैठना चाहिए कि कब कर्म का मंदोदय पड़े और कब में छलांग लगा लू। समझना। यह तो पुरुषार्थधीन है, भैया! चारित्र कौनसी प्रकृति के उदय से मिलता है? चारित्र ऐसा कौनसा पुण्य कर्म का उदय है, जिस पुण्यकर्म के उदय से, चारित्र मिलता हो? बोलो। 148 कर्म प्रकृतियों में 68 कर्म प्रकृतियाँ पुण्य प्रकृतियाँ है। उसमें एक पुण्य प्रकृति को नाम बता दो, जिस पुण्य प्रकृति के उदय से चारित्र मिलता है, कषाय का उदय ही अचारित्र है। लेकिन चारित्र पुण्य उदय से नहीं मिलता है, चारित्र तो क्षय–क्षयोपशम, उपशम से मिलता है, यह उपशम क्षय, क्षयोपशम, आत्मा के पुरुषार्थ कि देन है, भाग्य की देन नहीं है। यह बात अलग है कि इस भव में तुम्हें निसर्गज सम्यग्दर्शन दे दे, जिसे तुम देवाधीन कह दो, लेकिन पुरुषार्थ तो करना पड़ेगा। आज के प्रवचन में आप बैठे हो, कोई कहे आपने क्या मेहनत की? तो आप कहना मैंने आज देखने–सुनने का पुरुषार्थ किया। कैसा पुरुषार्थ? वह महान पुरुषार्थ जिसको मैंने अनंतकाल में कहीं और कभी नहीं किया था, वह पुरुषार्थ करके में आ रहा हूँ। इससे बड़ा पुरुषार्थशाली कौन होगा? जिसके पुरुषार्थ करने से सम्यग्दर्शन का हीरा मिल जाये। जिस पुरुषार्थ के बल पर चारित्र मिल जाये। यह रत्नत्रय के रत्न जिसे पुरुषार्थ से मिल जाते हों, क्या वह

देशना सुनना पुरुषार्थ नहीं है। प्रश्न–पुण्य के फल क्या–क्या हैं? तीर्थंकर गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव आदि पुण्य के फल हैं। ध. पु.1 । इसलिए अमृतचन्द्र स्वामी ने कहा पुरुषार्थसिद्धि उपाय, आत्मा की सिद्धि का उपाय, तो फिर स्वार्थ, स्व माने अपना अर्थ माने प्रयोजन, अपना प्रयोजन कौन नहीं चाहता है? आत्मा भी तो अपना प्रयोजन चाहता है और पर–पर का प्रयोजन चाहते हैं। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से संसार के क्रिया कलाप करने की इच्छायें जागती हैं। आचार्य कहते हैं–कर्म का उदय ही कर्म का नाच है, यह कर्म का नृत्य ही संसार में भ्रमण कराता है, यदि कर्ता की बलबत्ता रहेगी तो तू कर्म रूप नाचेगा। यदि तेरे स्वभाव की बलबत्ता होगी, तो कर्म तेरे रूप नाचेगा, उदाहरण दिया कि–हे भगवन्! नाव को नाविक ले जाता है, कि नाव नाविक को ले जाती है? भैया! नाव में मैं बैठा हूँ, कई बार धसान नदी को मैने पार किया है। मैं छोटा था अन्य गाँव जाता था, वहाँ से व्यापार के बाद लौटता था, तो नाव के रास्ते से आता था। तब मैंने कहा–जब अपने को सामने जाना है तो नाव को ऐसे घुमाके क्यों ले जा रहे आप? मैंने मल्लाह को बोल दिया, नाव वाले को मैंने बोल दिया। खेवटिया को, तो बोला–आप मौराजी के पण्डित जी हा। मैंने कहा–हाँ मैं पंडित जी हूँ। तो बोले–मैं इसका पण्डित हूँ। मैंने कहा कैसे पण्डित? देखो यहाँ पानी का वेग ज्यादा है पानी के ज्यादा वेग में, ले जाओगे तो नाव धारा में बह जायेगी। इसलिए जहाँ–जहाँ पानी धीमा–धीमा बह रहा है, वहाँ से मैं नाव को ले जाऊँगा और तुमको किनारे पर पहुँचा दूँगा। अर्थात् नाविक भी नाव के अनुरूप चलता है, और नाव नाविक के अनुरूप चलती है। हाँ निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है, उसी तरह संसारी जीव कभी कर्म का नाच–नचता है, जब कर्म कि बहुलता होती है, तब नाच नचता है, और ज्ञान स्वभाव की बहुलता आ जाये, ज्ञान स्वभाव का जो लक्ष्य साध ले, तो कैसा भी कर्म उदय में आता है, आने दो, जाता है, जाने दो। ज्ञाता–दृष्टा बने रहो, इस साम्य स्थिति का निर्माण हो जाता हैं भैया ! ऐसी पवित्र स्थिति को, जब आचार्य कहते हैं– फिर क्या करे जीव? भैया! अब स्वार्थ कर्म भी चाहता है, कर्म का उदय जीव को प्रेरित करता है, उस समय जानना चाहिए कि यह कर्म का उदय, अपना भला चाह रहा है, मेरी आत्मा का भला नहीं चाह रहा है। ज्ञान आत्मा का भला चाहता है, कर्म–कर्म का भला चाहता है। उस समय भेदविज्ञान करना पड़ता है।

समझदारी उस क्षण में है कि इस समय, मुझे कर्म प्रेरित कर रहा है, कि ज्ञान मुझे प्रेरित कर रहा है। ध्यान देना! यह प्रेरणा कौन दे रहा है? कभी आप स्टेशन पर बैठे हो और आपके हाथ में बैग हो, भरा हुआ, उस समय, आपके पास कोई व्यक्ति आये पूँछे आप को कहां जाना है? आप बता दें अथवा आप धोके से पूछ ले कि भाई वहाँ का रास्ता कौनसा है? तो व्यक्ति कहेगा चलो मेरे साथ मैं एक बार बीना स्टेशन पर था, मेरी उम्र करीब 16–17 साल होगी, लेकिन योग्यता अपनी दृष्टि से थी, बैग भरा हुआ था, मैंने कुछ देखा नहीं था, उसने कहा कहाँ जाना? मैंने कहा मुझे सागर जाना है, तो उसने कहा अंदर से आप टिकिट ले लो। अब देखिए विचार, दो रूप चलते हैं। कर्म अलग बोलेगा, और आत्मा अलग बोलेगी। यानी ज्ञान अलग बोलेगा। उसका लक्ष्य यह था कि आप टिकिट लेने के बहाने कुछ निकालेंगे, और मैंने कहा–मेरी टिकिट लेने कोई दूसरा बस है। बस वह पार हो गया तात्पर्य यह है कि अपना ज्ञान अपन को जाग्रति देता है, कर्म–कर्म की ओर प्रेरित करता और ज्ञान–ज्ञान की ओर प्रेरित करें। उस क्षण में आप समझो कि प्रेरणा कौन दे रहा है? सुनो दो लाइन, दशरथ जी एड्वोकेट छतरपुर मंत्री रह चुके, वह बोले–

गहरे अंतर हृदय से ध्वनि निकलत है एक।,
जिसे समझ नहीं सकते, जग प्राणी प्रत्येक।।

आत्मा की आवाज को समझने के लिए विशुद्धि चाहिए कि तेरी अन्तरात्मा क्या बोल रही है? मैं औरंगाबाद में था, तपस्वी सम्राट के दर्शन करने के लिए, पिता जी अपने बेटे को लेके आये, सपरिवार थे। सन्मति सागर जी ने पिताजी से कहा यह उठा लो। उन्होंने एक श्रीफल उठाया, बच्चे से कहा तुम भी उठालो, पिताजी बोले, यह नहीं वह उठा लो तो सन्मतिसागरजी बोले नहीं, तुम मत कहो उसे अपने पुण्य के अनुसार उठाने दो, तुमने अपने पुण्य का उठा लिया न, अब उसे अपने पुण्य का उठाने दो। अब उठा लिए, सन्मति सागर जी ने कहा लाओ तुम अपने पुण्य का हम को दे दो, तुम अपने पुण्य का हमको दे दो दोनों को सन्मति सागरजी ने बजाया, बजाने के बाद कहा–देखो, पिजाजी तुम से ज्यादा पुण्य तुम्हारे बेटे का है, देखो उसका श्री फल ज्यादा अच्छा बज रहा है। तुम चिंता क्यों करते हो, तुम बेटे की चिंता करने आये हो, यह बताओ, इस बेटे कि उम्र आज 18 साल

है। 18 साल में क्या तुम्हारे पिताजी भी तुम्हें हमारे पास लाये थे? बोले–नहीं महाराज, मैंने तो आज 40 साल में पहली बार दर्शन पाये है किसी साधु के वह तो 18 साल में पा गया, इसका तो तुम से ज्यादा पुण्य है। भैया! आत्मा–आत्मा का भला चाहता है, ऐसा चिंतन अपन को करना चाहिए।

❑❑❑

32

आत्मोपकारी बनने का उपदेश

परोपकृति मुत्सृज्य, स्वोपकार परो भव।
उपकुर्वन् परस्याज्ञो, दृश्यमानस्य लोकवत्।।32।।

अन्वयार्थ – (**परोपकृति**) पर के उपकार करने को (**उत्सृज्य**) त्याग करके (**स्वोपकार**) अपने उपकार करने में (**पर:भव**) तत्पर हो जा (**दृश्यमानस्य**) दिखाई देने वाले (**लोकवत्**) इस जगत् की तरह (**अज्ञ:**) अज्ञानी जीव (**परस्य**) पर का (**उपकुर्वन्**) उपकार करता हुआ पाया जाता है।

प्रिय आत्मन्!

निरंतर हमारे अंदर पर का उपकार करने में समय बीत जाता है। लोकोपकार के कार्यों में समय बीत जाता है या फिर अन्य कार्यों मे समय बीत जाता है, ऐसे समय में आचार्य हमको बहुत सावधान करते हैं, भैया ! अन्य धर्म की व्याख्या में बहुत अन्तर है, अन्य धर्म में, परोपकार को महानधर्म माना गया है। अठारह पुराणों का सार परोपकार कहा गया है। लेकिन इष्टोपदेश कहता है, परोपकार छोड़ो, **'स्वोपकार परो भव'** यदि आत्मा का कल्याण करना है, तो यह परोपकार भी छोड़ो, कहाँ तुम लगे हो प्रपंच में, किस किसका कल्याण करोगे, किस किसके लिए रोओगे? भैया! किस किसके लिए हँसू, किस किसके लिए रोऊँ, ध्यान बड़ी अच्छी चीज है। भैया ! परोपकार को छोड़ो, परोपकार के कारण कितने पाप करना पड़ते हैं, सुनो ! चाणक्य के पिता ने सिर्फ अपने बेटे का एक दाँत इसलिए तुड़वा दिया था, कि मेरा बेटा राजा न बने, जब ज्योतिषी ने कहा–आपका बेटा राजा बनेगा, तो ज्योतिषी से पूछा–आपने कैसे जाना? बोले इसके पूरे दाँत है और इसके दाँत कि दंतावलि

बता रही है कि आप का बेटा राजा बनेगा। अच्छा तो यह क्यों नहीं बनेगा? इसका एक दाँत कम है, यह नहीं बनेगा। ठीक उसने तत्काल अपने बेटे का एक दाँत तोड़ दिया कि मुझे अपने बेटे को राजा नहीं बनाना। क्योंकि चाणक्य के पिता ने इष्टोपदेश सीखा था, कि राजा बनेगा तो कितने तरह के पाप होते हैं, कितने प्रकार के पापों कि अनुमोदना एक राजा को करना होती है। जनता–परोपकार कहती है, और शास्त्र पापाचार कहते हैं, तालाब खोदना क्या है? जनता से पूछे–परोपकार। तालाब की सफाई करना? जनता कहती ख्याति मिलेगी भी मिलेगी कीर्ति। इस विधायक के काल में तालाब की सफाई हो गयी। इस विधायक के काल में यह कार्य सम्पन्न हो रहा। तालाब की सफाई में मालूम लाखों मछली अकाल मे मर गयी। बिल्डिंग बनी, नींव में कितने जीव मर गये, यह तो सब ने कह दिया भैया ! विकाश हो रहा है, और बरसात में भी बिल्डिंगों का निर्माण चल रहा है। एक–एक पिलर में कितने मेंढ़क दबके मर गये, गड्ढे में पानी और मटेरियल जायेगा। मेंढक का क्या होगा? साँप कितने मरेंगे? जबकि जैन वास्तु विद्या यह बोलती है, निर्माण का कार्य दीपावली के बाद शुरु होता है, ग्रीष्मकाल तक चलता है। आठ माह निर्माण के होते हैं, बरसात में निर्माण का कोई कार्य नहीं होता। तात्पर्य यह है, इसलिए त्याग। जगत में जिसे परोपकार कहा जाता है, उसे आगम और सिद्धांत पापाचार कहता है। जगत में राजनीति को श्रेष्ठ माना जाता है। यहाँ इस राजनीति को विकथा मानके त्याग कर दिया जाता है। भैया ! आपकी दृष्टि भिन्न है। भैया ! इनका प्रश्न है आदिनाथ भगवान ने असि, मसि कृषि का उपदेश दिया तो पाप का उपदेश दिया? उन्होंने उपदेश पाप का नहीं उन्होंने उपदेश आजीविका का दिया था। जीवन कैसे जीना है, आपका जीवन कैसे चले? इसलिए उपदेश दिया था, और गृहस्थावस्था में उपदेश दिया था। ध्यान देना ! पाप तो वहाँ हुआ था आदिनाथ से, जिस समय उन्होंने मुसीका बाँधने को कहा था, उन्होंने अंतराय डाला, तो उसी भव में मुनिदशा में उनको भी भोगना पड़ा, भैया ! इसलिए कहा है। बारह चक्रवर्ती हुए जिनमें दो नरक चले गये, दो स्वर्ग चले गये, आठ मोक्ष गए, क्यों? क्योंकि चक्रवर्ती होकर के तुम जितना पाप कर सकते हो, यदि तुमने दीक्षा नहीं ली, तो फिर कहाँ जाओगे? नरक के सिवा कोई रास्ता ही नहीं है। स्वर्ग भी वह गये जिन्होंने दीक्षा ली, कम तप कर पाये तो स्वर्ग गये, और पूरा तप कर लिया तो

मोक्ष चले गये। परोपकार इसलिए लौकिक परोपकार और अलौकिक परोपकार दोनों को समझना पड़ेगा हम साधुओं की चर्या कराते हैं।, यह अलौकिक परोपकार हैं। उन्होंने कहा **'अनुग्रहार्थम् स्वस्याति सर्गोदानं'** अनुग्रह के लिए, उपकार करने के लिए साधु मोक्षमार्ग पर चले यह तो उपकार है, यह समझना यह है उपकार, लेकिन जगत में मेरी प्रसिद्धि हो जाये, मुझे फिर बोट मिल जाये, मैं फिर नेता बन जाऊँ। मेरी कुर्सी न छूट जाये। भैया ! इस तत्त्व को समझना, परोपकार और पापाचार, लौकिक परोपकार में भी पापाचार निहित होता है, इसलिए राजा को सबसे ज्यादा पाप लगता है। यदि राजा प्रजा को धर्म में निष्ठ न कर पाये, धर्म में संलग्न न कर पाये, तो राजा भी पाप का तीव्र भागी हो जाता है।

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठः, पापे पापाः खले खालाः।

राजानमनुवर्त्न्ते, यथा राजा तथा प्रजाः।। (1) **व्यास प्रणीत**

यदि राजा धर्म निष्ठ होता है, तो प्रजा धर्म के अभिमुख होती है। पाप में पाप, दुर्जन में दुर्जन राजा सम होता है, तो प्रजा भी सम होती है। यह लोक नीति है, कि जैसा राजा होता है, वैसी प्रजा होती है। इस तत्त्व को समझना, इसलिए परोपकार को लोक धर्म तो कहा जा सकता है। लेकिन परोपकार को आत्मधर्म नहीं कहा जा सकता। भैया ! तुम बीच के धर्म की बात कर रहे न, आप लोक धर्म की बात कर रहे न, आप आत्म धर्म की बात कर रहे, आपके भीतर में व्यवहार धर्म चल रहा है, मैं लोक धर्म की बात कर रहा हूँ, अभी पूरा देश चुनाव के समर में खड़ा हुआ है, और चुनाव में सिर्फ यह राजनीति में लोक धर्म माना जाता है। निर्माण और विकास को परोपकार की डगर समझा जाता है।

प्रिय बंधुओ।

आगम में वह परोपकार गर्भित नहीं होगा। शास्त्रीय दृष्टि में परोपकार नहीं है, हाँ जिसे लोक की अपेक्षा धर्म माना जाता है, व्यवहार में दान, पूजा आदि व्यवहार धर्म है स्वरूप की आराधना आत्म धर्म है, निश्चय धर्म है। इस तरह से लोक धर्म को त्याग करके आत्म धर्म की ओर बढ़ें। देखो चक्रवर्ती मन्दिर बनवाता रहूँ या कुछ शालायें खुलवाता रहूँ या परोपकार के कार्य में लगा रहूँ। तो चक्रवर्ती मोक्ष नहीं पहुँचते। उन्होनें इन सब का परित्याग करके आत्म धर्म की ओर डूब गये। सब धन बेटा को देके चले गए, बेटा ! तुझे

जो करना हो सो करो। इस तरह से आप परिपूर्ण आनन्द की त्रिवेणी में स्नान कर रहे हैं, और हम इस परोपकार और आत्मोपकार को आगे–आगे देखते रहेंगे। क्योंकि आचार्य कहते हैं उपकार करना भी अयोग्ता कि निशानी है, जो उपकार हमें संसार में बाँधे रहे। अन्य मत में कहा, जब तक पुत्र का मुख न देख लो, तब तक मोक्ष नहीं होता है, और उपकार करने के बिना यह सृष्टि कैसे चलेगी? सृष्टि का तेरे ऊपर उपकार है, तू भी उपकार कर। ओ भैया, इस तरह अज्ञानता छायी है, उस अज्ञानता से बाहर निकलो अन्यथा पिता सोचता पुत्र पर उपकार करूँ, पुत्र सोचता है, माँ पर उपकार करूँ। कैसा परोपकार। कोई महावीर नहीं बन सकता। मेरे ऊपर माँ का उपकार है, तो कभी वैरागी नहीं बन सकते थे। ये वैरागी अध्यात्म कि दृष्टि में बैठे हो, तो आत्मा का लक्ष्य बनाओ।

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

❑❑❑

33

भेद विज्ञान का उपाय और फल

गुरूपदेशादभ्यासात्, संवित्ते: स्वपरांतरम्।
जानाति य: स जानाति, मोक्ष सौख्यं निरंतरम्।।33।।

अन्वयार्थ – (**य:**) जो मनुष्य (**गुरूपदेशात्**) गुरु के उपदेश से (**अभ्यासात्**) अभ्यास से तथा (**संवित्ते:**) आत्म–ज्ञान से (**स्वपरान्तरम्**) स्व और पर पदार्थों के अन्तर को (**जानाति**) जानता है (**स निरन्तरम्**) वह सदा (**मोक्ष–सौख्य**) मोक्ष के सुख को (**जानाति**) जानता है।

प्रिय आत्मन् !

श्रमण संस्कृति के प्रतिष्ठापक आचार्यों में श्रीमान कुन्दकुन्द स्वामी नामचीन प्रमुख आचार्यों में गणमान्य रूप से पूज्यपाद को प्राप्त हैं। श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने 3000 गाथाओं के माध्यम से उनके अध्यात्म समयसार, आगम विद्या को संपोषित किया ।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी इसी तथ्य को लेकर प्रस्तुत होते हैं। कुंदकुंद आचार्य जहाँ प्रौढ़ विद्वानों के आचार्य थे तो वही पूज्यपाद स्वामी बालकों को बोध कराने वाले बाल –गोपाल के लिए भेद विज्ञान की कला सिखाने वाले आचार्य थे। जिन्होंने इष्टोपदेश को जैन गीता के रूप में प्रस्तुत किया।

श्री पूज्यपाद का इष्टोपदेश अध्यात्म गीता है। मात्र 51 श्लोक में आत्म तत्त्व को परोसने वाले प्रत्येक बालक, बालिका को इष्टोपदेश कंठस्थ कर यानि बालगोपाल में अध्यात्म की शिक्षा को भर देने वाले इष्टोपदेश जीवन के प्रारंभ में अध्यात्म की आधार शिला स्थापित करने वाला इष्टोपदेश है। सरलता से संक्षेप शैली में समझने वालों के लिए

इष्टोपदेश है।

कुंदकुंद स्वामी के 400 साल बाद पूज्यपाद स्वामी हुए जिन्होंने कुंदकुंद स्वामी को आत्मसात् किया था लक्षणाचार्य के रूप में प्रसिद्ध हुए आज उन्ही पूज्यपाद स्वामी की इष्टोपदेश की गाथा क्रमांक 33 हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। जहाँ पर भेद विज्ञान का कौशल प्रदान किया है। भेद विज्ञान के लिए तीन मूलभूत आवश्यकताओं को दर्शाया है। भेद विज्ञान के लिए तीन अनिवार्य आवश्यकताएँ प्रस्तुत की हैं।

गुरूपदेशादभ्यासात् संवित्ते: स्वपरांतरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्ष सौख्यं निरंतरम्।।33।।

मोक्ष होता है मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का। मोक्ष 14वें गुणस्थान के बाहर होता है कि भीतर होता है? क्या बचा किसका मोक्ष होगा? फिर 14 के बाद क्या होगा? किसका मोक्ष होगा। अध्ययन सागर जी किस चीज का मोक्ष? मोक्ष के लिए बचा क्या ? पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व का। मिथ्यात्व कहाँ छूटा पहले गुणस्थान में, अविरति मोक्ष, प्रमाद का मोक्ष। मिथ्यात्व से मुक्ति हुई तो आत्मा मुनिराज बना, प्रमाद से मुक्ति हुई तो 7वें गुणस्थान अप्रमत्त में आ गया, कषाय से मुक्ति हुइ तो आत्मा उपशांत मोह ग्यारहवें गुणस्थान में पँहुच गया। याने चार प्रकार से मोक्ष तो हो चुका अब मोक्ष बाकी रह गया योग का, योग का मोक्ष हुआ, अयोग केवली में पहुँचा। अब अयोग केवली में पहुंचते ही अब क्या रह गया था जो कर्मो की 85 प्रकृतियों का हटना ही तो मोक्ष है। इसलिए चौदहवें गुणस्थान के बाहर क्या है सिद्ध दशा है। तेरहवें गुणस्थान में भाव मोक्ष हो गया, द्रव्य मोक्ष 14वें गुणस्थान में होता है।

इस तथ्य को समझिये कि मोक्ष होना किसका है कर्म का, होना किसको है जीव को। टूटना, छूटना मुञ्च् धातु छूटने के अर्थ में क्या छूटा मिथ्यात्व छूटा पहला मोक्ष, अविरति छूटी दूसरा मोक्ष, प्रमाद छटा तीसरा मोक्ष, कषाय छूटी चौथा मोक्ष, योग छूटा पांचवा मोक्ष।

संपूर्ण कर्म प्रकृतियों के छूटने का समय मोक्ष का है। दोनो में भेद नहीं है। जो समय सूरज के उगने का है वही समय अन्धकार भगने का है। दोनों में अन्तर बताओ पहले सूरज

का प्रकाश आया कि पहले अन्धकार भागा? दोनों एक साथ हुए। यह सहचर कारण एक ही समय होगा। यद्यपि सूरज का उगना कारण है, अंधकार का जाना कार्य है तोभी है सहचर। इसलिए पूर्वचर कारण, उत्तरचर कारण, सहचर कारण ये तीन तरह के कारण बताए परीक्षामुख ग्रंथ में। पूर्वचर कारण पहले ये होगा बाद में ये होगा। मंगलवार तभी आयेगा जब सोमवार निकल जाएगा। उत्तरचर कारण उसके होने पर ही यह होगा, सहचर दोनों एक साथ होगें। मेहुल भाई। आप श्री मान जी हैं आपकी शादी हो गई । कितने वर्ष हो गए 25 साल हो गए। आपकी पत्नी की उम्र कितनी है 25 साल राइट ये सहचर नियम है। कि माँ ओर बेटे का जन्म एक साथ होता है। पति और पत्नी का जन्म एक ही साथ होता है। एक ही दिन होता है, एक ही क्षण होता है। अब हम अध्यात्म की ओर चलते हैं।

गुरूपदेश भेद विज्ञान का पहला मंत्र है, पहला साधन, वीतरागी गुरु का जो उपदेश मिलता है वो भेद विज्ञान के लिए मिलता है। भेद भाव के लिए नहीं मिलता है। भेद भाव मिटाओ भेद विज्ञान बढ़ाओ। भेद भाव मिटाओ, भेद विज्ञान प्रगटाओ सर्वप्रथम उपाय क्या है? गुरूपदेशात् पंचमी विभक्ति का प्रयोग है जैसे हिमालयात् गंगा निकलती है। उपदेशात् भेद विज्ञानम् उपदेशात् स्वपरान्तरम्। उसी तरह गुरू के उपदेश से भेद विज्ञान प्रगट होता है।

आज तक जितने जीव सिद्ध हुए हैं इसी भेद विज्ञान के बल से सिद्ध हुए हैं। और आगे जो सिद्ध होंगे वे भी भेद विज्ञान बल से सिद्ध होंगे इसलिए भेद विज्ञान की इतनी चर्चा करना अनिवार्य है।

आत्मा का संवेदन पहला उपाय है गुरु का उपदेश। दूसरा उपाय, अभ्यासात् गुरु ने जो उपदेश दे दिया आपने अभ्यास नहीं किया तो आप सफल नही होगें। इसलिए दूसरा उपाय है अभ्यासात् चित्त में श्रद्धान होता है और अभ्यास से सम्यग्ज्ञान होता है। जितना अभ्यास होगा उतना सम्यग्ज्ञान होगा। अभ्यास ही व्यक्ति को परिपूर्ण बनाता है। आइये अभ्यास आप किस चीज का कर रहे हैं

सामायिक क्या है। एक अभ्यास है? पूज्यवर शिक्षाव्रत किसे कहते है? जो मुनि बनने की शिक्षा देते हैं वह अभ्यास है। उपवास करना अभ्यास है। मुनि होने का। सामायिक

अभ्यास है मुनि बनने का। आप लोग कहेंगें महराज जी ये बुंदेलखंड के साधु क्यों बन जाते हैं क्योंकि पहले से शिक्षाव्रत धारण किये रहते हैं, मुनि बनने की शिक्षा पहले से। राजकुमार जी आपसे छोटी उम्र में महाराज ने शिक्षाव्रत ले लिए थे तब तो ये मुनि बन पाए। गुरुउपदेश, अभ्यासात्, आपका प्रतिदिन का अभ्यास है, सामायिक मुनि दशा का अभ्यास है, प्रोषधोपवास मुनि दशा का अभ्यास है।

प्यारे बंधुओ!

जिनसे घर माँही कछु न बनो, उनसे वनमाँही कहु न बनें। जो घर में साधना नहीं कर पाया वो संघ में क्या साधना करेगा? जो घर में वैरागी नहीं रह पाया, वो संघ में क्या वैरागी रहेगा। ऐसा भी सर्वथा भी नहीं मानना क्योकि घर में वो निमित्त नहीं मिलते जो संघ में निमित्त मिलते हैं। क्योंकि अंजन चोर भी मुनि बनकर निरंजन बन गया।

अभ्यासात्। अभ्यास से स्व पर का अन्तर हो जाता है। अभ्यास करिये, अभ्यास करिये। प्रतिदिन की सामायिक एक अभ्यास है। प्रतिदिन का प्रतिक्रमण एक अभ्यास है। अभ्यास परफेक्ट बनाता है। आचार्य विशुद्ध सागर जी महाराज 9वीं कक्षा के विद्यार्थी रहे लेकिन पढ़ना कभी छोड़ा नहीं, हम उस दिशा में नहीं गए। एक ही शिक्षा मिली थी जिस गाँव में जाना नहीं उस गाँव का किलोमीटर नहीं पूछना। उसी तरह से हमारी जब दिशा ही बदल गई तो हमने पढ़ाई छोड़ दी और इस तरह से पढ़ाई की कि हमारी दिशा ही बदल गई विशुद्ध सागर जी 9वीं क्लास के विद्यार्थी होने के बाद भी कुलपति विद्वानों के अध्यक्ष बनकर पढ़ा रहे हैं। समवशरण के अध्यक्ष बन करके पढ़ा रहे हैं।

प्यारे बन्धुओ!

ये सब क्या है देश के वरिष्ठ विद्वान और वरिष्ठ सी.ए., इंजीनियर समत्व सागर जी महाराज अमेरिका से रिटर्न होकर आये और दीक्षा ली है। तो आचार्य कहते हैं अभ्यास आपको परफेक्ट बनाता है। अभ्यास अच्छा करना चाहिए। आप कितना पढ़े ये महत्त्वपूर्ण नहीं है आपको कितना पढ़ना है यह महत्त्वपूर्ण है। आपके क्षयोपशम और समर्पण को देखकर के सिर्फ क्षयोपशम देख लिया इसका क्षयोपशम अच्छा है अब ये जिस क्षेत्र में

जोड़ देगा अपने क्षयोपशम को उस क्षेत्र में सफल हो जायेगा। चाहे माला बनाने में लगाएं, चाहे चित्रकारी बनाने में लगा ले, प्यारे बन्धुओ अभ्यास अच्छा, गहन अभ्यास, अभी उपासकाध्ययन चल रहा है। आज मैंने सुभव सागर जी को सुबह से कहा बेटा, तुम्हे मैं कल दीक्षा की बधाई नहीं दे पाया। बोले महाराज आपने आशीर्वाद दे दिया इससे बड़ी और क्या बधाई होती है। मैंने कहा बेटा मुझे बहुत कुछ बोलना था आपके विषय में, गुरुदेव आपकी आँखो में हमारे प्रति प्रेम है जब आपकी आँखें बोल रही है तो मुख से बोलने की जरूरत क्या है आपको। प्यारे बन्धुओ!

एक व्यक्ति दूसरो से प्रशंसा सुनना चाहता है सोचता है कि गुरुजी मुख से बोलें और एक चाहता है हमारे गुरु की आंखों में हमारे लिए प्रेम रहे। गुरु उपदेश पहला, अभ्यास दूसरा, गुरु ने जैसा उपदेश दिया। इस शरीर रूपी पड़ोसी के लिए 6 महीने के लिए पहले अलग तो कर, अयि कथमपि मृत्वा, अरे किसी भी तरह, जैसे बने वैसे, जीके, मरके, रचके पचके, जैसे बने वैसे इस शरीर रूपी पड़ोसी के लिए अलग तो कर दे अपना मत मान, अलग कर दे, मतलब अपना मत मान, तू आत्मा का विचार करके 6 महिने के लिए अभ्यास कर फिर देख तुझे तेरी आत्मा का अनुभव होता या नही। अनन्तानुबंधी टूट जाएगी 6 महीने में और आत्मा का अनुभव होगा कि नहीं होगा।

अब देखिए तीसरी बात आ रही है वह क्या है संवित्ती, स्वसंवेदन, ठीक है गुरु का उपदेश मिल गया आपने अभ्यास कर लिया, अभ्यास के बाद अनुभव करने बैठे की नहीं बैठे, अभ्यास से ज्यादा महत्वपूर्ण होता है संवेदन करना, निज आत्मा का संवेदन करना, आत्मा अखण्ड है। छोटा, बडा आत्मा कितना है? कहाँ है?

स्वदेह परिमाणों अपने शरीर प्रमाण आत्मा है। माँ तुमने शिशु को चुंबन किया शिशु का माथा चूमा, माथा चूमा तो तुम्हे आनन्द कहाँ आया। जब हमने शिशु का माथा चूमा तो आनन्द कहाँ आया बोलो? अखण्ड आत्मा है इसी की सिद्धि कर रहा हूँ कि आत्मा अखण्ड है, शिशु का माथा चूमने पर सर्व आत्म प्रदेशों में आनन्द की अनुभूति हुई क्योंकि आत्मा अखण्ड थी। क्लीयर हो गया आत्मा अखण्ड है इसी तत्त्व को समझना है आत्मा अखण्ड है।

गुरुपदेशात् अभ्यासात् संवित्ति संवेदन निज आत्मा का संवदेन पर संवेदन से हटकर के आत्मा का संवदेन यदि तीन बातें होती है तो आत्मा क्या करती है–

जानाति यः स जानाति, स्व पर के अन्तर को जानता है। मैं आत्मा हूँ शरीर पर है, पुद्गल द्रव्य पर है, जीव द्रव्य निज है मेरा जीव द्रव्य ही मेरा है जो इस बात को जानता है, वही मोक्ष सुख को हमेशा जानता है।

प्रिय बन्धुओ

मोक्ष सुख को कौन जान पाता है इस बात को हमने यहाँ दर्शाया है। इसलिए मोक्ष सुख को जानने के लिए अभी मोक्ष नहीं जाना है मोक्ष यहीं प्राप्त करना है। मोक्ष जाया नहीं जाता, मोक्ष किया जाता है। मोक्ष कैसे जाया जाता है मिथ्यात्व से छूटा जाता है, अविरति से छूटा जाता है, प्रमाद से छूटा जाता है, कषाय से छूटा जाता है, योग से छूटा जाता है, कर्मो से छूटा जाता है यही मोक्ष है।

प्यारे बन्धुओ!

इस रहस्य को, इस तथ्य को और इस सत्य को आप स्वीकार करियेगा, क्लीयर हुआ! मोक्ष सुख को जानो। हम श्रावक हैं अभी भी कुछ तो छोड़ सकते हैं, जो छूटा उसका सुख, जितना पाप छूटा उतना सुख, जितनी कषाय छूटी उतना चारित्र, जितना अज्ञान छूटा, उतना ज्ञान, जितनी अश्रद्धा छूटी उतनी श्रद्धा का सुख। याने अपने ही अवगुणों को छोड़कर अपने गुणों का अनुभव। **अपने भीतर, अपना सुख। अपने भीतर अपना सुख, बाहर से आता है दुख।**

जब हम विभाव में जाते है तो बाहर में जाते हैं। और बाहर में जाकर लाते दु:ख हैं। प्रायः करके होता यही है अग्रिम गाथा आती है तीन उपाय और बता रहे आपको कि आत्मा का गुरु कौन है? आत्मा ही आत्मा का गुरु है। क्यो गुरु है उसका है– सकारण समाधान देते हैं श्लोक चौंतीस में–:

❑❑❑

34

निजात्मा ही गुरु है

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वत:।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वा, दात्मैव गुरुरात्मन: ।।34।।

अन्वयार्थ – (**स्वस्मिन्**) अपने में ही (**सत्**); प्रशस्त (**मोक्ष सुख की**) (**अभिलाषित्वात्**) अभिलाषा करने से (**अभीष्ट**)`अपने प्रिय पदार्थ का (**ज्ञापकत्वत:**) जनाने वाला होने से तथा (**स्वयं हित**) अपने आप अपने हित में (**प्रयोक्तृत्वात्**) प्रवृत्त होने से (**आत्मा एव**) आत्मा ही (**आत्मन: गुरु:**) अपना गुरु है।

स्वस्मिन्– अपने आप में **सद्अभिलाषा–प्रशस्त** अभिलाषा। आत्म कल्याण की अभिलाषा किसमें उत्पन्न होती है? आत्मा में। आपको अपना भला करने की भावना किसमें उत्पन्न हुई है ? आत्मा में। तो आत्मा आपका पहला गुरु है। मेरा आत्मा मेरा गुरु क्योंकि मेरी आत्मा ने भले की सोची है। गुरु ने बाद में भला किया है। मैंने दीक्षा की भावना पहले की कल्याण की भावना जागी है, बाद में गुरुने कल्याणमार्ग दिया है। अत: मैं ही मेरा गुरु स्वस्मिन् सद्अभिलाषा–जिसके अन्दर अच्छी अभिलाषा जगी उसकी आत्मा गुरु है लेकिन जिसके अन्दर अच्छी अभिलाषा नहीं जागी उसकी आत्मा गुरु नहीं है।

दूसरी बात–**अशीष्टज्ञापकत्वत:**–अभीष्ट का ज्ञापक होने से जो आपके लिए इष्ट है उसके लिए ज्ञान भी आत्मा ही करा रहा है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का ज्ञान भी कौन करा रहा है आत्मा ही करा रहा है। और तीसरी बात स्वयं हितप्रयोक्तृत्वा–अपने हित से जोड़ने वाला मेरा ही आत्मा है। कर्म तो कर्म से जोड़ने वाला है। क्योंकि **कर्म कर्म हिता बन्धि जीवो जीव हितस्पृह:**– जीव जीव का हित चाहता है कर्म कर्म का भला चाहता

है। स्वयं हित–आत्मा के हित का प्रयोग करने वाला, आत्मो को हित से जोड़ने वाला कौन है आत्मा ही है। अतः आत्मा ही आत्मा का गुरु है।

❑❑❑

35

निमित्त सहायक मात्र है

नाज्ञोविज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्।।35।।

अन्वयार्थ—गुरु आदि के उपदेश से (**अज्ञ:**) अज्ञानी (**विज्ञत्वं**) ज्ञान दशा को (**न आयाति**) प्राप्त नहीं होता और (**विज्ञ:**) ज्ञानी (अज्ञत्वं) अज्ञानता को (**न ऋच्छति**) प्राप्त नहीं होता है (**अन्य:**) अन्य अध्यापक, गुरु आदि (**तु**) तो (**ज्ञान प्राप्ति में**) (**गते:**) चलने में (**धर्मास्तिकायवत्**) धर्मास्तिकाय की तरह (**निमित्तमात्रम्**) केवल सहायक मात्र हैं।

सबसे पहले स्वस्मिन् अभिलाषा—अपने भलाई की भावना कौन करता है? मैं अपना गुरु, प्रत्येक इंसान को हमेशा अपना ज्यादा सोचना है। आज अध्यात्म पोषक तत्त्व की बात कर रहे हैं। आप राजनीति के क्षेत्र में हैं। प्रजा के भले में आपका बहुत समय जाता है, और प्रजा के हित का आप चिन्तन करते हैं। इसलिए आचार्य कह रहे है कि अपना भला आप सोचें, प्रजा के भले में समय निकाले बहुत अच्छी बात हैं लेकिन उससे भी बेहतर है कि अपना भला सोचें, क्योंकि साहित्य में 9 रस होते हैं 9 रस में 9वाँ जो रस है वो शान्त रस है। शान्त रस कब मिलता है सब कुछ करने के बाद जब व्यक्ति कृतकृत्य दशा का अनुभव करता है तब शान्त रस में जीता है। जगत में जीता है तो अनुभव होता है कि मुझे ये करना चाहिए, और करना ही चाहिए यदि मानव बने हैं तो **परस्परोपग्रहो जीवानाम्** का सूत्र हम जैसे संत देते है कि एक दूसरे के उपकार में जीओ। गुरु शिष्य के उपकार में जीता है, स्वामी सेवक के उपकार में जीता है, राजा प्रजा के उपकार में जीता है ये परोपकार होता है इसके साथ जैसे व्यापारी साइड बिजनेस करता है उसी तरह नेता के लिए साइड में एक अपनी अध्यात्म की ज्योति जलाए रखना चाहिए। अध्यात्म की ज्योति मंद न पड़े भरत

चक्रवर्ती षट्खण्ड का स्वामी था सुना है कि उसके 96000 तो रानियाँ थीं, 18 करोड़ घोड़े, 84 लाख हाथी थे, और 32000 मुकुट बद्ध राजा जिसे प्रणाम करते थे, ऐसा भरत चक्रवर्ती भी अपने लिए समय निकालता था। ये हमेशा ध्यान रखना **सफलता के साथ शान्ति का अनुभव बहुत जरूरी है।** और व्यक्ति वही सफल होता है जो अपने आप में शान्ति में जीता है। प्रयत्न बाहर में और अनुभव भीतर में। हमें प्रयत्न बाहर में करना है प्रयत्न में कोई कसर नही छोड़ना है और भीतर का अध्यात्म का अनुभव रखना है।

व्यापारी दुकान के बाहर की चाबी तो नौकर को देता है पर तिजोरी की चाबी अपने पास रखता है। उसी तरह एक कुशल राजनेता प्रजा को निहारता है पर अपने स्वरूप को भूलकर के नहीं। प्यारे मित्रो! ये बोध हमेशा रखना अज्ञ विज्ञ नहीं होता। जड़ कभी चेतन नहीं होता। अज्ञ क्या है जड़, पुद्गल, पुद्गल कभी चेतन नही होता। और चेतन कभी जड़ नहीं होता। अज्ञान रहित क्या है पुद्गल है, पुद्गल कभी चेतन नहीं हो जाता जीव नहीं हो जाता। ये महल, अटारी गाड़ी मोटर ये सभी जड़ हैं ये कभी तेरे नहीं हैं न हुए है न होगें क्योंकि ये जड़ कभी चेतन होगा नहीं और चेतन कभी जड़ नहीं होगा।

कुंदकुंद स्वामी ने यही तो कहा है

यदि तेरा धन तुझ रूप हो जाये, या तू धनरूप हो जाये तो मान लूँगा कि ये तेरा धन है।

भरत जी आपके जेब मे एक सिक्का या नोट है। वो आपका होगा दिखाओ, तो है कि नहीं, दिखाओ तो कितने नोट हैं! 200 का नोट है। भरत जी का कहना है कि ये मेरा नोट है। सच है कि नही हैं।, अब ये नोट से पूछ कर बताओ। जितना हम नोट को अपना कह रहे हैं, उतना नोट से तो पूछ लो तुम नोट को चाहते, नोट तुम्हें चाहता कि नहीं? बोलो नहीं चाहता।

जिस गाड़ी में बैठकर आये उससे पूछो? वो गाड़ी भी तुम्हारी है वो तुमको चाहती की नहीं। जिस बंगले में रहते उस बंगले से पूछो, बंगले को तुम चाहते तुम अपना कहते, पर वो तुम्हे अपना मानता कि नहीं तो प्रिय बन्धुओ! ये एक तरफा प्रेम हो रहा है कैसा एकतरफा प्रेम चल रहा है। एकतरफा प्रेम कब तक सफल होगा। क्यों

तुम कह रहे नोट मेरा है, बंगला मेरा है, गाड़ी मेरी है पर वो तो कहने तैयार नहीं है इसलिए एकतरफा प्रेम ज्यादा नहीं चलता है टूट ही जाता है इसलिए, ये नोट गाड़ी, बंगला ये सब छूट ही जाता है। इसलिए एक नीतिगत पुरुष को संसार में राजा बनके नहीं राज ऋषि बनकर जीना चाहिए।

संसार में राज्य ऋषि बनकर जीना चाहिए। और राज्यऋषि वही बन पाता है जो धर्म ऋषि से जुड़ कर चलता है। हमेशा पर की भलाई के मैदान में उतर करके इतना ज्यादा मत सोच लेना कि दूसरा कोई जब तुम्हारी बात न माने तुम्हे संकलेश हो जाएँ। तनाव लेकर कार्य नहीं करना तन्मय होकर कार्य करना है। चिन्ताएँ लेकर कार्य नहीं करना है चिन्तामणि बनकर कार्य करना है।

प्यारे बन्धुओ!

आये हो पहली बार आये हो मेरे पास लेकिन पहली बार आने पर भी हमें उतना देना होता है जो आपके समग्र जीवन में काम आये। दुनिया में जो कोई न दे पाये क्योंकि प्रजा तुमसे लेगी देगी नहीं। पर साधु तुम्हें वो तत्त्व देगा जो तत्त्व तुम्हे शांति की अनुभूति देगा।

जीवन संघर्ष और उत्कर्ष का मैदान है फूलों की सेज नहीं है। और जिसने तपती दोपहरी में पसीना बहाया है वही शाम की छांव का आनन्द लेता है।

एक राजनीतिक व्यक्ति के सफल जीवन की यात्रा के लिए सबसे पहले आवश्यक रहता है कि वह मद और मात्सर्य से दूर रहता है। कभी किसी के पतन की नहीं सोचता है जैसे हमारे गौशालकर जी उनकी ये भावना नहीं कि कोई हार जाये ये भावना है कि मैं विजय प्राप्त करूँ। आप दूसरे को पराजित करने के लिए नहीं खड़े किये गये आप स्वयं में विजय प्राप्त करने के लिए खड़े किए गये।

बस जब व्यक्ति एक लक्ष्य बना लेता है कि मुझे भला करना है मैं निमित्त्त मात्र हूँ मैं सम्बोधन दे रहा हूँ मेरे सम्बोधन का इस चेतन आत्माओं पर तो प्रभाव पड़ेगा। इस जड़ चश्मे पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस माइक से ये अत्यन्त निकट से बोल रहा हूँ पर इस पर मेरे बोलने का कोई असर नही पड़ रहा क्यों? क्योकि ये जड़ है। पुद्गल मेरी बात नहीं

मानेगा। इसी तरह मित्र याद रखना संसार में हम कितना भी वशीकरण करें पर सारी प्रजा हमारी बात मानले ये जरूरी नहीं। मात्र हम एक लक्ष्य बनाकर के चलते हैं कि हम अपने भीतर में जंग की भलाई की बात सोचते हैं तो हमारा भला होता है।

यदि हम तिलक लगाने के लिए चन्दन पीसते हैं तो शीतलता हमें मिलती है और हमारे हाथ शोभित होते हैं। जब हम किसी के माथे पर हल्दी का तिलक लगाते हैं। तब हम दूसरे का माथा सुशोभित करते हैं उसके पहले हमारे हाथ सुशोभित हो जाते हैं। जब हम दूसरे के उपकार की सोचते हैं तो हमारा उपकार जरूर हो जाता है।

जब कोई व्यक्ति गुरु के पास जाता है। मतलब वह प्रभु से मिलने जा रहा है। क्योंकि वह इस जगत में जिसने गुरु और प्रभु को अपने पास बिठा लिया है उसके निर्णय का आधार बदल जाता है। आपको मालूम आपकी बेटी की माँ बिन्दी क्यों लगाती है? बताइये आप बता दीजिए बिन्दी क्यों लगाती है? और कहाँ लगाती है?

अब मैं बताऊँ सुनो! यह आज्ञा चक्र है, इस आज्ञाचक्र पर पति की आज्ञा शिरोधार्य है। इसकी सूचक बिन्दी पत्नी अपने माथे के आज्ञा चक्र पर लगाती है। बिन्दी ऊपर नहीं चलेगी, बिन्दी नीचे नही चलेगी बिन्दी कहाँ, आज्ञा चक्र पर। ये आज्ञा चक्र जीवन के आखरी घड़ी तक चलता रहता है। जब समाधि या मृत्यु के निकट कोई होता है तब उसके आज्ञा चक्र पर हाथ रखते हैं यदि आज्ञा चक्र बराबर चल रहा है मतलब अभी और जियेगा, और जियेगा, लेकिन ज्यों ही समय निकट आता है आज्ञा चक्र मन्द होता जाता है। याने मेरे विचारों पर अधिकार मेरे पति का, आज्ञा मेरे पति की चलने वाली उसी तरह आचार्य कहते हैं जब शिष्य गुरु के पास आता है तो माथा गुरु चरणों में रखता है, गुरु चरणों का जल गन्धोदक माथे से लगाता है, यानि मेरे जीवन में आज्ञा गुरु की चलेगी। **मेरा माथा गुरु की गाथा के अनुरूप चलेगा।**

पणतीससोलछ्प्पण चदुदुगमेगं च जवहज्झाएह।
परमेटिठ वाचयाणं अण्णं च गुरुवएसेण।।49।।

गुरु का उपदेश जो होगा वह मैं करूँगा, जो बोलेंगे वह मे सुनूँगा। प्यारे बन्धुओं! 35,16,6,5,4,2,1 अक्षर वाले मन्त्रों की जाप करो ध्यान करो ये परमेष्ठि वाचक मन्त्र हैं। अन्य मंत्र की आज्ञा अपने गुरु से लो सीखो–

36

निजात्म चिन्तन कौन, कैसे करे?

अभवच्चित्तविक्षेप, एकांते तत्त्वसंस्थितिः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः॥36॥

अन्वयार्थ – (**चित्त विक्षेपः**) जिसके चित्त में क्षोभ (**अभवत्**) नहीं है (**तत्त्वसंस्थितः**) तत्त्व विचार में स्थित है बुद्धि जिसकी (**योगी**) ऐसा योगी मुनि, (**एकान्ते**) निर्जन स्थान में (**अभियोगेन**) आलस्य त्यागकर सावधानी से, (**निजात्मनः**) अपनी आत्मा के (**तत्त्वं**) स्वरूप– चिन्तन का (अभ्यस्येत्) अभ्यास करे।

प्रिय आत्मन्।

चर्चा योगी की है। चर्चा आत्मा की है। चर्चा चर्या की है। चर्चा ज्ञान से ध्यान की है। चर्चा भेद से भेद विज्ञान की है। यह पावन चर्चा, स्वरूप का चिंतन सामने आ रहा है। हर कोई पाना चाहता है। आत्मा का ध्यान कर लो, मैं आत्मा का आनंद ले लूँ, मैं स्वरूप में लीन हो जाऊँ, मैं निज में ठहर जाऊँ।

प्रिय बंधुओ!

हिमालय पर बसना आसान हैं। लेकिन निज स्वरूप में बसना कठिन है। गंगा के किनारे, यमुना के किनारे ध्यान लगाना आसान है। लेकिन मन की आँखों को रोकना बहुत कठिन है। आचार्य क्या कहते हैं –

अभवच्चित्तविक्षेप, एकांते तत्त्वसंस्थितिः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः॥36॥(इष्टोपदेश)

प्यारी कारिका है 36वीं 3 और 6 जानते हो। इनका कभी योग बनता नहीं है। 36 का आंकड़ा है। शरीर में आत्मा में 36 का आंकड़ा है। सुनो ! एक पुद्गल है, एक जीव है। ध्यान दो–**'अभवच्चित्तविक्षेप'** चित्त में कोई विक्षेप न हो, यदि चित्त में विक्षेप है, चित्त में अन्य कोई विचार चल रहा है, चित्त में कोई भूत या भविष्य की कल्पना बैठी है, चित्त में कोई सुनहरा सपना देख रहे हो। भैया ! आप वर्तमान के आनंद से वंचित रह जाओगे। **साधना वर्तमान में होती है, कल्पना भविष्य में होती है।** सपना और साधना में बहुत अंतर है। सपना भूत का होता है, यह सपना भविष्य का होता है। वर्तमान में तो साधना होती है। यदि हम कोई कल्पनाओं का जाल बुन रहे हैं, तो आचार्य कहते हैं, वर्तमान में आप अपने से बहुत दूर हो। **''अभच्चित्तविक्षेप''** जिसके चित्त में **'विगत: क्षेपा:'** क्षेप से रहित है। सर आप एक काम करिए, ये पुस्तक है, और ये क्षेप है। ये आपने यहाँ क्षेपा लगा दिया, अब बताइये ये पुस्तक जब भी खोलेंगे, तब कहाँ खुलेगी? ये स्थिति हमारे चित्त की होती है। हम ये पुस्तक लेकर जा रहे हैं। मन्दिर चले जाये, दो दिन बाद चार दिन बाद और कहीं चले जाए। अन्य शहर चले जाये पुस्तक को हजार किलोमीटर घुमा लाये लेकिन जब भी आप पुस्तक खोलेंगे तो पेज कौनसा खुलेगा? वही खुलेगा क्योंकि क्षेप है। क्षेपण क्या है? रख क्या दिया है? आपने बीच में तो क्षेप लगा दिया न, अब इस क्षेप को हटा दीजिए और अब पुस्तक खोलिए वो पेज नहीं खुलेगा। क्यों नहीं खुलेगा? क्योंकि बीच में क्षेप ही नहीं है। इसी तरह मन में जब कोई राग द्वेष समा जाता है, तो आप कहीं भी घूम लीजिए और जब फिर ध्यान के लिए बैठेंगे तो सबसे पहले वही विकल्प आके टपकेगा। पुस्तक खोलके बैठिये वही पेज निकलेगा जहाँ पर क्षेपा लगाया और क्षेपा नहीं लगाया तो अब खोलिए पुस्तक। समझ गये क्लियर मेटर। तो हमने क्षेपा लगा दिया है। उनने क्या कहा था? हमारे लिए राग–द्वेष क्षेपा बन जाते हैं। आत्मा स्वयं एक पुस्तक है। जिसे मुझे पढ़ना है, लेकिन पुस्तक में क्षेपा पहुंच जाता है, जिस कारण, जहाँ पर मैंने छोड़ा था। जिस विकल्प के कारण मैं ध्यान से वंचित हुआ था, और ज्यों ही बैठा पहले, नम्बर वही विकल्प आया। आओ पुनः चले अगले चरण में विक्षेप रहित। अपमान किसका होता है? जिसके चित्त में विक्षेप होता है। अपमान किसका नहीं होता है? जिसके चित्त मे कोई विक्षेप ही नहीं है। ये आपके पास आये, ये सोचके नहीं आये कि हम धर्मसभा में जायेंगे, हमें सम्मान मिलेगा। ये सोचके नहीं आये

कि हम धर्मसभा में जायेंगे तो माला, श्रीफल से सत्कार होगा, तो आपको कोई अपमान लगेगा? नहीं लगेगा। सोचके ही नहीं आये कि महाराज हमको पहले नम्बर पर बुलायेंगे या हमको आशीर्वाद देंगे। नहीं हम ये सोचके नहीं आये, हम तो सिर्फ इतना ही सोचके आये थे, महाराज के दर्शन मिल जायें। प्रवचन के दो शब्द मिल जायें। जो हमें शीष महल से सिद्ध महल ले जाये। भैया **न क्षेपो** अपमान किसको?

अपमानादयस्तस्य, विक्षेपो यस्य चेतसः।
नापमानादयस्तस्य, न क्षेपो यस्य चेतसः॥38॥ (समाधितंत्र)

जिसके चित्त में विक्षेप है वह अपमान पहले से रख के लाया। अल्प शब्दों में दो मित्रों का एक पार्टी में जाना हुआ। मित्र ने कहा – मित्र मेरे साथ पार्टी में चलो। चलता हूँ। वहाँ क्या मिलेगा? जो मैं खाऊँगा, वह तुम्हें खिलाऊँगा। लेकिन उसके मन में आया शायद कुछ न मिला तो? क्या हो गया यह? क्षेप। वह प्रतिदिन जो भोजन करता था, वह भोजन उसने नाश्ते के लिए रख लिया। डब्बा तो था नहीं, तो उसने अपने ही मुख में थोड़ा सा रख लिया गया। एक मित्र के साथ दूसरा मित्र, एक ही जगह पर एक ही भोजन ले रहे हैं, एक ही रसपान कर रहे हैं लेकिन स्वाद दोनों को भिन्न–भिन्न आ रहा हैं। बहुत गंभीरता से सुनना! स्वाद दोनों को भिन्न–भिन्न आ रहा हैं, शिकायत कि आप तो कह रहे थे, बहुत अच्छा भोजन मिलेगा, यहाँ तो वही भोजन मिल रहा है, जो मैं वहाँ करता था। मित्र भ्रमर ने कहा नहीं, आप भूल में है। भ्रमर मित्र ने कहा मित्र गुबरीला जरा मुहँ तो खोलो, मुहँ खोला तो गोबर की डली मुख में थी। कहा कि इस डली को बाहर निकालो। डली बाहर निकाली। कहा इस फूल का फिर से रस लो, उसी फूल का फिर रस लिया, तब रस आया। तात्पर्य यह है, कि आप सभी मन्दिर आये, सबको एक सी देशना मिल रही हैं, लेकिन देशना के बीच में यदि विक्षेप लेके आ गये, हमारा सत्कार होगा कि नहीं? हमें आगे बिठायेंगे कि नहीं, हमें आयोजक पूछेंगे कि नहीं? आचार्य कह रहे हैं, ये तुम क्षेप लेके आ गये हो? और इस क्षेप के कारण तुम्हें प्रवचन का आनंद नहीं आयेगा। तुम्हारी स्थिति भौंरे की तरह नहीं, गुबरीला की तरह होगी। इसलिए जब भी हम धर्मसभा में आये, या आत्मा के ध्यान मे डूबें, तो पहले –

खाम्मामि सव्व–जीवाणं, सव्वे जीवा खामंतु मे।

मित्ती मे सव्व भूदेसु, वैरं मज्झं ण केण वि॥3॥ (श्र. प्र.)

ये चार बातें मन का हर विकल्प नष्ट कर देती हैं। आपके मन में कितना भी तनाव हो, कितना भी टेंशन हो, एक बार मेरे पास शिकायत आयी, कि ये हमको परेशान करते हैं। मैंने कहा–आप एक काम करिये, **आपके मेरे ऊपर अनंत भव के अनंत उपकार हैं, इसलिए उन उपकारों के बदले, मैं आपके अपराध को क्षमा करता हूँ।** यदि ये चिंतन हमारे अंदर आ जाये, तो बताओं, तनाव दूर होने में कितनी देर लगेगी। **तनाव तन्मय नहीं होने देगा। चिंता चिन्मय नहीं होने देगी।** भैया! तत्त्व को निहारो, विक्षेप आ जाये तो वर्तमान का आनंद नहीं आ पाता। आपने दाल खायी, दाल खाते–खाते बीच में यदि एक कंकड़ आ जाये, तो क्या आनंद आता है? एक कंकर पूरा मजा किरकिरा कर देता है। आचार्य कहते हैं, यदि तुम्हें ध्यान करना है तो पहले राग–द्वेष के ये दो कंकड़ हटा दो। दाल–चावल के कंकड़ तो तुम हटा देते हो, लेकिन तुम्हारें चित्त की चेतना में जो, राग–द्वेष के कंकड़ हैं, जो तुम्हारे ध्यान और भजन में बाधक बन रहे हैं। भोजन के कंकड़ का शोधन तो हमने कर लिया, लेकिन भजन के कंकड़ का शोधन किया कि नहीं? बोलो। भजन में मन क्यों नहीं लग रहा? राग–द्वेष के कंकड़ के कारण। क्रोध, मान, माया, लोभ के कंकड़, हास्य, रति, अरति, शोक, भय जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुष, वेद, नपुंसक वेद के कंकड़, जब हमारे भजन, ध्यान मे गिर जाते हैं, तो फिर मजा नहीं आता है। दाल तो अच्छी है, स्वाद तो बढ़िया है, लेकिन कंकड़ आ जाये तो फिर दाल के स्वाद को कोई नहीं देखता है। भैया ! ये शहर के लोग है, अधिक दाम देकर के वस्तु लेते हैं। माल क्वालिटी का लेते हैं, भले 15 का गेहूँ 25 में दो, लें लेंगे। लेकिन उसमें एक कंकड़ नहीं होना चाहिए। गांव का आदमी सोचेगा, 25 का क्यों ले जब 15 का मिलता है। ये जानते हैं, कि 25 का लेंगे पर एक कंकड़ न हो। यदि 10 रुपये अधिक लगते हैं, तो ये 10 रुपये हमारे 10 हजार को बचायेंगे। आप बहुत अच्छी आहार की तैयारी कर ले, लेकिन वह कंकर यदि आ जाये, तो पूरे आहार का रस बेकार हो जायेगा। इसलिए आचार्य कहते हैं, पहले उस कंकड़ को अलग करो। आप क्या करते हैं? गेहूँ शोधते हैं। धोते भी हैं, शोधते भी हैं, भोजन की इतनी तैयारी होती है। आचार्य कहते हैं– भजन की भी इतनी तैयारी, आत्मा के बीच में कंकर, समझ में आ गया पूरा बहुत बढ़िया प्रमेय है। आचार्य पूज्यपाद को अनुभव था, **'अभवच्'** जिसके चित्त में

राग–द्वेष का विकार नहीं आया, क्षोभ नहीं आया, क्षेप नहीं आया। अब कहाँ ठहरे हो? ध्यान देना ! पानी जब तक चंचल होता हैं, तब तक मैला होता हैं। चंचल पानी मैला होता है और वही पानी जब स्थिर हो जाता है, तो मैल नीचे बैठ जाता है। गुरु ने कहा शिष्य जाओ उस गड्डे से पानी लेके आओ, शिष्य गया, देखा कि जानवर निकल रहे हैं, पानी गंदा है। आके बोल दिया, गुरुवर पानी गंदा हैं। दूसरे शिष्य से कहा अब तुम जाओ पानी लेके आओ। शिष्य के अंदर धैर्य था। शिष्य वहीं पर बैठ गया, जब मैं यहाँ बैठूँगा, तो जानवर नहीं आयेगा, जानवर नहीं आयेगा तो पानी हिलेगा नहीं। पानी स्थिर होगा, तो निर्मलता आयेगी। जब जल स्थिर होता है, तो जल में निर्मलता आती है, और चित्त स्थिर होता है, तो चित्त मे निर्मलता आती है। पानी स्थिर होता है तो पानी में निर्मलता आयेगी। जब प्राणी स्थिर होता है। तो प्राणी में निर्मलता और स्थिरता आती है। इसलिए चित्त को चंचल मत रखो। करो – **'एकांते तत्त्वसंस्थितः'** कहाँ ठहरना है। जमीन की स्थिरता की बात नहीं हैं, आसन स्थिर की बात नहीं हैं। तत्त्व में ठहरो। यदि कोई कितना भी बैठ न पाता हो, यदि बिल्कुल मन न लगता हो, ये बैठे, इनमें से किसी को भी दो पाँच लाख पकड़ा दो, और गिनने के लिए लगा दो। क्यों? भैया ! कुशलता से गिन लोगे कि नहीं? इतने स्थिर चित्त से गिन लेंगे कि कुछ पूछो ही नहीं। जो बोलते हैं, चित्त स्थिर नहीं होता है, लेकिन उन्हें जिस वस्तु के प्रति राग होता है, उसके प्रति तुम्हारा चित्त स्थिर होता है। तुम्हें आत्मा से स्नेह है ही नहीं। इसलिए आत्मा के प्रति चित्त स्थिर हो कैसे? होता है चित्त स्थिर। अभी कोई व्यक्ति आये, सर आपका पेमेंट लो और में जाता हूँ, ये है पूरे तत्काल आप कहेंगे दो मिनिट खड़े रहिए और जल्दी –जल्दी पूरे गिनेंगे कि नहीं? आयी स्थिरता। तो आपको जो प्रिय है, आपको जो पसंद है, पसंद का मतलब आप उसे चाह रहे हो, पसंद का दूसरा चरण है, उसकी प्राप्ति। पसंद पहला चरण है। दूसरा चरण है, प्राप्ति। इसलिए यदि आप मुझसे कह रहे है कि, महाराज आपको गुलाबजामुन पसंद है। पसंद का मतलब क्या हैं? भैया ! आप तो जानते हो, बटन ऑन कर देना तो इसका सैकेण्ड परिणाम क्या है? लट्टू चालू। पसंद का मतलब क्या है? प्राप्ति। आप इस तरह से नहीं कह पाये, तो इस तरह से कहा इसलिए आचार्य कहते हैं, जो आपको पसंद है, उसमें आपका मन लगेगा। अब स्वीकारिए कि आपको पसंद क्या हैं? तत्त्व पसंद है क्या? कि सिर्फ धन ही पसंद है। व्यापार पसंद है। लोग कहते

महाराज आप सामायिक में एक घंटे कैसे बैठ जाते हैं? तब मैं उनसे पूछता हूँ। आप दिपावली के दिन, रक्षाबंधन के दिन, दुकान में सोलह घंटे कैसे बैठ जाते? भैया ''जिसकी जिसमें लगन वह वाही में मगन'' आइये। **'तत्त्वसंस्थितः'** तत्त्व में ठहरा हुआ, सम्यक् प्रकार से ठहरा हुआ, समीचीन तरीके से ठहरा हुआ। वह भी कहाँ? अब यहाँ पर एकांत का तात्पर्य निर्जन वन की भी सूचना है। निराकुल स्थान की भी सूचना है। यदि दस साधु एक वर्ग के बैठे हैं, तो वह एकांत ही कहां जायेगा। यदि आप सौ श्रवक एक सभा में प्रवचन सुन रहे है, तो इसको एकांत ही कहा जायेगा। एकांत का मतलब अकेलापन नहीं है। एकांत का मतलब है, जहाँ आपके चित्त में, विक्षेप न आये, ऐसा स्थान और ऐसे व्यक्तियों से भिन्न रहना एकांत है। एकांत शब्द को सुनकर के अधिकांशतः लोग या तो मंदिर के शिखर के पीछे बैठ जायेंगे, या मन्दिर की वेदी के पीछे बैठ जायेंगे, या और कहीं अकेले बैठ जायेंगे। आचार्य कहते नहीं, एक धर्म वाले, एक नय वाले एक पद्धति वाले, एक रीति वाले, एक विचार वाले जहाँ बैठे वही तो एकांत है। आचार्य भगवन् यह भी कहते हैं– **अनंत ज्ञानियों का एक विचार हो सकता है, लेकिन एक अज्ञानी के अनंत विचार होते हैं।** एक अज्ञानी कभी एकांत में नहीं बैठ सकता, क्योंकि उसके भीतर असंख्यात विचार दौड़ते रहते हैं। ज्ञानी! सर्वज्ञ का चिंतन कर रहा है, तो वह तो एकांत में ही बैठा है। उसी धारा में विराजमान है, उसी स्वरूप में विराजमान है, आचार्य कहते हैं, इस एकांत को समझो, अन्यथा तुम अकेले दौड़ो, सब साधु यहां बैठे, एक साधु कोई छत पर बैठे, दूसरा साधु दूसरी छत पर। इसका नाम एकांत नहीं है। गुरुवर विरागसागर जी महाराज एक ही बात कहते हैं, समूह में रहना एकांत है। साधर्मियों का जो समूह है, साधर्मी के समूह में रहना एकांत है, और साधर्मी से दूर रहना, ये साधु का एकांत नहीं है। ये अध्यात्म का एकांत नहीं है, ये सिद्ध करता है कि तुम साधु समूह से दूर रहो, ये आपके कषाय का आवेग हो सकता है, साधना का प्रवेश नहीं, इसलिए समूह में, साधना करो। लेकिन समूह में 24 हजार शिष्य लुक छिपके अलग–अलग नहीं बैठते थे। भद्रबाहु स्वामी के साथ 12 हजार शिष्य चले। तो क्या बारह हजार कमरे देखेंगे? क्या बारह हजार गुफायें देखेंगे? नहीं, **बस एक चिंतन, एक लक्ष्य, एक लक्षण सबका ध्येय एक है, ध्यान एक है,** क्या भिन्नता, **'एकांते'** यही एकांत है। **'तत्त्वसंस्थितः'** और ठहरना किसमें? एकांत में तो अधिकरण बनेगा लेकिन तत्त्व में ठहरा

हुआ। तत्त्व में लीन हुआ, एकांत में जाकर के राग–द्वेष में लीन मत हो जाना, क्योंकि एकांत में ही पाप होता है। मन जितने जल्दी एकांत में भटकता है, अनादि का अभ्यासी मन एकांत में भटकता है। इसलिए एकांत से दूर रहना। भगवती आराधना में स्पष्ट लिखा, एकांत से दूर रहना। आगे आचार्य कहते हैं, फिर क्या करें? **'अभ्यस्येद'** अभ्यास करें **'अभियोगेन'** अभियोग सावधान, आलस्य त्याग। पूज्यपाद स्वामी ने लिखा, स्वाध्याय की विधि में आलस्य का त्याग करके, इसी तरह यहाँ कह रहे अभियोग,–'सावधान,। अभितः ये उपसर्ग है। योग सभी प्रकार के योग द्रव्य का, क्षेत्र का, काल का, भाव का, अभियोग शब्द का अर्थ है, पूर्ण सावधानी, आलस्य त्याग करके, ध्यान में लीन हो। ऐसा योगी निज आत्म तत्त्व को प्राप्त करें। निज आत्मा के तत्त्व को प्राप्त करने की विधि है। विक्षेप का त्याग इसलिए प्रथम सूत्र है। **'खम्मामि सव्व जीवाणं'** द्वितीय सूत्र है, **'सव्वे जीवा खमंतु में'** तीसरा सूत्र है, **'मित्ती मे सव्व भूदेसु'**, चौथा सूत्र है, **'वैरं मज्झं ण केण वि'** उसके बाद समता –

समता सर्व–भूतेषु, संयमः शुभ – भावना।
आर्त्त–रौद्र–परित्याग–स्तद्धि सामायिकं मतं॥5॥

ये प्यारे – प्यारे लक्षण गिनाये हैं, अब तुम्हारा प्रवेश द्वार खुलता है। क्षमा कि चाबी से, साधना का पहला द्वार खुलता है। इसलिए ये समझो कि तुम सामायिक में बैठ रहे हो, लेकिन जब तक तुमने क्षमा नहीं किया, तब तक तुम्हारे ह्रदय का द्वार बंद रहेगा। इसलिए साधुगण जब भी सामायिक करते हैं, 'खम्मामि' गोम्मटेश्वर से हमारा विहार हुआ। विहार होने के बाद पच्चीस किलोमीटर चलने के बाद भट्टारक चारू कीर्ति जी पधारे। करीब हमारे पास एक घंटा बैठे, तो सहज ही पूछ लिया–वहाँ तो आप मिल चुके थे, आपके पास इतना सब कार्य है, आप यहाँ पधारे। तो उन्होंने कहा। समूह के बीच में मिला और अभी स्वतंत्र आपसे मिला हूँ। तो क्या अंतर, बहुत से कपड़े एक साथ धोने के बाद अलग–अगल धोया जाता तो विशेष धुलता यह मिलना हमारी विशेष श्रद्धा है। ये स्वतंत्र में आके इसलिए मिला हूँ क्योंकि आप भी स्वतंत्र में साधना करते हैं। तब मैंने उनसे एक चर्चा की, कि आप सामायिक में क्या करते हो? तो उन्होंने बताया मैं सिर्फ –

खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूदेसु, वैरं मज्झं ण केण वि॥3॥(श्र.प्र.)

इन चार भावनाओं को मैं प्रतिदिन करता हूँ। सुबह की सामायिक मे एक ही सूत्र बोलता हूँ। क्योंकि क्षमावान ही अरिहंत बनता है, क्षमावान ही सिद्ध, क्षमावान ही सूरी बनता, क्षमावान ही आचार्य, उपाध्याय साधु बनता है। जो भी परमात्मा बनेगा वह क्षमावान ही बनेगा। इसलिए सबसे पहले अपने आप को क्षमा करना और क्षमा कराना। ये पहला सूत्र है और इस सूत्र को मैं प्रतिदिन 108 बार इसकी जाप करता हूँ। पूछा आप कौन से मंत्र का जाप करते हो? बोले, मैं इसी की जाप करता हूँ, मैं सबको क्षमा करता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा करें, मेरी सभी से मित्रता है, किसी से वैर नहीं है, इसी की जाप, मेरा यही णमोकार है। भैया ! सब जीवों की चिंता। आप विहार करते हैं, तो इसीलिए तो विहार करते हैं। नाना देशों में विहार करेंगे, किसका क्या विचार है? किसका क्या चिंतन है? तो आचार्य कहते हैं क्षेप को निकाल दो। क्षमा क्षेप को निकाल देती है। क्षमा कर दिया तो सामने वाले की बुराई याद नहीं आयेगी। बुराई याद नहीं आयेगी, तो आप अपना काम तरीके से कर लोगे और यदि क्षमा नहीं किया, तो आप काम करोगे, तो बीच–बीच में वही कंकड़ आयेगा। राग–द्वेष कोई भी विकल्प, कोई भी टेंशन, कोई भी तनाव, राग–द्वेषज भाव, राग–द्वेष से उत्पन्न हुआ भाव क्षेप, जो विघ्न डाले, ऐसा भाव विचार। तो ऐसे भाव विचार को पहले ही हटा दो। उसका तरीका क्या है? क्षमा की बुहारी लो, क्षेप के कचरे को अलग कर दो। क्षमा तो चारित्र की पर्याय है। ये क्या नहीं कर सकती? भैया ! तुम जानते तो हो, लेकिन क्या है? पहले उसे अशुभ से तो हटा दो, सारे अशुभ से हट जाओ, सब कुछ है समयसार में। शुभ में जाना भी क्षेप है। अशुभ में जाना तो अनंतगुना हानिकारक क्षेप है। समझना। तो जिससे धर्म ध्यान में बाधा आ रही, देखो भैया ! मैं उदाहरण से समझाऊँ, आप मैदान में बैठना चाहते हो, तो मैदान में बहुत बड़े–बड़े एवं छोटे–छोटे पत्थर पड़े हैं, मैदान की सफाई में आप सबसे पहले क्या करते हो? छोटे पत्थर को बीनोगे की बड़े पत्थर को हटाओगे। और बड़े पत्थर हट जाते तो आप क्या कहते सफाई हो गयी। भैया ! मैं एक उदाहरण दे रहा हूँ, सुनियेगा ध्यान से। ये कितने हैं? पाँच। इसके ऊपर पाँच लिखो। पाँच, पाँच, पाँच, पाँच, पाँच कुल संख्या कितनी हो गयी? इकाई, दहाई, सैंकड़ा, हजार, दस हजार। पचपन हजार पाँच सौ पचपन। महानुभाव जरा ध्यान से सुनना। अब पचपन हजार पाँच सौ पचपन, मुट्ठी मजबूत, ये पाँच है, मिथ्यात्व, अविरति प्रमाद, कषाय, योग, हमने इनकी मानक

संख्या पाँच–पाँच रखी, एक को इकाई माना, दूसरे को दहाई माना, तीसरे को सैंकड़ा ऐसा माना, अब देखिए। आप मुट्ठी दबाइये, अब मुट्ठी जब बंधी हो तो कसके पहले हम खोलने का जब प्रयास करते हैं, बताइये पाँच में से छोटे से छोटा बच्चा प्रयास करेगा, तो सबसे पहले ये छोटी अंगुलि से खोलेगा, बोलो खोलने का क्रम ये है कि नहीं? यदि आप ने पाँच में एक को भी खोल दिया। अब चलिए अपन एक खोल देते हैं। लगाओ ताकत खोलो, छिंगली खुल गयी। अब बताइये अब पचपन हजार पांच सौ पचपन में से एक अंक हटा दीजिए। अब क्या बचा? कितना बिल पावर गया? पचास हजार बिल पावर गया कि नहीं? मिथ्यात्व गया, पचार हजार बिल पावर की क्षमता बंध। हम पाँच हजार पाँच सौ पचपन बाद में दे देंगे। आपके पैसे मिल गये, अब बोलो ये क्या बोलेगे? बोलो आप क्या कहोगे अब तो ये नहीं, कहोगे नहीं मिले, उसी तरह जब मिथ्यात्व को तोड़कर जीव सम्यक्त्व में आता है, तो जयसेन आचार्य कह देते हैं, ये अबंधक है। क्योंकि सबसे बड़ी संसार भ्रमण की ताकत थी तो वह मिथ्यात्व की थी, और मिथ्यात्व उसका टूट गया। अब जिसने पचार हजार चुका दिये, क्या वह पांच हजार पांच सौ पचपन नहीं चुकायेगा? चुकायेगा। जिसका मिथ्यात्व टूट गया, उसकी अविरति भी टूटेगी, उसका प्रमाद भी टूटेगा, उसकी कषाय भी टूटेगी, उसका योग भी टूटेगा, समय लगेगा लेकिन टूटेगा। अब जिस व्यक्ति ने पचास हजार चुका दिये अब वह इतने पैसे के लिए रूकेगा क्या? समझ गये, इसलिए सबसे पहला शुभोपयोग का विकल्प नहीं है। सबसे पहला तो विक्षेप अशुभोपयोग का है। तीव्र राग द्वेष जो हमें अपनी साधना से हटा देता है। इस तत्त्व को पकड़ो पहले मिथ्यात्व हटाओ, यही व्यवहार है, यही व्यवस्था है। अब जिसने सम्यग्दर्शन पाने के बाद देशव्रत प्राप्त कर लिया हो, महाव्रत प्राप्त कर लिया हो, मिथ्यात्व और अविरति दोनों को त्याग कर दिया हो, अब तो उसे मोक्षमार्गी कहेंगे। अब तो भैया ! ये मोक्ष के आंगन में खेल रहा है, प्रत्यक्ष मोक्ष मार्ग है, ये लो, और आगे थोड़ा चल दे, यदि वह पाँच सौ और देते तो, अब तो जो क्षपक श्रेणी चढ़ रहा है, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, सातवें गुणस्थान में पहुँच गया प्रमाद का त्याग करके, क्षपक श्रेणी के सम्मुख हो गया। अब यदि पचपन में भी पचास और दे दे तो, अब बताओ क्या कहा जायेगा? मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय चार प्रत्ययों का त्याग कर चुके हैं, लेकिन योग बाकी है, तुम भगवान कह सकते हो, लेकिन सिद्धांत अभी भी संसारी कहेगा। अभी भी

संसारी है। तुम कहते परमात्मा, सिद्धांत कहेगा सकल परमात्मा, तुम कहोगे कर्म रहित, वह कहेगा सिर्फ घाति कर्म रहित, यानि कुछ शेष है, इसलिए योग पाँच अंक के बराबर रह गया, और जिसने पचपन हजार पाँच सौ पचास चुका दिये अब क्या वह पांच रुपये नहीं चुकायेगा? भैया ! बैंक का समय है, और बैंक में स्थिति ये बनती है, कि बीस पैसे जमा करने के लिए पचास रुपये खर्च करना पड़ते हैं। वेद्य जी साहब सामने बैठे, अच्छी तरह से जानते हैं, यदि बैंक में बीस पैसे, आप पर कर्ज में आ जाये, तो आपको ये नहीं कहा जायेगा कि आप कर्जदार नहीं हो, अब तुम वह बीस पैसे कहां से लाओ, कैसे लाओ? और जो आप लाते वह चलता नहीं। यह स्थिति एक जगह बनी थी, वो पैसे कैसे जमा हो? भैया ! पचास हो, पचहत्तर हो, जमा हो जाये लेकिन तिरेसठ पैसे, कैसे जमा हो? आखिरकार बैंक से, पुनः प्रपत्र लिया, भरा और भरने के पश्चात् जमा किये, और बैंक मे निवेदन किया, कि मुझे आपके बैंक के तिरेसठ पैसे देना है, कृपा आप अपने तिरेसठ पैसे, इस राशि में से जमा करके शेष मेरे नये खाते में जोड़ दें। क्योंकि वापिस मागोगे तो मिलेगा नहीं, इसलिए नये खाते मे जोड़ दें तो तात्पर्य ये है, कि इस तत्त्व को समझो। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग का त्याग करेंगे तो हम अपनी साधना में आगे बढ़ेंगे। आज इस प्रकार से इस तत्त्व में हमने 36वीं कारिका का विचार किया है।

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

————————

37 38

आत्मसंवित्ति की पहिचान

प्रिय आत्मन्।

दृश्यमान जगत में, अदृश्य को देखने वाला, विज्ञान यदि कोई है तो वह वीतराग विज्ञान है। जगत का विज्ञान जड़ को निहारता है। वीतराग विज्ञान जड़ और चेतन दोनों को निहारता है। महावीर का विज्ञान स्वरूपानुसंधान से उत्पन्न हुआ निज चेतना पर किये गये प्रयोगों पर निर्णीत हुआ विज्ञान, भेद विज्ञान के कौशल से प्रकट हुआ विज्ञान था।

इसलिए महावीर भगवान अध्यात्म जगत के परम वैज्ञानिक कहलाये, इन्होंने उस विज्ञान को जन्म नहीं दिया, जो किसी दूसरे के आँखों पर पहले प्रयोग किया जाये, जो किसी जानवर पर प्रयोग करके अपनाया जाये, भगवान महावीर ने उस विज्ञान को जन्म दिया, जिसको बारह साल तक अपनी चेतना में प्रयोग किया। आज हम ऐसे परम वैज्ञानिक अध्यात्म जगत के प्रस्तोता भगवान महावीर स्वामी के श्री चरणों में बैठकर के उनकी ही देशना के माध्यम से उनके पद चिन्हानुरागी आचार्य कुंदकुंद की देशना को आत्मसात करने वाले, आचार्य पूज्यपाद के देव के इष्टोपदेश की 37–38वीं कारिका को निहारते हैं, पहले वह पवित्र अमूल्य रत्न आपके सामने रख रहा हूँ –

यथायथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते, विषया: सुलभा अपि।।37।।

अन्वयार्थ –(**यथा–यथा**) ज्यों–ज्यों (**संवित्तौ**) अनुभूति में (**उत्तमं तत्त्वं**) उत्तम तत्त्व (**शुद्धात्म स्वरूप**) (**समायाति**) आता जाता है (**तथा तथा**) त्यों–त्यों (**सुलभा अपि**) सुलभता से प्राप्त हुए भी (**विषया:**) विषय भोग (**न रोचन्ते**) रुचते नहीं हैं।

आत्म–संवित्ति की पहिचान

यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति संवितौ तत्त्वमुत्तमम्॥38॥

अन्वयार्थ – (**यथा यथा**) ज्यों–ज्यों (**सुलभा**) सुलभ (**विषयाः अपि**) विषय भी (**न रोचन्ते**) आत्मा को रुचते नहीं हैं (**तथा तथा**) त्यों– त्यों (**संवित्तौ**) अनुभूति में (**उत्तमं तत्त्वं**) उत्तम तत्त्व शुद्धात्म स्वरूप का (**समायाति**) अनुभव होने लगता है।

आइये ये पावन क्षण जिसका चित्त क्षेप से रहित हुआ है, जिसने अपने आत्मा के धर्म को प्राप्त किया है, तत्त्व में जो ठहरा हुआ है, अत्यंत सावधान है। ऐसा योगी जगत में रहता है, पर जगत में रमता नहीं है। जगत उसे चाहता है, पर वह जगत को नहीं चाहता है। योगी को जगत चाहता है, पर योगी जगत को नहीं चाहता है। वह स्वयं मे रुचि होने से सम्यक्दृष्टि हुआ। स्वयं का ज्ञान करने वाला होने से, सम्यग्ज्ञानी हुआ और स्वयं में हित का प्रयोगी होने से, सम्यक्चारित्रवान हुआ। ऐसा निश्चय रत्नत्रय में परिणमन करता हुआ आत्मा, ही स्वयं का गुरु हुआ। आचार्य भगवान राग–द्वेष से उत्पन्न होने वाले विकल्प तनाव क्षोभ, क्षेप इनसे रहित अपने आप को लक्ष्य करके कहते हैं, जैसे – जैसे संवित्ती में संवेदन में, उत्तम तत्त्व आता है, एक महत्वपूर्ण बात यहाँ पर है कि 36वीं कारिका में योगी शब्द दिया है और योगी शब्द आने के बाद 37वीं कारिका में उत्तम तत्त्व आया है, यानी उत्तम तत्त्व का मतलब है, कि और कोई मध्यम तत्त्व भी होता होगा। जघन्य तत्त्व भी होता होगा। संवेदन में उत्तम तत्त्व आता है। कब? जब क्षोभ रहित हो, जब तत्त्व में ही रह जायेगा। संसार क्यों नहीं रुचता, जब संवेदन में निज आत्मा आ जाता है तो फिर संसार तथा **तथा न रोचंते** वैसे–वैसे संसार नहीं रुचता है। **विषयाः सुलभा अपि''** संसार के विषय सुलभ होने पर भी, नहीं रुच रहे। हमने जम्बूस्वामी को देखा। भव–भव का योगी, भव–भव का वैरागी आज विवाह हुआ। कल वन की ओर चला गया। क्यों नहीं रुचा संसार? क्योंकि संवेदन में आत्मा आ गया। जिसके निज अनुभव में आत्मा आ रहा हो, जिसकी अनुभूति में, निज आत्मा का उत्तम तत्त्व आ रहा हो, उसे संसार नहीं रुचेगा और संसार रुच रहा है। इसका मतलब है उत्तम तत्त्व अनुभव में, नहीं आ रहा। इस रहस्य को पकड़ने की बात है। हमें क्या रुच रहा है? यदि बाह्य जगत रुच रहा है, तो अंतर जगत आपकी पकड़ और अनुभूति के बाहर है, और यदि आपको

अंतर् जगत दिखता रहेगा, तो बाह्य जगत में आपको कोई स्नेह नहीं होगा।

प्रिय आत्मन् !

ये स्थिति है, जैसे–जैसे आत्मा में रुचि जागने लगती है। आत्म रुचि धीरे–धीरे अभ्यास से आती है। उदाहरण के तौर पर देखो, जब खेत बंजर पड़ा हो तो किसान कितने समय वहाँ ठहरेगा? ज्यादा नहीं ठहरेगा, और जब उसी बंजर खेत को उपजाऊ बना लेता है, और अच्छा बगीचा तैयार कर लेता है, उसमें फलदार वृक्ष लग जाते हैं, शीतल पानी वाला कुँआ होता है, छायादार वृक्ष होते हैं, ठण्डी–ठण्डी हवा होती है, तो फिर क्या करेगी? पूरी गर्मी खेत मे रहेगा। जब तक खेत उपजाऊ नहीं था, तब तक तो पल भर के लिए जाना भी कठिन लगता था, और जब उसी में सुंदर बाग हो गया, फलफूल आ गये, शीतल जल आ गया, तो फिर अब वहाँ ठहरता है। उसी तरह जब तक आत्मा का बोध नहीं है, तब तक आत्मा के पास जाओगे ही नहीं, तुम्हें पता ही न हो, कि जमीन मेरी है, तो उस जमीन पर क्यों खड़े होंगे, दूसरे की जमीन पर खड़े होने का क्या आनंद, और जब पता होता है, कि ये जमीन मेरी है, तो वहाँ खड़े भी होते हैं। उपजाऊ नहीं है तो उपजाऊ बनाते हैं, फिर वहाँ ठहरते हैं। उसी तरह ये बोध हो गया कि वह जमीन मेरी नहीं है, यह जमीन मेरी है, वह शरीर मेरा नहीं है, यह आत्मा मेरी है, तब क्या होगा? अब समय–श्रम–साधना तीनों कहाँ लक्ष्य बनाओ? आत्मा की ओर ही समय–आत्मा की ओर श्रम, आत्मा की साधना, आत्मा में उपयोग जायेगा, फिर अनुभव में क्या आयेगा? फिर अनुभव में आत्मा आयेगा। टार्च आपके हाथ में है, प्रकाश आप जिस ओर करेंगे उस ओर का पदार्थ दिखाई देता है। उसी तरह ज्ञान प्रकाश हमारे पास है, ज्ञान प्रकाश को हम बाहर का लक्ष्य बनाते हैं तो बाहर की वस्तु हमारे अनुभव में आती है। उसी ज्ञान प्रकाश को जब हम भीतर का लक्ष्य बनाते हैं, तो भीतर का आत्मा अनुभव में आता है। तब क्या होता है? यथा–यथा, जैसे–जैसे, जिस–जिस क्रम से संवेदन में उत्तम तत्त्व आता है, वैसे–वैसे सुलभ विषय भी नहीं रुचते हैं। क्या वारिषेण को सुलभ नही ंथा क्या? सुलभ था क्यो नहीं रुचे? क्योंकि आत्मा का संवेदन हुआ। भरतचक्रवर्ती को क्या सुलभ नहीं था? षट्खण्ड का वैभव सुलभ था। फिर क्यो नहीं रुचा? संवेदन में आत्मा आया। भैया ! ध्यान देना, यदि तुम्हारे लिए अभी भी होटल का भोजन रुच रहा है, अभी भी तुम्हारे लिए रात्रि भोजन रुच रहा है, तो इसका मतलब है तुम्हारे लिए रुचि

पुद्गल में है। अभी आत्मा में रुचि जागी ही नहीं है, जिस दिन आत्मा में रुचि जागेगी। उस दिन ऐसा लगेगा कि एक मिनिट, एक सैकण्ड में क्यों बाहर लगाऊँ? जब शुद्ध भोजन करूँगा, तो शुद्ध विचारों का जन्म होगा। **भोजन से मन बनेगा, मन से विचार बनेंगे, विचार से आचार का निर्माण होगा।** अभी तो भोजन भी बाहर का अच्छा लगता है। इसका मतलब है, अभी भीतर में रुचि कम है। देखो जिसको जहाँ प्रेम होता है वह वहाँ भोजन करता है। बोलो सत्य है कि नहीं? सत्य है। तो इसका तात्पर्य क्या है? कि आपको घर से प्रेम नहीं है। घरवालों से प्रेम नहीं। इसीलिए आप होटल की ओर दौड़ रहे, ध्यान देना ! आपकी रुचि कहाँ है? रूच क्या रहा है? यदि आपकी रुचि आत्मा में आ जाये तो बाहर के विषय नहीं रुचेंगे। रुचि घर में आ जाये तो बाहर का भोजन न रूचे। आप बैठे हो मेरे सामने, और मुझे ये भी ज्ञात है सुन तो ऊँची बात रहे, लेकिन इतना ऊँचा सुनने के बाद यदि रविवार के दिन तुम चौपाटी की ओर दौड़ो, इतनी ऊँची बात सुनने के बाद यदि तुम होटल पर दाल–बाँटी खाने दौड़ो तो होगा क्या? सुनाने वाले का सार क्या निकला? भैया! सावधान! सुलभ विषय भी नहीं रुचते। त्यागी वह नहीं बनते हैं जिनके पास कुछ नहीं होता है। त्यागी वह बनते हैं जिनके पास सब कुछ होने के बाद उन विषयों में अरुचि होती है। और इस तरफ की रुचि सिद्ध करती है, उस तरफ तुम्हें अरुचि है, आपको सिद्ध करना पड़ेगा। यदि मैं शास्त्र वाचना कर रहा हूँ तो इससे सिद्ध होता कि आपको गप्पाष्टक में रुचि नहीं है। एक रुचि अन्य रुचि का निषेध करती है। अस्ति में नास्ति छुपा हुआ है। जब हम न्याय को लगाते हैं तो ये सिद्ध हो जाता है कि आप बाहर भोजन को क्यों गये? क्योंकि घरवालों के भोजन में आपको रुचि नहीं है। शुद्ध भोजन में आपकी रुचि नहीं है। हमारा उपयोग बाहर क्यों गया? क्योंकि भीतर के उपयोग में हमारी रुचि नहीं है। **उपदेश सुनने के बाद आचरण में परिवर्तन आना, ये उपदेश की सफलता है। सुलभा विषयः** सुलभ विषय थे, क्या सुलभ नहीं था कल्पना करो, जिन्हें ये बोध हो गया है? कि ये विषय विष के समान है, ये विषय किंपाक फल के समान देखने में सुंदर मधुर लगते हैं, लेकिन फल में अत्यंत हानिकारक हैं, तब यह जीव इन विषयों से विरक्त होता है। भैया ! ये प्रथम गाथा ऐसी है जिस गाथा को आचार्य ने दोनों तरफ से तुलनात्मक अध्ययन किया है, अस्ति पक्ष भी रखा, नास्ति पक्ष भी रखा। यदि तुम्हें दिन में भोजन करना अच्छा लगता है, तो इसका मतलब

तुम्हें रात्रि भोजन नहीं रुच रहा और रात्रि में रुच रहा है। इसका मतलब दिन तुम्हारे लिए अच्छा नहीं है। इसीलिए रविषेणाचार्य ने इसी बात का कहा—यदि तुम्हें रात्रि भोजन प्रिय है, तो दिन में आँखों की आवश्यकता क्या है? इसलिए रात्रि भोजन प्रिय व्यक्ति उल्लू, बिल्ली और चमगादड़ होते हैं। पूछा कि ये जीव उल्लू, बिल्ली चमगादड़ की पर्याय में क्यों पैदा होते हैं? तो उन्होंने दर्शाया कि जिन्हें रात्रि भोजन प्रिय है, उन्हें दिन में आँखों की आवश्यकता क्या है? इसलिए उनको अगले भव में दिन में दिखाई नहीं देता। तत्त्व में गहरायी है। जब कुंदकुंद भगवान से पूछा हे भगवन् ! ये विषयों से विरक्ति कैसे जागे? आचार्य कुंदकंद बोले, किसी भी वस्तु के त्याग में तीन चीजें आवश्यक है— **'असुचित्तं विवरीयं दु :खफलम्''**

सबसे पहले अशुचिता का बोध हो, एक बात। प्रतिकूलता का बोध हो दूसरी—बात उसके दु:खरुप फल का बोध हो। तीसरी बात। यदि ये दानों बातें जीव के हृदय मे उतर आयीं तो जीव त्याग कर सकता है, और तीन बातें हृदय में नहीं उतरी तो जीव भटक सकता है। अब पूछा कुंदकुंद भगवान से, जब आप जानते हो मिथ्यात्व अहितकर है। आस्रव—बंध अहितकर है, तो आपने त्याग की बात क्यों नहीं कही? बोले सिर्फ मैंने इतना कह दिया जो अपवित्र हो, जो प्रतिकूल हो, जो दु:खरूप हो उसका त्याग कर देना, बड़ी सूची तैयार नहीं की कुंदकुंद ने। सभी लोग बोलते समयसार में कहाँ लिखा रात्रि भोजन त्याग करना? मैंने कहा आस्रव तत्त्व का त्याग लिखा कि नहीं, बंध तत्त्व का त्याग लिखा कि नहीं, लिखा है तो रात्रि भोजन आस्रव—बंध रूप है कि नहीं। अपवित्र है कि नहीं, प्रतिकूल है कि नहीं, दुख रूप है कि नहीं? है। क्योंकि **महापुरुष अल्प शब्दों में महान रहस्य पूर्ण बातें कह जाते हैं,** उनके रहस्यों को समझने के लिए समय लगता है, जो सूत्र वह आज कह देते हैं, सामान्य पुरुषों को वर्षों बाद समझ में आता है, कि ये बात उन्होंने उस समय क्यों कही थी?

प्रिय बंधुओ।

यदि हमें बाहर के विषय नहीं रुच रहे हैं तो ये सिद्ध हो जाता है कि अब तुम्हें आत्मा में रुचि जाग रही है, आत्मा की रुचि आपका सम्यग्दर्शन है। आत्मा का ज्ञान आपका सम्यग्ज्ञान है और आत्मा में लीनता आपका सम्यक्चारित्र है। इन्हीं तीन का सेवन ही तो कुंदकुद ने बताया है और क्या सेवन करना? इनकी सेवा ही आत्मा की सेवा है। आप देखो, जिनको भी देखना है, हमारे पूज्य जिन जिनकी भी समाधि हुयी है, उपसर्ग हुए, आखिर वह

अपने स्वरूप में कैसे तिष्ठे? क्यों संवेदन में उपसर्ग नहीं आया, संवेदन में निज आत्मा आया, सात दिन तक कमठ ने पारसनाथ के ऊपर पत्थर बरसाये। धूली उडायी, लेकिन पारसनाथ के संवेदन में क्या आया? संवेदन में तो आत्मा आ रहा था। इसलिए जब आत्मा संवेदन में आ रहा था, तो बाहर की धूल और पत्थर कुछ नहीं कर पाये, बाहर का व्यक्ति, बाहर की वस्तु हमारा बिगाड़ तब कर पाता है, जब कि संवेदन में निज आत्मा को न लाकर के, हम पर को अपने संवेदन में लाते हैं। भैया! आप अपने द्वार पर लिखते हो, बिना अनुमति प्रवेश निषेध। जब घर के द्वार पर लिख सकते हैं तो अपने चिंतन के द्वार पर भी लिखो कि बाहरी विकल्पों का बिना अनुमति प्रवेश निषेध। संवेदन में निज को लाना है, और संवेदन हम पर का करें तो सार क्या निकला?

'संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्' उत्तम तत्त्व का संवेदन, भरत चक्रवर्ती कितना लीन रहता होगा आत्मा में, षट्खण्ड का संचालन और आत्मा में लीनता, भरतेश वैभव में लिखा, सुभद्रा खीर परोस रही है। खीर गर्म थी, भाप निकल रही थी, चक्रवर्ती उतने काल के लिए ध्यान में बैठ गया। सुभद्रा पंखा ढुलाती रही, खीर ठण्डी हो गयी, लेकिन चक्रवर्ती का ध्यान नहीं टूटा, भरत का ध्यान नहीं टूटा, एक घंटे नहीं, दो घंटे नहीं, तीन घंटे हो गये। लगातार ध्यान करते–करते, जब ध्यान छूटा, तब याद आया देखा सामने सुभद्रा बैठी है, उनको बोध ही नहीं था कि थाली भी आयी है और सुभद्रा भी बैठी है, कोई पंखा ढुला भी रहा है। खीर के प्रति भी अनुराग नहीं जागा, हवा का संवेदन नहीं, खीर का संवेदन नहीं, भूख का संवेदन नहीं, संवेदन में तो आत्मा आ रहा था, इतनी अभ्यस्त दशा, सुनते हैं कि भरत चक्रवर्ती को एक अन्तर् मुहूर्त में केवलज्ञान हो गया, ज्यादा साधना नहीं करना पड़ी अंतर्मुहूर्त ध्यान किया और केवलज्ञान हो गया। क्योंकि पहले का अभ्यास इतना मजबूत था। अब सोचो आपके सामने खीर परोसी जाये, और गर्म हो, तो क्या आप ध्यान में बैठ जाओगे? सुन तो रहे हो इष्टोपदेश अब हम अपनी तुलना करें कि वस्तुतः कोई वस्तु हमारे सामने आये तो हम उसका टेस्ट (स्वाद) लेने दौड़ेंगे कि फिर आत्मा का टेस्ट अनुभव करेंगे। उस समय हमारी परिणति क्या होगी? यदि ये गाथा गले उतरती है, तो सिद्ध है कि क्या रात्रि भोजन, क्या होटल का भोजन, ये सब तो अपने आप छूट जायेंगे। कहना नहीं पड़ेगाा। कहना पड़ा बर्तन माजा नहीं और मैं खीर परोसूँ, भैया। इसलिए पहले अपने बर्तन को तो माज लो।

फिर खीर रखना। ये अध्यात्म की पवित्र खीर रखने के लिए अपने आचरण के बर्तन को माजना पड़ेगा

जब तक आचरण का बर्तन मजा न हो तब तक अध्यात्म की खीर नहीं रखी जाती। एक संन्यासी के पास राजा पहुँच गया मुझे हित का उपदेश दो

संन्यासी ने कहा, मैं कल दूँगा, वह संन्यासी भिक्षु। दूसरे दिन कटोरा लेकर के राजा के द्वार पहुँच गया। मुझे इसमें खीर दे दो, राजा बोला, कटोरे में तो राख लगी हुयी है, तो संयासी बोला, तुमको खीर देने से प्रयोजन है, कि राख से। राजा बोला नहीं तुम्हारे कटोरे में राख लगी रहेगी तो मेरी खीर भी बदनाम हो जायेगी। खीर देने का लाभ क्या? भैया ! इसीलिए हमें अपने आचरण को इतना माँज लेना चाहिए कि फिर उसमें अध्यात्म की ये खीर, और रख दें। ये मातााएँ जब खीर परोसती है तो चांदी की कटोरी में परोसती है विशेषता है। यदि आपको उड़द की छिलके वाली दाल परोसेंगे तो जरूर स्टील की कटोरी में परोसेगे, लेकिन खीर परोसी तो चाँदी की कटोरी में क्यों? समझना, कभी आप अनुभव करना, ये विशेषता हैं। इसका रहस्य ये है कि **महान चीज महान पात्र में दी जाती है।** अब पण्डित जी बोल रहे महाराज स्टील की कटोरी चाँदी की कटोरी में अंतर क्या है? पंडित जी जानते हैं कि लोहा उत्तम धातु नहीं है, चाँदी उत्तम धातु है। उसी तरह हमारे आचार्यों ने कहा अध्यात्म पवित्र विद्या है। चौथा अनुयोग है। पहले चारित्र के द्वारा आत्मा को माजा, अपन ने चार अनुयोग के क्या सूत्र निकाले थे? देखो, जानो, करो, बनो। प्रथमानुयोग नें हमें सिर्फ दिखाया था, भरत ऐसे थे, कैसे थे? देखो, जानो भरत का जीवन कि भरत चक्रवर्ती ऐसा करता था, भोजन के समय गुस्सा नहीं होता था। अपनी सभा मे हम ऐसे जीव है, समय पर भोजन न मिल पाये, बोलो क्या हो जाये? समय पर भोजन न मिल पाये, या भोजन में कुछ कमी रह जाये, भैया ! जरा सी कमी रह जाये, तो हमारी उस समय परिणति क्या बनेगी? ये अध्यात्म उस समय काम आयेगा कि नहीं, हम प्रवचन सुनते–सुनते इस बात को लक्ष्य बना लें कि हमारा ज्ञान, हम किस समय प्रयोग में लेंगे? इस ज्ञान का प्रयोग हम किस टाइम करेंगे, किस वक्त करेंगे? भरत चक्रवर्ती ध्यान में बैठ गया, क्या हम भी ऐसा कर सकते हैं? हम क्या बोलते हैं? अब अपने–अपने चिंतन को दौड़ायें, **साम्यभाव को जगाना अध्यात्म का सार है,** ज्ञानार्णव में साम्यभाव की बहुत महिमा दी है, कि

साम्यभाव समता भाव चाहे घर में रहो, अथवा साधु बनके रहो तो, समता चाहिए। समता पर ही साधुता निर्धारित होती है। **घर की प्रतिष्ठा, कब बनेगी? जब घर में एकता हो, एकता कब बनेगी? जब समता हो।** तो एकता हो। और समता नहीं है तो एकता भी नहीं होगी। हमारा जीवन सुविधा मे बीतता है, लेकिन **एक तत्त्वज्ञानी का जीवन समता में बीतता है**, हम धन के माध्यम से सिर्फ बाहर की सुविधायें जुटाते हैं, और सोचते हैं, इसमें हमारी महानता है। **सुविधा में नहीं समता में जिओ।** हम अपने परिवार की व्यवस्थाओं में जुटे रहते हैं, स्वयं के परिणामों को व्यवस्थित कर लो। परिवार को व्यवस्थित करते–करते हमारा जीवन निकल जाता है लेकिन परिणाम व्यवस्थित नहीं हो पाते हैं। **भला परिवार से होना है, कि भला परिणाम से होना है?** पंडित जी साहब तीन उपयोग है। अशुभोपयोग, शुभोपयोग, शुद्धोपयोग। एक परिवार के तीन सदस्य, जैसे राम, सीता, लक्ष्मण, ऐसे एक ही आत्मा तीन उपयोग कर लेता है, भिन्न–भिन्न की दृष्टि से लक्ष्मण भैया, अशुभोपयोग। सीता शुभोपयोग। राम शुद्धोपयोग। एक ही परिवार के तीन सदस्य तीन स्थानों पर हैं, क्यों है? **क्यों कि परिवार साथ नहीं, जाता है, परिणाम साथ जाता है।** फल परिवार का नहीं परिणाम का मिलता है। बोलो फल किसका मिला, परिवार का या परिणाम का? साथ कौन गया, परिवार कि परिणाम? परिणाम, और हम परिवार के कारण परिणाम बिगाड़ते हैं। **परिवार के संभालने में परिणाम मत बिगाड़ो**, हम ये अध्यात्म की विद्या को कैसे आत्मसात करें? भैया ! आप मूँगफली को कूटके पीसके, मीठा मिलाके सुंदर बर्फी बनाके खाना चाहते हैं, कठोर बादाम को फोड़कर के फुला कर के, पीसकर के, उसका पेस्ट बनाके खाना जानते हो, तो फिर इस विद्या को कैसे सरल से सरल करके, हम उसे आत्मसात करें। ये भी जान लो, तो संवेदन में क्या आ रहा? भैया! ये महत्त्वपूर्ण तथ्यों को लो, **वारिषेण** के संवेदन में क्या आया? सुदर्शन के संवेदन में क्या आया? विजय सेठ और विजया सेठानी के मन में क्या आया? सुलभ तो जगत में सब कुछ है, कुंदकुंद भगवान जो चौथी गाथा में कह के गये, वह इन्होंने 38वीं कारिका में फिर कह दिया। सुलभ और दुर्लभ उन्होंने कहा –

सुदपरिचिदाणुभूया, सव्वस्स वि कामभोगबन्धकहा।
एयत्तस्सुवलंभो, णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥4॥ समयसार

जगत में सिर्फ एकत्वविभक्त निज आत्मा सुलभ नहीं है बाकी सब सुलभ है। जो तुम्हारे भीतर है जो तुम्हारा रूप है, जो तुम्हारा स्वरूप है, वही तुम्हें सुलभ नहीं है बाकी सब सुलभ है। आप अपने स्थान पर बैठकर के मोबाइल के माध्यम से देश की कोई भी वस्तु अपने पास मँगवा लेते हो, लेकिन जो तुम्हारे भीतर निज आत्म तत्त्व है, उसका अनुभव दुर्लभ है। आचार्य कहते हैं, यदि भीतर का अनुभव हो तो बाहर का विषय न रुचे। फिर जब समस्त संसार तुमको कैसा लगेगा? बाहर में आनंद है ही नहीं, जब कभी आठ दिन का, पाँच दिन का मौन ले लेते हैं तो पहले दिन तो लगता है कि मौन है और कुछ दिन लेने के बाद लगता, अब किससे बोला जाये। क्यों बोला जाये? यह लगातार जब हम कोई साधना करने लगते हैं, तो बाहर जगत का आनंद नहीं आता।

❑❑❑

39

अनुभूति बढ़ने पर विचार परिणति

निशामयति निःशेष, मिन्द्र जालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्म लाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते।।39।।

अन्वयार्थ – (**निश्शेषं**) जब समस्त (**जगत**) संसार (**इन्द्रजालोपमं**) इन्द्रजाल की तरह निःसार (**निशामयति**) दिखाई देने लगता है, तब (**आत्मलाभाय**) आत्म–स्वरूप पाने के लिए (**स्पृहयति**) अभिलाषा होती है, उस समय यदि (**अन्यत्र**) मन अन्यत्र (**गत्वा**) जाता है तो (**अनुतप्यते**) सन्तप्त (**याकुल**) होता है ।

जब हमारी साधना कमजोर होती है, तो बाह्य जगत का आनंद आता है, और साधना परिपक्व होती है, तो फिर बाहर जगत बिल्कुल नहीं रुचता। इंद्रजाल के समान संसार दिखाई देता है, जैसे जादूगर कुछ दिखाता है, और पलभर में विलीन हो जाता है। ऐसे ये रिश्ते नाते, आज रिश्ता बनाते हैं, कल लगता है क्यों बना लिया? यानी यह शाश्वत नहीं है, स्थिर नहीं है। रिश्ता तो पलभर में रिसता जाता है। इसलिए एक निज आत्म तत्त्व से आत्म तत्त्व जुड़ जाये वही सही रिश्ता है। अपना उपयोग अपने में लग जाये वही सही रिश्ता है। बाकी तो सब मोह की लीला है। कर्म आस्रव–बंध का कारण है, इसीलिए तो त्यागा, कितनों को नहीं त्यागा, भरतेश ने 96 हजार को त्यागा, कितने रिश्तेदारों को त्यागा। भैया ! अनुभव की बात है, जगत इंद्रजाल की तरह काल्पनिक दिखाई देता है। आत्म स्वरूप पाने की तीव्र अभिलाषा होती है। आपके हाथ में गन्ने का रस दिया जाये, पहले आप कहते मुझे नहीं पीना और फिर ज्यों ही थोड़ा सा, एक घूँट पीने के बाद, जब मीठा लगता तो आप क्या करते हो? फिर आप उसको पी लेते हो। उसी तरह यदि आत्मा में थोड़ी भी रुचि जाग जाये, तो फिर बार–बार उसी में, पंडित जी की विशेषता वह कहते, जैसे जब तक ''जीने अमिया

नइ चीखी सोतो कछु और बात एक बार अमिया चूसी, तो आम की स्थिति कैसी होती है? अंदर बाहर, अंदर बाहर, उसी तरह जब तूने एक आत्मा का अनुभव नहीं किया, सो तू जितना चाहे मना करता रहे, लेकिन यदि एक बार तू आत्मा का अनुभव करेगा, तो क्या होगा? जैसे एक बार आम को भीतर किया, फिर बाहर निकल आया, अब फिर भीतर दिया, फिर बाहर निकल आया। उस अमिया का धीरे–धीरे, बार–बार तू रस लेता है, वैसे ही तू आत्मा का बार–बार रस लेगा भैया! ये आत्मा का रस ऐसा ही है, जिसने चखा वह जाने, ये आतम अनुभव रस कूप है, बाहर के रस सब फीके पड़ जाते हैं। साहित्य में कितने रस है? नौ रस है उसमें अंतिम रस शांत रस है, और वह शांत रस कहाँ प्राप्त होता है? ध्यान देना, राम और रावण ने इतना युद्ध लड़ा, क्या सब रस हो गये? शांति कहाँ मिली? जब शांत रस में पहुँचे और **शांत रस आत्मा का सर्वश्रेष्ठ रस है।** यदि पहले ही आत्मा में जीव पहुँच जाये, तो फिर कलह की आवश्यकता क्या है? विग्रह की आवश्यकता क्या है? आखिर सीता को यही तो कहना पड़ा कि काश! मैं पहले ही दीक्षा ले लेती। तो फिर ये सब क्यों होता? पहले ही आत्मा के स्वरूप में लीन हो जाते, तो आचार्य कहते हैं, अभी तक तू भवसागर से पार हो चुका होता। आज तक आत्मा का आश्रय लिया ही कहाँ है? जैसे समुद्र के बीच में यदि व्यक्ति नौका का सहारा न ले तो पार नहीं होता। ऐसे ही जब तक आत्मा का आश्रय नहीं लेगा, तब तक भवसागर से पार नहीं होगा।

''स्पृहयति आत्मलाभाय'' अभी तक तो जीव धन आदि को चाहता था। मकान को चाहता था। दुकान को चाहता था। परिवार को चाहता था, लेकिन अब किसे चाहता है? **आत्मलाभाय स्पृहयति'** आत्मा के लाभ के लिए चाहता है। शुभ–लाभ, शुद्ध आत्मा का लाभ, शुभ परिणाम आत्मा का लाभ। कौन सा लाभ चाहता है? आत्म लाभ, अभी तक लाभ के विषय में जब–जब बात आती होगी, सो आपका चित्त सीधा धन की ओर जाता है, लेकिन पूज्यपाद स्वामी परमार्थ सम्पदा की बात कर रहे हैं, उन्होंने संकल्प में कहा था कि सम्पत्ति के होने पर मोक्ष मिलेगा इसलिए तुमको गरीब नहीं बनाना चाहते, दूसरी गाथा में कहा था –

योग्योपादान योगेन, दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादि संपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता।। (2)

सम्पत्ति के होने पर ही आत्मा परमात्मा बनता है। भिखारी आत्मा परमात्मा नहीं बनता। जिसके पास केवलज्ञान का साम्राज्य हो, वही आगे जाके परमात्मा बनेगा, जिसके पास शुक्लध्यान का साम्राज्य हो, वह केवलज्ञानी अरिहंत परमात्मा बनेगा। भैया! भिखारी परमात्मा नहीं बनता। आचार्य कहते हैं, आत्मा के लाभ को चाहने वाला आत्मा के लाभ को पाने वाला सच्चा व्यापारी है एक व्यापारी वह है, जो सिर्फ धन का लाभ पाता है। सम्यग्दर्शन का लाभ, आत्मा का लाभ है, सम्यग्ज्ञान का लाभ आत्मा का लाभ है, सम्यक्चारित्र का लाभ आत्मा का लाभ है। ये जो अभी प्रवचन का लाभ हुआ है। आत्मा का लाभ है, तत्त्व ज्ञान का लाभ आत्मा का लाभ है। भैया ! ये आत्मा के लाभ के अंतर्गत आता है और आत्मा के लाभ को चाहता है। इस समय कहा जाये आप वहाँ चले जाओ, तो मन लगेगा क्या? नहीं **''गत्वा अन्यत्र''** और कहीं चले भी जाओगे तो मन में लगेगा आज का प्रवचन छूट गया। **''गत्वा अन्यत्र''** अन्यत्र जाकर के **''अनुतप्यते''** बार–बार संतापित होता है। हे प्रभु ! मैंने क्या किया? इस तरह संतापित होता है। इसलिए अन्यत्र जाना ही नहीं चाहता। अपनी यह स्थिति बना लेता है कि फिर उसका चित्त अन्यत्र नहीं जाता। वहाँ उसे कष्ट लगता है कि मैं कहाँ आ गया? मैं कितने अच्छे स्वाध्याय में बैठा था, मैं कितने अच्छे प्रवचन में बैठा था, मैं किसके संदेश पर कहाँ आ गया? संतापित होता है, क्योंकि जहाँ आत्मा का लाभ नहीं है, वहाँ मन नहीं लगेगा। ये विद्वान है, यदि आप इनको दुकान पर बिठाओ तो इनका कहाँ मन लगने वाला उसी तरह जो तत्त्वज्ञानी जीव है, यदि जरा से भी राग–द्वेष की बात हो तो उसका मन नहीं लगेगा। घर गृहस्थी में मन नहीं लगेगा। भैया ! ये है लाभ जरा जादूगरी के समान देखो, ऐसे देखो की कोई तमासा स्थान है, सिर्फ जादू की दुनियाँ है कुछ भी शाश्वत नहीं है। कुछ भी स्थायी नहीं है, कहने को सब है, लेकिन बस जिस पेड़ पर बैठे हैं उसी पेड़ तक सब है, उस पेड़ के बाद सभी को अपनी–अपनी दिशा में उड़के जाना है। कौन किस दिशा में उड़ेगा इसका पता स्वयं नहीं है। भले ही परिवार में आज पाँच सदस्य है, लेकिन कौन किस जगह उड़ेगा, राम कहाँ उड़ गये, सीता कहाँ उड़ी, लक्ष्मण कहाँ उड़के गये। बताओ तब फिर हमारा और आपका क्या होगा? इस जगत को सम्यक् स्वरूप से समझो, तब कहीं स्वरूप का आनंद आयेगा।

40

योगी की निर्जन प्रियता

इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः।
निजकार्य वशात् किंचि, दुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्।।40।।

अन्वयार्थ – (**निर्जनं**) निर्जन स्थान (**जनितादरः**) जिसे अच्छा प्रतीत होता है ऐसा अनुभवी पुरुष (**एकान्त**) एकान्त में (**संवासं इच्छति**) रहना चाहता है (**निजकार्यवशात्**) अपने किसी कार्यवश उसे यदि (**किंचत् उक्त्वा**) कुछ कहना भी हो तो वह कह करके (**द्रुतम्**) शीघ्र ही उसे (**विस्मरति**) भूल जाता है।

स्वरूप में डूबने का मन होगा, तब फिर बाहर जाने में मन नहीं लगेगा, फिर पिकनिक के लिए नहीं दौड़ोगे फिर होटल के लिए नहीं दौड़ोगे फिर क्या होगा?

'इच्छत्येकान्तसंवासं'

फिर एकांत में ठहरने का आनन्द आयेगा, डॉक्टर साहब का दाहोद जिला का सबसे टॉप हॉस्पिटल है लेकिन यहाँ प्रवचन सुन रहे हैं, हमें तत्त्व का लाभ लेना है। दूसरों को दवा बहुत दे दी, अब स्वयं को दवा लेना है। **मैं दूसरे के तन का इलाज करता हूँ, लेकिन मेरा मन का इलाज तो मेरे गुरुवर के प्रवचन से होगा। जिनवाणी कि औषधि मिलेगी तो आत्मा का इलाज होगा।** ऐसे भाव जिनके मन में, निरंतर समा रहे हैं। आचार्य भगवन् ने हमें संदेश दिया कि जीव **'इच्छत्येकान्तसंवासं'** एकांत के संवास को चाहता है लेकिन एकांत का मतलब अकेला नहीं है। हम सभी अभी इतने जन बैठे हैं। एकांत में बैठे हैं। जहाँ एकरूपता है। जहाँ तुम्हारी समता बन जाये, जहाँ साधना में जितने समूह में मन लग जाये, उतना समूह एकांत है। स्वाध्याय में हम 200 जन बैठे हैं, इसके बीच में कोई क्रिकेट

खेलने वाला बच्चा आ जाये, तो क्या कहेंगे भैया, यहाँ शांति नहीं है। शांति का मतलब ये है, कि एक माने आत्मा, अंत माने धर्म, आत्मा के धर्म में ठहरना एकांत है। ये अध्यात्म का एकांत है, इसे पकड़ो। आत्मस्वरूप में ठहरना एकांत है।

'निर्जनं जनितादरः'

निर्जन स्थान अच्छा लगता है, जहाँ सामान्य जन लौकिक जन विचरण नहीं करते, ऐसे अलौकिक पुरुष जहाँ रहते हैं, जहाँ महापुरुष रहते हैं, उनके चरणों में जाना, उनके चरणों में बैठना अच्छा लगता है, फिर **निज कार्य वशात्** यदि आत्मा के कार्य वश कुछ बोलना पड़े तो कुछ बोलकर के भूल जाता है। याद नहीं रखता, ऐसा नहीं कि वैर उनसे रखले ऐसा नहीं कि कमण्डलु नहीं भरा तो बैर बना के रखलें। भैया ! **'विस्मरति द्रुतम्'** शीघ्रता से भूल जाता है, कोई भी कार्य, यदि लगता है कि बोलना है, तो प्रयोजन वश बोल भी दिया, लेकिन वहीं तक, जैसे दर्पण के सामने से व्यक्ति आया सो दर्पण में चित्र आ गया, और व्यक्ति गया सो दर्पण से चित्र चला गया। उसी तरह से कहा और भूल गये क्योंकि हमारा उपयोग पर में न उलझे, इसलिए कह करके भूल जाओ और हमारा उपयोग अपने में लीन रहे। इसलिए तत्त्व के अभ्यास को कभी मत भूलो। ऐसी पावन परम परिणति के साथ हम सभी ने जिनवाणी का रसपान, करते हुए इष्टोपदेश की 40वीं कारिका तक का स्मरण किया और ऐसा ही स्मरण हम सभी के लिए बहुत ही कल्याणकारी है।

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

———————————

41

स्वरूपनिष्ठ योगी की विशेषता

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति।।41।।

अन्वयार्थ – (**स्थिरी कृतात्मतत्त्वस्तु**) आत्म तत्त्व में स्थिर रहने वाला तो (**ब्रुवन् अपि**) बोलता हुआ भी (**न ब्रूते**) नहीं बोलता है (**गच्छन् अपि**) चलता हुआ भी (**न गच्छति**) नहीं चलता है और (**पश्यन् अपि**) देखता हुआ भी (**न पश्यति**) नहीं देखता है।

प्रिय आत्मन्।

पूज्यपाद देव इष्टोपदेश की 41वीं कारिका को प्रस्तुत करते हुए अध्यात्म के चैतन्य स्वरूप एक मुनिराज को प्रस्तुत करते हैं, किसी ने पूछा अध्यात्म क्या है? पूज्यपाद आचार्य ने कहा यह मुनिमुद्रा अध्यात्म है, पूछा ये बोलते हुए पर भी क्यों नहीं बोलते? ये अध्यात्म है। ये एक ही स्थान पर क्यों ठहरे हैं? ये चलते हुए भी क्यों नहीं चलते? बोले–अध्यात्म है। ये मुनि आँख बंद किए बैठे हैं, ये देखते तो क्यों नहीं? बोले अध्यात्म हैं। फिर देखा एक साधु को वह उपदेश दे रहे थे। फिर प्रश्न हुआ, जब ये अध्यात्म है, ये बोल रहे तो ये क्या है? बोले ये अध्यात्म है। फिर देखा साधु संघ विहार कर रहा था, बोले ये क्या है? बोले अध्यात्म है, फिर देखा एक साधु संघ देख रहा था, फिर पूछा ये क्या है? बोले ये अध्यात्म है। ये कैसा अध्यात्म है? अच्छा ये बताओ, बोलते हुए होने पर, जब कोई बोल रहा हो, तो आप उसे बोलता कहेंगे कि नहीं कहेंगे? मैं बोल रहा हूँ, तो आप मुझे बोलता हुआ कहेंगे कि नहीं कहेंगे? यदि मैं। कहीं चलता दिख जाऊँ, तो मुझे आप चलते हुए कहोगे कि नहीं बोलो? मैं आपको देख रहा हूँ, आप मुझे देखता हुआ कहोगे कि नहीं

आचार्य पूज्यपाद इससे न्यारे हैं, अध्यात्म कुछ निराला है। बोल रहे हैं, पर दोनों के बोल में अंतर है। साधु जब बोलते हैं, तो उनकी बोली अमृत का रस घोलती है। बोल तो रहे हैं, आप जब बोलते हैं तो कोई माल खरीदते हो, लेकिन साधु जब बोलते है, तो धर्म को प्राप्त करते हैं। आचार्य कहते हैं, बोलते हुए पर भी, नहीं बोल रहे, क्यों? शब्द तो बोल रहे लेकिन भीतर में भाव बोलने का नहीं। भीतर मे भाव हित करने का छुपा हुआ है। अर्थात् राग की गौणता है, हित की मुख्यता है। आप कब बोलते हैं? भैया ! राग हो तो आप बोल लेंगे। द्वेष होगा तो बिना बोले चले जायेंगे। आचार्य कहते हैं– एक सामान्य इंसान में, और एक आध्यात्मिक इंसान में क्या अंतर है? आध्यात्मिक पुरुष, बोल रहा है, पर राग में नहीं डूब रहा है। बोल रहा है पर विषय–कषाय के व्यापार में नहीं डूब रहा है। बोल रहा है, पर राग नहीं बोल रहा, द्वेष नहीं बोल रहा। बोलो तो राग न हो, न बोलो तो द्वेष न हो, ऐसी स्थिति का निर्माण कर लेना। प्रायः करके हम और आप में ये होता है, कि जब राग होता है, तो बोल लेते हैं। द्वेष होता है, तो बोलना बंद कर देते हैं। लेकिन आचार्य कहते हैं– राग और द्वेष में नहीं बोलना। यानी राग द्वेष रहित वीतरागी ही शासननायक कहलाता है। हितोपदेशी हित का उपदेश देने वाला शासन नायक कहलाता है।

'ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते'

बोलते हुए पर नहीं बोलते, **गच्छन्नपि'** जाते हुए पर भी न **गच्छति,** नहीं चलते। ये सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि जा रहे हैं, लेकिन जाते–जाते समय बाहर में पाँव चल रहे हैं। भीतर में ज्ञान चल रहा है, गमनार्थक धातु दो अर्थ में आती है–ज्ञान में और गमन में गम् धातु के दो अर्थ होते हैं, गम (जानना) अधिगम, अधिगमज, अधिगम माने जानना, जो निज का जाने वह अधिगम, तो गच्छन् जानता हुआ, बाहर के विषय को जानता है, पर उस विषय में उलझता नहीं है। जानना बाहर के विषय को, लेकिन उलझना नहीं, लीन नहीं हो जाना, डूबना नहीं, तल्लीन नहीं हो जाना, क्यों? भीतर में आना है, कल कछुआ का उदाहरण बताया था, कुछ पल के लिए कछुआ हाथ–पाँव बाहर निकालता है, और अंदर, बाहर निकालने में आधे घंटे का समय और भीतर करने में आधे सैकण्ड का समय, ये है कछुआ की स्थिति। इसलिए कहाँ कछुआ बनके रहो, गच्छन् जाता हुआ भी नहीं जाता है। कहाँ जा रहे। कहाँ नहीं जा रहे? भैया ! बाहर में तो पाँव चल रहे हैं, लेकिन भीतर में वह

मोक्षमार्ग में चल रहा हैं। आपको दिख रहा है, कि महाराज तो इस रास्ते से गये हैं लेकिन सत्य वह नहीं कि जो रास्ता आप बता रहे हैं। सत्य तो ये है जो सर्वज्ञ ने रास्ता बताया उस रास्ते से गये। बाहर का रास्ता आप बताते हैं, बाहर के मार्ग पर चलता हुआ तो आप देख सकते हो। लेकिन भीतर के मार्ग पर चलता है साधु, दोनों पथ एक समय में है, बाहर भी, भीतर भी। एक बार पाँव को विश्राम मिल जाए तो हो सकता है, लेकिन चिंतन को विश्राम नहीं मिलना चाहिए। **चिंतन गतिशील रहता हैं, तो साधु प्रगतिशील रहता है। चिंतन को गतिशील बनाये रखें तो व्यक्ति प्रगतिशील रहेगा।** जिस व्यक्ति का चिंतन थम जायेगा, उस व्यक्ति का विकास थम जायेगा। इसलिए गच्छन् जाता हुआ भी, जानता हुआ भी कौन क्या कर रहा है? जान रहे, लेकिन उसमें जा नहीं रहे, क्यों? जानने में सब कुछ आयेगा, लेकिन जिसके जानने में हमारा हित नहीं है, उसमें अपना उपयोग बार–बार नहीं दौड़ाना, ये है अध्यात्म की कला, सामने देखने–जानने में आया, लेकिन पुनः उपयोग नहीं उलझाना **न गच्छति**, नहीं जाता है। कौन? **स्थिरीकृत** स्थिर किया है जिसने, किसको **आत्मतत्त्वस्तु** आत्मतत्त्व को जिसने स्थिर किया है, आत्मतत्त्व में जो लीन हुआ है, आत्मतत्त्व में जो ठहरा हुआ है। **'स : पश्यन्'** वह देखता हुआ भी **'न पश्यति'** नहीं देखता है। देखता हुआ भी नहीं देखता है क्यों? देखने वाली आँखें तो सबकी एक सी होती है, लेकिन इसके साथ राग–द्वेष करने वाला आपका विभाव ज्ञान है। जीव यदि विभाव ज्ञान न लगाये तो सबको एक समान देख रहा है। **देखना बाधक नहीं है, देखने के बाद होने वाला जो राग–द्वेष है, वह बाधक है।** अच्छा है या बुरा। यदि ऐसा भाव न जागे तो देखता हुआ भी नहीं देखता है। यदि भाव जागे कि ये अच्छा है, ये बुरा है। ये जहाँ कल्पना दौड़ गयी, वहीं आपका अहित हो गया। तीन बातें हैं –

बोलता हुआ भी नहीं बोलता,
चलता हुआ भी नहीं चलता,
देखता हुआ भी नहीं देखता।

कौन? जो अपने आप में ठहरा हुआ है। ध्यान देना ! जब पानी ठहरा हुआ होता है, तो पानी चलता है कि नहीं चलता? कुआँ का पानी चलता कि नहीं चलता, कुआँ में पानी ठहरा है कि नहीं ठहरा? ठहरा है। यदि पानी ठहरा हुआ है तो फिर निर्मल कैसे है? ठहरा है

तो निर्मल? हो ही नहीं सकता। कुआँ में वायु का प्रवेश है कि नहीं? वायु का प्रवेश है, तो तरंग उठ रही कि नहीं उठ रही? उठ रही। तो पानी चल रहा कि नहीं चल रहा? चलते हुए पर भी नहीं चल रहा ये है दृष्टि स्थिर भी है, कुआँ के भीतर से बाहर नहीं जा रहा सो स्थिर है, लेकिन कुआँ के भीतर–भीतर चल रहा सो चल भी रहा है। उसी तरह स्वरूप में स्थिर साधु है, वह स्थिरता मुख्य है, अब चाहे तुम बोलो तो भी भीतर का बोलोगे। माताओ सुनो ! स्थिति ये है, जैसे गाय का छोटा बछड़ा होता है, वह उछल–कूद करके बाहर की ओर दौड़ता है, लेकिन यदि उसको किसी कमरे में या बाड़े में कर दिया और गेट बंद कर देते हैं। अब वह बछड़ा कहाँ जा रहा? बोले कहीं नहीं जा रहा। लेकिन क्या उस बाड़े के अन्दर नहीं घूम रहा? घूम रहा है। उसी तरह स्वभाव में लीन है, बाहर में नहीं जा रहा सो कहाँ गया कि कहीं नहीं जा रहा, लेकिन बाड़े के भीतर–भीतर तो घूम ही रहा है। उसी तरह तू अपने स्वभाव में स्थिर हो जा, केन्द्र पर आ जा, फिर तू बोलेगा, तो केन्द्र की बात बोलेगा, चलेगा तो केन्द्र की ओर से चलेगा, और देखेगा तो भी अध्यात्म केन्द्र आत्मा की ओर से देखेगा। ध्यान देना। बेटी! मायके में है, और जब पहली बार ससुराल जाती है, तो कहाँ जाता है, ससुराल गयी, लेकिन दूसरी बार तीसरी फिर नहीं कहां जाता क्यों? अब वह गयी भी है, तो उसका चित्त स्थिर ससुराल में है, इसलिए कहीं भी जायेगी, तो वह बात कहां कि कहेगी? अब अपन मायके में भी जायेगी तो ससुराल पक्ष से बोलेगी और यदि जानेगी तो अपनी ही क्रिया विधि को जानेगी और यदि देखेगी तो उसी पक्ष से देखेगी। आचार्य कहते हैं। जो आत्मा में स्थिर हो गया है, वह तन को नहीं देखता, वह जड़ को नहीं देखता, देखता है तो आत्मा को ही देखता है। जड़ को नहीं जानता, आत्मा को ही जानता है, ये स्थिति है। भैया! निज को देखो, निज को जानो निज में ठहरो, निज से बोलो। आगे आचार्य कहते हैं,– साधु क्या करें?

तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छे – त्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाऽविद्यामयं रूपं, त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्॥53॥ (समाधितंत्र)

जिसके द्वारा अविद्या का त्याग करके विद्या में लीन होया जाये, उस तरह का तत्त्वोपदेश आचार्य भगवन् ने किया। जीवन में बहुत सारे विकल्प जीव को आते हैं, जीव

विकल्पों में उलझ जाता है, तनाव में पड़ जाता है। आखिर कोई ऐसा उपाय है कि विकल्प न आये, तनाव न आये, उलझनों में मन न उलझे, यहाँ वहाँ के विचार न आये, मन स्थिर हो जाये, आपने कहा था स्थिर मन हो तो ऐसी दशा होती है तो मैं तो स्पष्ट कह रहा हूँ, कि मेरा मन विकल्पों में उलझा रहता है। आओ निर्विफल्प होने की उपाय देखें।

❑❑❑

42

योगी की निर्विकल्प दशा

किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात् क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति, योगी योगः परायणः॥42॥

अन्वयार्थ – (**योग परायणः**) आत्म–ध्यान में लगा हुआ (**योगी**) योगी साधक (**इदम्**) यह (**किम्**) क्या है (**कीदृशं**) कैसा है (**कस्य**) किसका है (**कस्मात्**) किस कारण से है (**च**) और (**क्व**) कहाँ है (**इति**) इस तरह (**अविशेषयन्**) विशेष विचार न करता हुआ (**स्वदेहं– अपि**) अपने शरीर को भी (**न अवैति**) नहीं जानता है।

अर्थ – यह क्या है? किस तरह है? कहाँ से हैं? कहाँ पर हैं? इन विशेषताओं में न जाता हुआ योगी अपने शरीर को भी नहीं जानता। वह योगी, योग निष्पन्न होता है।

बताइये कि ऐसी क्या विधि है, कि मेरे मन में कोई विकल्प न आये। मैं ध्यान में बैठूँ तो मेरा मन ध्यान में लगे। जो कार्य करूँ उस कार्य में चित्त स्थिर हो जाये। इसकी क्या विधि है

प्रिय आत्मन् !

तत्त्वज्ञान की सम्यग्ज्ञान धारा में स्नान करते हुये निज चैतन्य आत्मा का अभिषेक हम कर रहे हैं। कलम जहाँ कलश बन जाये, अक्षर–अक्षर जहाँ देवता हो जायें, कागज जहाँ अभिषेक की थाली का रूप ले ले, वहाँ पर आत्मा भाव अभिषेक को प्राप्त हो जाता है। धन्य हैं वह पूज्यपाद देव! जिन्होंने कलम को कलश माना, अक्षर को जिनबिंब माना, कागज को अभिषेक की थाली माना, और चिंतन को गंधोदक माना, मैं पुनः बोलना चाहूँगा, कलम कलश, अक्षर जिनबिम्ब हैं। अक्षर लिख गया जिन प्रतिमा का निर्माण हो गया। चिंतन जल, कागज थाली। क्या हो रहा? अभिषेक सम्पन्न हो रहा है किसका? जिनेन्द्र भगवान की

प्रतिमा, अब आपको गंधोदक मिल रहा है, अब गंधोदक यदि हम आपको देते हैं, तो आप एक हाथ के नीचे, एक हाथ और लगा लेते हो क्यों लगाते हो? अविनय न हो, नीचे न गिर जाये। जैसे गंधोदक लेते समय, आदर भाव और पूरी सावधानी रखते हो, उसी तरह ये जानो कि प्रवचन रूपी गंधोदक मिल रहा है। भैया! मैं बारम्बार कहता हूँ कि हम साधु हैं हमें अपने मुख से तीर नहीं निकालना, भगवान महावीर स्वामी ने अपने मुख से तीर नहीं निकाला, तीर निकालने की आज्ञा नहीं दी, **महावीर स्वामी ने अपने मुख से तीर्थ निकाला।** जब राग–द्वेष के वचन निकलते हैं, तो तीर निकलते हैं, और जब सिद्धान्त, न्याय, आगम निकलता है, तो तीर्थ निकलता है। इसलिए **निश्चय, व्यवहार नयों से सम्पोषित जिनवाणी जहाँ पर खिरती है, वहाँ पर धर्म तीर्थ चलता है।** भैया! तीर्थ चलाना है, मैं आपको एक और प्यारी बात कहूँगा, कि अपने मुख से ऐसे वचन निकालो जैसे गर्भालय से प्रतिमा को निकालते हो। आप का मुख जिनवचन का गर्भालय है, जैसे गर्भालय में प्रतिमा है, ऐसे ही आपके मुख में प्रतिमा है, एक–एक वचन, एक–एक प्रतिमा के तुल्य हो, और प्रतिमा कब बाहर निकालते हो गर्भालय से? जब अत्यन्त अनिवार्यता है, और बाहर निकालने के बाद सम्मान के साथ उस प्रतिमा की सभी विनय करें। उसी तरह आपके हमारे मुख से निकले हुये वचनों का सब सम्मान करें, बहुमान दें, भैया ! ये तत्त्वज्ञान की महान धारा, मैं आपको ही दे रहा हूँ, सब जगह सर्वत्र नहीं दे पाऊँगा, ओ पात्रता जो आप में है, वह हमें सब जगह सभी में नहीं मिलेगी। इसलिए इसको सँभालके रखना। आपके लिए आचार्य भगवन कहते हैं, प्रतिमा गर्भालय से बाहर निकाली, सम्मान के साथ और उसी सम्मान के साथ प्रतिमा, स्थापित कर दी। देखो हम प्रतिमा गर्भालय से लाते हैं, पाण्डुक शिला पर, कितने सम्मान से लेकर के शीर्श पर रखकर के पाण्डुकशिला पर विराजमान करके अर्घ चढ़ाते हो, उसी तरह से मुख से वचन निकालो, तो कान की पाण्डुकशिला पर स्थापित कर दो, और वह वचन हृदय में प्रवेश कर जाये और पूजा को प्राप्त हो जाये, जैसे गर्भालय से निकली हुयी प्रतिमा पाण्डुकशिला पर अर्घ चढ़ाने आ जाते हैं, उसी तरह आपके एक–एक वचन अर्घ चढ़ाने के योग्य हो जायें।

प्रिय बन्धुओ !

दौलतराम जी! आप जैसे ही श्रावक थे। उनका एक–एक वचन अर्घ चढ़ाने के योग्य

हो गया। बनारसी दास! द्यानतराय! भैया भगवतीदास ये सब विद्वान के वचन पूजा के योग्य हो गये। कभी मुझसे लोग कहते महाराजश्री आपने और क्या लिखा? मैंने कहा **मैंने सिर्फ वह लिखा जिसे मैं नमस्कार कर सकता हूँ,** मैं उस पर विषय लिख सकता हूँ जिसे नमन कर सकूँ। मैंने सिर्फ वह लिखा जो नमस्कार के योग्य है, जिस रचना को मैं नमस्कार न कर सकूँ, जो कविता मेरे द्वारा पूज्यता को प्राप्त न हो सके, वह कविता मैंने कभी नहीं लिखी। कभी लोग बोलते हैं, आप अन्य क्षेत्रों में भी लिखो, मैंने कहा नहीं मैं सिर्फ जिनदेव के पास हूँ, क्योंकि मेरी अपने जिनेन्द्र के प्रति जो भक्ति है, जिनेन्द्र भगवान के प्रति अपनी जो आस्था है, वह आस्था बोलती है, और बीच में आपको सुनने मिल जाता है, और जब मैं यहाँ बोलता हूँ, तब आप सुन रहे थे, जब मैं वहाँ बोलता हूँ तो भगवान सुनते हैं, दोनों में अन्तर हो जाता है।

आज हम इष्टोपदेश के माध्यम से ये देख रहे कि जीव कहाँ रहता है? कल हमने देख लिया कि कैसे निर्विकल्प रहा जाये, विकल्पातीत होने का सूत्र क्या है? विधि क्या है, पद्धति क्या है, रीति क्या है? उस रीति को देखा, कि विशेषताओं में मत जाओ, सामान्य से लो। जिससे आपको प्रयोजन नहीं है, जिसमें आपका हित नहीं है, उस बात की गहराई में मत जाओ। जिससे लाभ नहीं होना है, उसकी गहरायी में प्रवेश मत करो। कौन है कहाँ से आया? क्यों आया? प्रयोजनभूत नहीं है, तो वहीं त्याग दो, और प्रयोजनभूत है तो ग्रहण करो। आचार्य कहते हैं विकल्प अप्रयोजनीय से होता है, प्रयोजनीय विकल्प नहीं देता है। कभी लोग कहते हैं महाराज आप स्वाध्याय करते–करते थकते नहीं हो? मैंने कहा–**मैं स्वाध्याय से नहीं थकता,** बाहर की बातें थका सकती हैं, स्वाध्याय नहीं थकाता, कभी उपवास का दिन हो, तो लोग बोलते महाराज श्री आज स्वाध्याय रहने दो, मैं कहता स्वाध्याय होने दो वही आनंद देगा। वही तो भोजन है, वही तो रसायन है, वही तो विटामिन है, यदि स्वाध्याय नहीं करूँगा तो क्या होगा? स्वाध्याय ही शक्ति प्रदान करता है। यह क्या है पहला प्रश्न, विकल्प का पहला कारण है। यह किस प्रकार है? दूसरा प्रश्न विकल्प का कारण है–यह किसका है? यह तीसरा प्रश्न विकल्प देता है, यह कहाँ से है? चौथा यह भी आपको विकल्प देगा, कहाँ पर है? ये पाँचवा प्रश्न विकल्प देगा, इसलिए इन पाँच प्रश्नों

को, उत्पन्न मत करो। पाँच प्रश्नों को उत्पन्न करोगे तो विकल्प आयेगे, एक बार में देख लिया कि **हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं होना है, तो विकल्प क्यों?** और प्रयोजन सिद्ध होना है, तो फिर वह आपका विकल्प नहीं कहलायेगा, फिर वह आपकी साधना कहलायेगी फिर वह आपकी तपस्या कहलायेगी, इसलिए जो साधु अपने शरीर को भी नहीं जानता है, वह बाहर के विकल्पों में क्यों उलझे? तो मैंने कल आपको बताया था कि आचार्य भगवन श्री विद्यासागर जी महाराज के जब मुझे कुण्डलपुर में दर्शन हुए, तब मैंने उनसे वैयावृत्ति के समय पूछा महाराज श्री! विकल्प न करने का उपाय क्या है?आचार्य श्री बोले X.Y.Z.। मैं आचार्य भगवन श्री विद्यासागर जी से दो बार मिल चुका। 15 मई 2009 को दमोह में, एक घण्टा तक मेरी उस समय वार्ता हुयी थी, मैंने 24 घंटे के संयोग में मैंने 72 पेज की पुस्तक लिखी है 'हृदयप्रवेश' मैंने इतनी अच्छी पुस्तक लिखी है कि हमारी 'हृदय प्रवेश' पुस्तक को सभी संघ के जरूर पढ़ लेंगे। जबलपुर में प्रथम संस्करण की सात हजार प्रति छपी थीं। आचार्य भगवन् से मिलन की एक–एक चर्चा उसमें कलम से लिखी थी, इतनी व्यवस्थित चर्चा हुयी थी, इतना अच्छा मार्गदर्शन उन्होंने दिया था। एक–एक वार्ता को मैंने उसमें लिपिबद्ध किया था। मैंने आचार्य भगवन् को समाधि भक्ति भी सुनायी थी। लोग कहते हैं याद करने का क्या फायदा है? तुम क्या जानो याद का क्या फायदा है? मैं जानता हूँ याद का फायदा क्या है? हमारे हाथ में आचार्य श्री का पाँव, और एक हाथ में हमारे घी था, एक हाथ से पाँव को पकड़ा था और घी लगाता जा रहा था, वैयावृत्ति कर रहा आचार्य भगवन् विद्यासागर जी महाराज की। और ऐसा खाली अवसर कब मिलेगा? तो उसी समय हमने समाधि भक्ति सुनायी, पुनः दर्शन की विनती सुनाई, और इसके साथ ही, ते गुरु मेरे उर बसो ये तीन विनती सुनायी थी। करीब साढ़े छः से साढ़े सात बजे का काल होगा। सुनाने के पश्चात् फिर मंच पर पहुँचे मंच पर आचार्य भगवन् विद्यासागर जी विराजमान थे, और मेरा संघ विराजमान था। तो हम लगभग पाँच, छः साधु विराजमान थे, बाकी संघ अनुपस्थित था, लेकिन पधारे। मैंने आचार्य भगवन् विद्यासागर जी महाराज की पहले पूजा की, चैतन्यचमत्कारी बाबा, ये पूरी पूजा मैंने द्रोणगिर में लिखी थी, और लिखने के पश्चात् पहली बार, मैंने आचार्य विद्यासागर जी की ही वह पूजा की थी। पूरी तन्मयता के साथ पूजा का अनुष्ठान किया। उसके पश्चात् मेरा प्रवचन हुआ, मेरे पश्चात् आचार्य भगवन् विद्यासागर

जी का प्रवचन हुआ। फिर मिलन के पश्चात्, मैं दोपहर में 3 बजे से 5 बजे तक आचार्य भगवन् विद्यासागर जी के पास बैठा। एक दिन पूर्व शाम को आगवानी के लिए पहुँचा, वहाँ पर आगवानी मैंने की, इस तरह से दूसरे दिन छोड़ने के लिए भी गया, इस तरह से यह कार्य हुआ, उस समय के प्रसंगों में बहुत अच्छे–अच्छे प्रसंग लिखे हैं, जो मैंने प्रश्न किये, चर्चा की, वार्ता की, मैं द्रोणगिर चातुर्मास में था। उस चातुर्मास को हम विशुद्धि वर्षायोग कह सकते हैं। मुझे एक ही रात में नौ स्वप्न आये थे, उन स्वपनों को मैंने डायरी में लिखा, मेरा कार्य था, कि प्रतिदिन की डायरी नोट करना, स्वप्न भी आये तो भी लिखना, कोई विशिष्ट व्यक्ति आया, उसने कोई विशिष्ट बात कही, उस बात को लिखना, चिंतन आये तो, चिंतन को भी लिखना स्वप्न भी लिखना। क्योंकि स्वप्न में हमें यह पता नहीं होता है, यह सब क्या फल देगा? मैंने लिख दिये, दशहरे के स्वप्न थे, लिखने के बाद डायरी बंद हो गयी, और विहार हो गया। लगभग छः महिने के पश्चात् दमोह में आया, तो जिस तरह मैंने स्वप्न देखा था बगीचा देखा था, और उसी तरह का दृश्य देखकर मैंने कहा, यही स्थान है, यही क्षेत्र है, मैंने पूर्ण संघ के साथ आचार्य भगवन् श्री विद्यासागर जी के दर्शन पाये। इस तरह से यह मेरा पहला दमोह का मिलन हुआ, उसके पश्चात् दूसरा मिलन हमारा कुण्डलपुर में हुआ। दमोह में चैतन्य चमत्कारी बाबा वाली पूजा भी सुनायी। आचार्य भगवन् विद्यासागर जी ने उस समय बोला था, क्या सुनाऊँ? प्रवचन सुनाऊँ। यह दमोह वाले मोह छोड़ते ही नहीं। दम है, तो मोह छोड़ो। दमोह है–दम है, तो मोह छोड़ो, मोह छोड़ने में दम है, दम तो उसी के पास है, जिसने मोह छोड़ा, मोह छोड़ा तो दम। मृग की नाभि में कस्तूरी रहती है लेकिन मृग कस्तूरी के लिए बाहर वन में खोजता है, उसी तरह यह संसारी जीव, निज आत्मा में सुख होता है फिर भी, बाहर जग में खोजता है। यह जीव की भूल है, जीव को चाहिए कि इस भूल को छोड़े, और भूल छूटेगी, कब? बोलो दमोह वालो, जब मोह को छोड़ने में दम लगाओगे। तब भूल छूटेगी। यह प्रसंग बन गया, तो मैंने आपको सुना दिया।

प्रिय बंधुओ !

वैयावृत्ति के क्षणों में भी अच्छा मार्ग दर्शन दिया। फिर एक ही चौके में, हमारा और आचार्य श्री का दोनों का आहार हुआ, किसके यहाँ हुआ बताऊँ? अभी आचार्य भगवन् विद्यासागर जी के संघ में जो निर्मोह सागर जी महाराज हैं, उनके घर में आहार हुआ था।

(सुनील वकील साहब) पहले आचार्य भगवन् का परिपूर्ण विधिवत् आहार, फिर उसके पश्चात् अपना आहार शांति से किया। तो तात्पर्य यह है कि कौन कहाँ, किस रूप में प्राप्त कर ले, मैंने तो सीधा एक सूत्र सीखा, यदि विनय है, तो तुम कहीं से भी प्राप्त कर सकते हो। जीवन में विनय बहुत बड़ी उन्नति का द्वार है, हम विशुद्ध सागर जी महाराज से अनेकों बार मिल लेते हैं, अभी मैं श्रमणवेलगोला में एक दिन बीमार क्या हो गया, मेरे कमरे में आ. वर्धमान सागर जी महाराज, देवनंदी महाराज, आ. विशुद्धसागर जी महाराज, आ. पुष्पदंत सागर जी महाराज, आ. सुविधि सागर जी महाराज, आ. चंद्रप्रभ सागर महाराज ने सुना की बीमार है, तो सब के सब पल–पल में आ रहे थे, मैंने कहा महाराज आप लोग इतना मत करो। क्योंकि, मैं सबके पास जाता था, मैं श्रमणबेलगोला में सबसे मिला, विशुद्धसागर जी के संघ के साधु रात भर मेरे कमरे में, सेवा करते रहे, मैं कब सोया, कब जागा, मुझे पता ही नहीं, लेकिन वह रात भर जागते रहे। तात्पर्य यह है जहाँ भी मैं रहा मुझे सबका अपार स्नेह मिला, चाहे श्रावक हो या साधु, जिसने मुझे पहचान लिया, ना पहचाना, नहीं देखा, वह किसी की बात में आ जाये, वह बात अलग है, लेकिन जिसने मुझे एक बार देख लिया, मेरे स्वभाव को एक बार जान लिया। गुरुवर विरागसागर जी महाराज अभी दमोह में मिले, तो हम अपने गुरु जी के पास इतना बैठते, सभी लोग बोले–महाराज श्री आप इतना बैठते, हम लोगों को समय ही नहीं मिलता, हमने कहा आया है समय, अब हमारी दीवाली है। मैं एक दिन में पाँच बार अपने गुरुवर जी की, वैयावृत्ति करता था। तो जब इतनी वैयावृत्ति करुँगा, तो कुछ न कुछ उपलब्धि पाऊँगा, उपलब्धियाँ मिलती है, सेवा से। जब हम पैर को घी लगाते है, तो सिर्फ घी ही नहीं लगाते उनके चरणों की पवित्र ऊर्जा को प्राप्त करने जाते हैं, देखने वाले को दिखता है, कि हम घी लगा रहे है पानी लगा रहे हैं। लेकिन सत्य बात हैं, हम लगाते तो पानी है, लेकिन हम स्वयं अपने आप में, जिनवाणी को प्राप्त कर लेते हैं। साधुगण झरने होते हैं जिन झरनों के पास, मात्र विनय के साथ, बैठ भर जाओ, सब कुछ प्राप्त होता जायेगा। सेवा बहुत बड़ा सौभाग्य मानकर की जाती है। आचार्य भगवन् श्री विद्यासागर जी महाराज कुण्डलपुर में, आँख बँद किए थे, उनको आँखों में तकलीफ थी। आँखों में लालिमा थी। विहार करके आये थे आचरण सागर जी महाराज ने पैर छुए, तो बोले हाँ अभी चक्षुदर्शन तो बंद है। पर अचक्षुदर्शन तो चालू है मेरा।

मैं समझ गया, तब मैंने कहा महाराज आचरण सागर ठण्डे हाथ हैं, ठण्डे हाथ मत लगाओ, फिर उन्होंने गर्म किये। फिर मुझे वैयावृत्ति कि आज्ञा लेना थी, कि वैयावृत्ति कर लूँ, तो मैंने कहा–महाराज श्री!

अभी तो कर कमलों से पदकमलों को छू लेने दो।

फिर तो कमलों को भी, छूने नहीं मिलेगा।।

आचार्य श्री बोले – चाहता तो मैं भी यही हूँ।

कुण्डलपुर के बड़े बाबा के दर्शन किये, मंदिर के शिखर का पूरा निरीक्षण किया, मैं सभी जगह साथ में ही था। किसी को कुछ मिले या न मिले मुझे भरपूर मिला, मैंने पादप्रक्षालन भी किया, मैंने पूजा भी करायी, मैंने प्रवचन भी किए, मैंने आहार भी साथ में किया, सब कुछ लाभ मुझे मिला, चाहे वह आचार्य भगवन् विद्यासागर जी महाराज हो, चाहे वर्धमान सागर जी हो, चाहे पुष्पदंत सागर जी हों, पुष्पदंत सागर जी और हमारा मिलन अद्‌भुत मिलन हुआ, रास्ते में कम से कम चार पाँच बार मिलन हुआ वह दौड़कर के आये थे लेने के लिए, तो इस तरह से जीवन में **विकल्प नहीं, विनय भाव रखें** उपलब्धि होती जाती है। और फिर क्षयोपशम ज्ञान की स्थिति है, बीच में कौन से भव्य जीव कैसे आ जायें, और उपलब्धि से वंचित कर जायें, या हो सकता है, किस जीव की उन्नति किस प्रकार होना है, उस जीव की उन्नति उसी प्रकार होगी, इसलिए बस।

होगा कल्याण इसी विधि से इतना ही श्रद्धान करके आगे बढ़ते जाओ। विकल्प मत करो, जितना मिल गया उतने में खुश। आगे के लिए प्रयासरत योगी अपने शरीर को भी नहीं जानता। वस्तु स्थिति यह है, मैं सन्मति सागर जी महाराज को भुला नहीं सकता, तपस्वी सम्राट सन्मतिसागर जी महाराज से मेरा चार बार मिलन हुआ, करगुँआ, कानपुर, कचनेर, औरंगाबाद, हर बार में, कुछ न कुछ उनसे मिला। मैंने पूछा–ठंडी के मौसम में यह श्रावक आपको मट्ठा (छाछ) देते हैं, तो आपको बीमारी नहीं होती। बोले श्रावक लोग इतनी भक्ति से देते हैं, कि मट्ठा तो क्या यदि विष भी आ जाये तो वह भी अमृत बन जाये। सन्मति सागर जी की अपनी एक विशेषता थी। मेरा जब कानपुर में मिलन हुआ तो मैं था, और मेरे गुरु जी विरागसागर जी उसी चौके में थे, और सन्मतिसागर जी महाराज भी, तीन पीढ़ी के साधुओं के उस दिन एक चौके में आहार हुए थे, मैं था, मेरे गुरु और गुरु के गुरु सन्मति

सागर जी भी, तीनों एक जगह थे। इसके पश्चात् जब औरंगाबाद में मिलन हुआ, तब चार पीढ़ी के साधु एक साथ थे हमारे शिष्य थे, मैं था, मेरे गुरु थे, गुरु के गुरु थे, तब अद्‌भुत् दृश्य बना था, और जब तक सब का आहार शुरु न हो जाये, सामान न पहुँच जाये, तब तक तपस्वी सम्राट अपनी अंजुलि खोलने वाले नहीं हैं, ऐसी विशेषता उनकी थी। आचार्य भगवन् सन्मति सागर जी महाराज की कृपा मेरे ऊपर रही, कभी–कभी मैं अपने आपको बड़ा सौभाग्यशाली समझता हूँ, कि उम्र भले ही छोटी है, लेकिन मैंने भारत देश के सब साधुओं से पाया है, सबसे पाया है, लगभग एक हजार साधुओं से मेरा मिलन हो चुका होगा। अभी भारत में यदि 80 आचार्य हैं, तो 60–65 आचार्यों से मेरा मिलन हो चुका होगा जिस क्षेत्र में मेरा विहार हुआ, आसपास में कोई भी साधु दिखा, तो मेरा ध्येय रहता है कि मैं एक बार तो मिलूँगा, दूसरी बार आप जानों।

भैया! यह क्या हैं? यह कैसा हैं? किसका हैं? कहाँ से हैं? कहाँ पर हैं? इन विशेषताओं में न जाओ तो चित्त नहीं उलझेगा। ज्यादा मत सीखो। तुम लोग ज्यादा पढ़ते हो तो ज्यादा उलझते हो। ज्यादा नहीं पढ़ना चाहिए, सिर्फ तीन ही अक्षर काफी हैं, सीधे न पढ़ पाओ तो उल्टे पढ़ लो। 26 पूरे न सही, तो उल्टे क्रम के तीन पढ़ लो। *X, Y, Z,* मात्र तीन ही काफी हैं। तात्पर्य ये है, कोई आपके सामने, महत्त्वहीन बात आती है, प्रयोजनहीन बात आती है, उसको टाल दो। *X, Y, Z,* कौन है ये, कहाँ से आये? प्रयोजन नहीं है। तो आप उस पर ज्यादा, विचार विमर्श करके अपनी शक्ति को खर्च मत करो। ऐसा योगी, बाहर को जानने की कोशिश नहीं करता, कभी–कभी लोग कहते हैं। हम महाराज के पास गये थे, महाराज ने आशीर्वाद ही नहीं दिया। भैया ! **'स्वदेहमपि नाऽवैति'** वह तो अपने शरीर को भी नहीं जानता, फिर तुम्हें कैसे जानेगा कि तुम कब आये थे। कि कब गये? ध्यान में आ रहा अन्यथा अपन ये सोचे कि महाराज ने तो देखा ही नहीं। महाराज ने तो आशीर्वाद ही नहीं दिया। महाराज नाराज तो नहीं है। भैया! महाराज नाराज नहीं है, महाराज तो अपने राज में हैं। अब अपने राज में होते हैं तो ये बात होती हैं कि बाहर वाला कौन आया, कौन गया? यदि तुम्हीं को देखते रहेंगे तो निज को कब देखेंगे? **'स्वदेहमपि नाऽवैति'** अपने शरीर को भी नहीं जानता ऐसा योगी, योग में परायण होता है, विकल्पों से परे निर्विकल्प साधना में डूबता है।

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

❑❑❑

43

जो जहाँ रहे, वहाँ रम जाता

योो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मा, दन्यत्र स न गच्छति।।

अन्वयार्थ – (**यः**) जो (**जीव**) (**यत्र**) जहाँ पर (**निवसन् आस्ते**) रहता है (**स तत्र**) वह वहाँ (**उस स्थान पर**) (**रतिम् कुरुते**) प्रीति करता है और (**यः यत्र**) जो (**जीव**) जहाँ (**रमते**) रम जाता है (**स**) वह (**तस्मात्**) उस स्थान से (**अन्यत्र**) अन्यत्र कहीं (**न गच्छति**) नहीं जाता।

इस तरह, अपने देह को भी न जानने वाला योगी योग में परायण होता है, आगे कहते हैं कौन कहाँ रमता है? कौन किसमें लीन होता है, **'यो यत्र निवसन्',** जो जहाँ रहता है, वह वहाँ रमता है। रह जायेगा, रम जायेगा। देखो चाहे आत्मा की बात हो चाहे घर की बात हो, जब नयी–नयी बहु घर में आती है, तो उसे घर में कैसा लगता है? अच्छा नहीं लगता, यहाँ ये पड़ा, वहाँ वो पड़ा, अच्छा नहीं लगता, लेकिन धीरे–धीरे उसी घर में रहने लगती है, फिर उससे कहो चले जाओ, तो अब नहीं जाना। उसी तरह से यदि तुम आत्मा में रहने लग जाओगे, तो तुम आत्मा में रमने लग जाओगे जब हमारा उपयोग बाहर में रहता है, तो हम बाहर में रमते हैं, और भीतर में रह जाये तो भीतर में रम जाये। जो जहाँ रह जाये, वह वहाँ रम जाये, आपको प्रारंभ में कठिन लगेगा, ऐसा समझिये। आप निप के पेन से लिखते हो तो वह भी प्रारंभ में खुरदरा चलता है, लेकिन धीरे–धीरे वह भी गति पकड़ लेता है। हम कोई भी कार्य करते हैं, तो शुरु में एक दो दिन व्यवस्था लगती है, फिर चलता रहता है, गाड़ी ने गति पकड़ी कि गाड़ी चलती रहती है।

प्रिय बंधुओ !

इसी तरह से उपलब्धियों का द्वार खुलता है और आप लोग तो बड़े कुशल हो, इंदौर के व्यापारी उद्योगपति बुद्धिजीवी, सब तरह के लोग यहाँ पर हैं, और ऐसे बुद्धिजीवी हैं, कि आज एक चर्चा हुयी, एक का जाना नहीं हो पाया, दूसरे की आगवानी की तैयारी में जुट गये, चलो भाई ठीक है, क्योंकि ऐसा ही होता है द्वार से द्वार खुलते जाते है, और आगे उपलब्धियाँ होती जाती है। **''यो यत्र'** जो जहाँ **निवसन्** ठहरता है, **स तत्र कुरुते रतिम्''**।

एक राजा था, मुनिराज के पास गया, महाराज मैं मरण के उपरांत क्या होऊँगा? मुनिराज ने कहा मरण के उपरांत तुम अपने विष्ठाग्रह में कीड़े होओगे। सत्य सुनने सें डर गया, वह जानता था कि मुनिराज के वचन सत्य हैं। उसने कहा महाराज आप इसका प्रमाण दो कि मैं कीड़ा होऊँगा। उन्होंने कहा, जब यहाँ से लौटकर घर जाओगे, रास्ते में आपको नेवला मिलेगा, चिन्ह देख एक–दो प्रमाण और दे दिए जब वह वह घर लौटा रास्ते में उसने सोचा महाराज के वचन तो सत्य है। घर आया, बेटे से कहा–बेटा ! महाराज का वचन सत्य है। आज से तीसरे दिन मेरा मरण हो जायेगा और मैं कीड़ा हो जाऊँगा, एक काम करना तुम मुझे मार देना, ताकि मेरा भला हो जाये, मैं गंदगी में कैसे रहूँगा। बेटे ने कहा जी पिता जी, मरण भी हो गया बेटे ने जाके देखा तो विष्ठाग्रह में कीड़ा। बेटे ने सोचा इसको छुरी आदि से, ... लेकिन उस कीड़े ने भी जान लिया, यह मुझे मारने आया है, यह बार–बार पास में क्यों आ रहा है? तो वह कीड़ा मल में छिप जाये। बेटे ने जाकर पूछा–महाराज मेरे पिता जी कीड़ा हुये है, उन्होंने कहा था कि मुझे मार देना, लेकिन वह तो छुपते हैं। मुनिराज ने कहा–बेटा ! जो जहाँ रहता है, वह वहाँ रम जाता है, तिर्यंच आयु शुभ है तिर्यंच गति अशुभ है, आयु आ जाये तो व्यक्ति मरना नहीं चाहता। गति में कोई जाना नहीं चाहता, तिर्यंच गति में कोई जाना नहीं चाहता, और तिर्यंच आयु मिल भी जाये तो उस आयु को कोई छोड़ना नहीं चाहता। क्योंकि आयु शुभ है। वह कीड़ा उसमें रह गया तो रम गया। आचार्य कहते हैं– तुम जिस द्रव्य में, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस भाव में, रह जाओंगे, सो रम जाओगे,

घबराओं मत कैसे रहेंगे? रह जाओ, तो रम जाओगे। और रम जाओगे तो फिर कहीं नहीं जाओगे। यह सूत्र है जो जहाँ पर रह जाता है, वह वहाँ पर रम जाता है, वह अन्यत्र नहीं जाता है, चाहे तुम धर्म के क्षेत्र में रह जाओ, चाहे अधर्म के क्षेत्र में रह जाओ, चाहे पुण्य के क्षेत्र में रह जाओ, चाहे पाप के क्षेत्र में रह जाओ। यह इसकी विधि प्रक्रिया को समझ लो क्योंकि आत्मा फिर धीरे–धीरे उसी में लीन हो जाता है। इसीलिए बुद्धिपूर्वक अपने आप को अच्छे स्थान पर रखो। आज तुम गुमाश्ता नगर में धार्मिक लोगों के बीच में रह रहे हो, धीरे–धीरे, रहते–रहते रम जाओगे। फिर कहीं नहीं जाओगे, यदि कदाचित् और किसी भी कॉलोनी में होते, तो तुम वहाँ भी रह जाते, भले एक भी जैन घर न होता, लेकिन दो–चार साल रहे लेते उन्हीं से आपका परिचय हो जाता, उन्हीं में घुल मिल जाते, फिर दूसरी जगह जाने की इच्छा भी नहीं होती। मैं कई बार लोगों से बोलता हूँ कि क्या रखा तुम्हारे यहाँ पर क्या फायदा है तुमको, लेकिन फिर भी नहीं छोड़ा जाता लोगों से, महाराज वही अच्छा लगता है, गाँव के लोगो को कोई धार्मिक वातावरण नहीं मिलता कोई प्रवचन सभायें नहीं मिलती, फिर भी कहीं निकलो, तो नहीं निकल सकते, शहर से वापिस चले जायेंगे क्यों? वहीं अच्छा लगता है।

प्रिय आत्मन् !

तुम यदि स्वरूप में रहोगे तो स्वरूप में रमोगे, स्वरूप में रमोगे तो बाहर जा ही नहीं सकते। आत्मा से बाहर तुम जाओगे कैसे? आचार्य कहते हैं एक बार स्वरूप को जानो, स्वरूप में रहो, तो बाहर का विकल्प नहीं आयेगा, रम तो जाओ, रमने की बात कह रहे है, बोलने की बात नहीं कह रहे, कहने की बात नहीं कह रहे हैं, रमने का मतलब होता है भैया! बार–बार अभ्यस्त हो जाये, कठिन से कठिन कार्य में अभ्यस्त हो जाये, बार–बार अभ्यास दशा का नाम है, रमना, अब रम गया।

अब वह कहीं नहीं जायेगा रम गया। बच्चे अब रम गये, अब वह कहीं नही जायेंगे, अब मैदान को छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे। अब रम गये परस्पर में लीन हो गये। जो रम

जाता है, वह अन्यत्र नहीं जाता है, यदि स्वभाव में रम जाओगे तो विभाव में नहीं जाओगे, क्षमा में रम जाओगे तो क्रोध में नहीं जाओगे, यदि जा रहे हो तो इसका मतलब है, अभी रमे नहीं थे, रम गये होते तो नहीं जा सकते थे। इसलिए अपने स्वभाव में रम जाओ, इतनी बार अभ्यास करो, क्षमा, मार्दव, आर्जव में इतनी बार अभ्यास करो कि रम जाओ, रम जाओगे तो फिर अन्यत्र उपयोग नहीं जायेगा। तो फिर कोई विकल्प नहीं आयेगा, इस तरह से हम 43वीं कारिका देख चुके हैं,

❑❑❑

44

साम्यभावी योगी कर्मों से छूटता है

अगच्छस्तद्विशेषाणा मनभिज्ञश्च जायते।
अज्ञातद्विशेषस्तु, बध्यते न विमुच्यते।।

अन्वयार्थ – (**तद्विशेषाणाम्**) उन (**शरीर आदि पर पदार्थों के**) विशेषणों **विशेषताओं** को (**अगच्छन्**) न जानता हुआ (**अनभिज्ञ:**) अजान (**जायते**) बन जाता है (**च**) और (**अज्ञाततद्विशेष**) उन विशेषताओं पर ध्यान न देने वाला (**न बध्यते**) कर्म से नहीं बँधता (**तु**) बल्कि (**विमुच्यते**) छूट जाता है।

आचार्य भगवन् इस बात को बहुत अच्छी तरह से समझा चुके हैं कि उन शरीर आदि पर पदार्थों की विशेषताओं को नहीं जानता हुआ, बहुत प्यारा शब्द आया अनभिज्ञ। अनभिज्ञ का मतलब अज्ञ नहीं है, अज्ञानी नहीं है, अनभिज्ञ का मतलब अप्रयोजन की जानकारी नहीं। मैं अनभिज्ञ हूँ। हम पहचानते हैं, लेकिन उस पहचान से कदाचित कोई पूछता है कि आप उनको जानते हो फिर पूछ लेते क्या काम है, यदि देखा कि राग–द्वेष या हानि का प्रसंग है, तो भैया ! मैं उनसे अनभिज्ञ हूँ। जानते हुए पर भी नहीं जानता अनभिज्ञ दशा यह सबसे महत्त्वपूर्ण दशा है, जिससे हमारा प्रयोजन नहीं है उस विषय में अनभिज्ञ बने रहो, हर चीज को समझने की जरूरत नहीं है, हर क्षेत्र को जानने की जरूरत नहीं है। **जिस द्रव्य क्षेत्र, काल में हमारी उन्नति नहीं है, उस द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से मुझे प्रयोजन नहीं है।** तत्त्व को बहुत अच्छी तरह से लिया कि विशेषताओं को नहीं जानता हुआ यह क्या है? कैसा यह किस प्रकार हैं? कहाँ का है? इनमें न जाता हुआ जीव अनभिज्ञ बन जाता है। उन

विशेषताओं पर अज्ञात ध्यान न देने वाला हमें ध्यान ही नहीं देना। क्यों? हम बाहरी विशेषताओं में जायेंगे, तो भीतर की विशेषता से हम छूट जायेंगे। ध्यान देना। मानकर के चलिए आपके घर में चौका लगा अब आहार देने के लिए पचास लोग आये, पचास लोगों में न तो आपने किसी को जय जिनेन्द्र कर पाया और बाद में पूछा–क्यों! आप आहार देने नहीं आये थे। भैया! आये थे हम भैया ! अनभिज्ञ देखने के बाद भी अनभिज्ञ बनना पड़ता है, क्योंकि अभी प्रयोजन मुनिराज के आहार कराने का है, न की परस्पर के मेल जोल का। आहार के समय गया भी है और परस्पर में जय जिनेन्द्र भी नहीं हो पाया, तो भी सामने वाला बुराई नहीं मानता यह क्यों? क्योंकि यह समय मेल जोल का नहीं था। अज्ञात बने रहो, **अज्ञात तद् विशेषस्तु बद्धयते न विमुच्यते।** अज्ञात बने रहने से बंध नहीं होता है। जब बंधेगा नहीं, तो क्या होगा? छूटेगा। नियम से छूटेगा ''**बद्धयते न**'' बँधता नहीं है, क्या होता है? छूटता है। यह बात आचार्य भगवन् ने बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है कि ज्यादा विशेषताओं में मत उलझो। हम परिवार में, समाज में, जितने उलझते जाते हैं उतना दुःख पाते हैं। मोह के कारण हम ज्यादा चिंताये करते है और सूखते हम हैं इसलिए सूखों मत सुख में रहो चिंता मत पालो, और चिंता पालना हैं तो सुख की कल्पना न करो। भाई जीवन भर सुखी रहना है तो आज दुः खी रहलो, और आज सुखी रहना है, तो जीवन भर दुखी रह लों। आज हम प्रवचन सुन रहे हैं, बड़ा कष्ट होता है, लेकिन यह कष्ट के काम भी आचार्य कहते हैं– जीवन में सुख में रहने का काम है, और यदि आज हमें स्वाध्याय में कष्ट हो रहा है, और सोने में सुख हो रहा है, निद्रा में सुख हो रहा है, हम सो जाये। तो आचार्य कहते हैं–आज तो सुख मिल जायेगा, लेकिन जीवन भर दुःख रहेगा। आज जो सुख में बैठे है इनके बचपन की मेहनत का परिणाम है, बचपन में श्रम कर लिया, तो आज सुख में हैं और जिन्होंने बचपन में श्रम नहीं किया, तो बुढ़ापे में मेहनत करो, सत्य है करना ही पड़ेगी। बचपन में श्रम अच्छा कर लो तो जीवन भर आराम करो, और यदि बचपन में आराम कर लिया तो जीवन भर श्रम करने तैयार रहो। आचार्य भगवन् कहते हैं–अनभिज्ञ बनो और अज्ञात बनो, आज बहुत अच्छा सूत्र है, कुछ बातों से अज्ञात बनना चाहिए, विकल्पों मैं नहीं उलझना है। अपना कल्याण करना है, तो अज्ञात बनो। रास्ते से अपन आते हैं किसी का

धक्का लग गया, लग गया, अज्ञात बन जाओ आगे बढ़ जाओ। अर्थात् उलझनों में ज्यादा डूबने की कोशिश मत करो। हम लोग रास्ते में चलते हैं कोई कुछ बोलता है, सुनते आते हैं अज्ञात बने रहते हैं उलझते नहीं हैं आनंद के साथ आगे बढ़ते आते हैं। कहीं जयकारा सुनने मिलता है कहीं कुछ सुनने मिलता हैं। चलते चलो अपनी यात्रा इसी तरह होती रहती है। पानी अज्ञात बना रहता है, आगे बढ़ता रहता है, यदि वहीं रुक जायेगा थम जायेगा, तो आगे नहीं बढ़ेगा।

प्रिय बन्धुओ!

अनभिज्ञ और अज्ञानी बनने की भी कोशिश करें, सब कुछ जानकर के सब में उलझना सार नहीं है, कुछ कम जानो पर उलझों नहीं। इसलिए अनंत तत्त्वों के स्थान पर प्रयोजनभूत सात तत्त्वों को जानने में कल्याण है, इस तरह हमने सारांश देखा।

!! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !!

❑❑❑

45

सुख दु:ख के आधार

परः परस्ततो दु:ख– मात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्, तन्निमित्तं कृतोद्यमा:।।

अन्वयार्थ – (**पर:**) अन्य पदार्थ (**आत्मा से**) (**पर:**) अन्य है अतः (**तत:**) उस अन्य पदार्थ से (**दु:खम्**) दु:ख होता है और (**आत्मा**) आत्मा अपना (**आत्मा एव**) आत्मा ही है अतः (**तत:**) उस (**आत्मा**) से (**सुखम्**) सुख होता है (**अत एव**) इसी कारण (**महात्मान:**) महान् पुरुषों ने (**तन्निमित्तं**) उसकी प्राप्ति के निमित्त (**कृतोद्यमा:**) उद्यम किया था।

प्रिय आत्मन् !

जिनशासन का अमर संदेश, जैन सिद्धांत कि स्याद्वाद धारा में **गुम्फित** अनेकांतमय में वस्तु तत्त्व को प्रकाशित करने वाली, तीर्थंकर की दिव्य देशना का सारभूत, आत्म शांति का अमोघ उपाय, स्वपर हित साधक, मैत्री, प्रेम, एकता का सम्बाहक, पारिवारिक संगठन, सामाजिक संगठन का, अद्भुत सूत्र प्रस्तुत करते हुए, श्री पूज्यपाद देव, जगत की पीड़ा को पढ़ चुके हैं, जगत पीड़ा में पड़ा हुआ है, पूज्यपाद स्वामी, जगत के जीवों की पीड़ाओं को पढ़ रहे हैं, लेकिन स्वयं पीड़ा में नहीं पड़े, जगत की पीड़ा को पढ़ चुके हैं, जगत पीड़ा में पड़ा हुआ हैं, उनकी पीड़ाओं के निदान के लिए समस्याओं के समाधान के लिए, आगम में जो उपाय थे, आगे ऐसी पीड़ायें न हों, उनके निदान को प्रस्तुत करते हुए, कार्य अपने पूर्वचर, सहचर, उत्तरचर कारण को लिए होता है, इस तत्त्व को ध्यान में रखते हुए, आचार्य

भगवन् कहते हैं–हे जीव ! दुःख और सुख का कारण क्या है? इसको दर्शाते हुए, बहुत अच्छा मार्मिक चिंतन देखिए, पूज्यपाद आचार्य प्रज्ञ थे किंतु हमारे हृदय के मर्मज्ञ थे। **जिन्होंने शल्य चिकित्सा के द्वारा तन को स्वस्थ बनाया, तो वात्सल्य चिकित्सा के द्वारा मन को स्वस्थ बनाया।** ऐसे पूज्यपाद स्वामी का यह आध्यात्मिक रसायन, हमारी आत्मा को सम्पुष्ट करेगा, आइये पर : परा यदि स को विसर्ग हो जाये तो परस्पर हो जाये **पर : परा** ' पर–पर है भैया ! पराये, पराये हैं, अपने–अपने हैं। अपना–अपना है। जब काम आये, अपनोई काम आये। भैया! ये बुंदेलीभाषा के प्यारे शब्द कब सुनने मिलेगे? **जब काम आये सो अपनोई काम आये, पराव काम ने आय। तुम कित्तऊ पराव खो अपनो कत रइयो, मानत रयियो, जब काम परे, सो अपनो काम आये।** आचार्य भगवन् कहते हैं–जो तुम कह रहे, वही मैं आगम में कह रहा हूँ। अपना–अपना है। पराया–पराया है। पराव दुः खई दे, अपनोई सुख देहे। तो भैया ! बात कहाँ खटक गयी, बात यहाँ अटक गयी, कि तुम पर को अपना मानके भूल गये हो। अपने खो तो तुमने अपनो मानोई नईया। पर खो ही अपनो मानो। बहुत गहन तत्त्व है, कहते समय हम पूरा क्लीयर कहते हैं, लेकिन परिवार वालों को अपना मान लेते हैं, शरीर को अपना मान लेते हैं, धन को अपना मान लेते हैं, रिश्ते को अपना मान लेते हैं, सम्बन्धों में अपना जोड़ लेते हैं, समाज को अपना मान लेते हैं। अब बताओ अपना कौन है? आत्मा के सिवा तेरा है क्या? **'आत्मा एव आत्मा'** आत्मा ही अपना है। **ततः सुखं** उससे सुख मिलेगा। जब तू आत्मा को अपना मानेगा, तब सुख मिले, और शरीर को पर माने, शरीर से उत्पन्न हुए को पर माने, तब सुख मिले। तनुज–तनुजा क्या बोलते बेटा को? तनुज, बेटी को तनुजा, तन से उत्पन्न हुआ तनुज, तो स्पष्ट बोल रहे जब तनुज है, तो अपना कैसे मानेंगे? आचार्य कहते हैं– **परः** वह बेटा भी पर है, वह बेटी भी पर है, परिवार के सभी सदस्य तुझसे भिन्न हैं। कण–कण स्वतंत्र है। तो क्या भाई–भाई स्वतंत्र नहीं। जब मतदान का वक्त आता है। तो भाई का वोट अलग होता है। बहिन का वोट अलग होता है, माता–पिता पुत्र का मतदान अलग होता है, यह क्या सूचित करता है? प्रत्येक नागरिक स्वतंत्र है। यह चुनाव प्रणाली यह सिद्ध करती है, कि प्रत्येक नागरिक स्वतंत्र है, जैन दर्शन तो इसको अनादि से कहता आया है, कि प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है। **परः परा,** अभी देखना

यह चुनाव प्रणाली हुयी, एक ही परिवार का एक मत कहीं जायेगा, अन्य मत कही जायेगा, **'णाणा जीवा णाणा कम्मा' अतएव महात्मान:,** अतएव महापुरुषों ने, **तन्निमित्तं कृतोद्यमा:'** क्या किया? महान पुरुषों ने उसकी प्राप्ति के लिए, किसकी प्राप्ति के लिए? सुख की प्राप्ति के लिए, आत्मा का उद्यम किया, आत्मा में पुरुषार्थ किया।

आत्मा की साधना की, आत्मा की आराधना की, आत्मा में लगन लगायी, आत्मा से जुड़ा। **तन्निमित्तं** आत्मा के निमित्त भैया ! अपन लोग यहाँ स्वाध्याय करने आये, किसलिए आये? आत्मा के निमित्त। अपन ने यह मंदिर बनाया किसलिए बनाया? पूजा के लिए साधुओं को लाये, मेरे लिए नहीं लाये। विभवसागर भूल में मत रहना कि तुम्हारे लिए आये, नहीं। **''तन्निमित्तं कृतोद्यमा:''** आत्म सुख में, उपादान कारण तो आप सब का आत्मा ही है, लेकिन बहिरंग कारण विभवसागर का उपदेश हो सकता है, और क्षणिक है, यह उपचार की बातें है, लेकिन सत्य तो इसमें यह है आत्म सुख के निमित्त लाये हैं। आपने बुलाया तो यह जानकर नहीं बुलाया कि विभवसागर है सो बुलाया, यह जानकर बुलाया कि मुझे धर्म लाभ होगा, आप अपने घर में बहु को लाते हो, यह जानकर नहीं लाते कि उसकी बेटी है सो ले आये, इसलिए लाये कि मेरी वंश की परम्परा चले। इस लता के फल से मेरे वंश की परम्परा चले। उसी तरह हम साधु को समाज में, एक उद्देश्य से लाते हैं कि आत्म सुख का निमित्त हो तुम, साधु यह न सोचे कि यह लाये, या समाज ऐसा सोचे कि हम लाए, एक बात है आचार्य कह रहे हैं– व्यवहार पक्ष में इसका भी ध्यान देना, पर परमार्थ पक्ष में **तन्निमित्तं'** आत्मा के लिए लाये। साधु हम किस लिए बने हैं? पैर पुजवाने के लिए नहीं बनें, **आत्म निमित्तं।** मुख्य प्रयोजन हमारा क्या है? आत्म निमित्त। एक व्यापारी दुकान खोलता है, तो उसका उद्देश्य लाभ होना चाहिए। उसी तरह से हमारा आत्मा का लाभ। आत्मा ही अपना है। आत्मा का प्रयोजन साधना ही साधना है। आत्मा में लीन होना ही हमारी चर्या है। ऐसा लक्ष्य बनेगा तब सुख होगा। सुख और दु:ख दो धाराओं में बाँट दिया, सुख–दु:ख, पर दु:ख निज सुख, आत्मा पक्ष और पर पक्ष, अपना सुख पराया दुख, यह 45वीं कारिका का उपयोग अंजान से अंजान, मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी करता है, लेकिन भूल यहाँ होती है, कि वह पराये को ही अपना मान बैठता है, रिश्तों को अपना मान बैठता है, मोह

और अज्ञान के अधीन स्वभाव को भूलकर के, कुछ पराओं में से ही कुछ को अपना मान लेता है।

कल तक यह पराये थे, आज एक सम्बन्ध हो गया, अब यह अपने हो गये। पार्टी की तरह, कल तक पर पार्टी का था, आज अपनी पार्टी में सम्मिलित हो गया तो अपना। आचार्य कहते हैं, **जो अपना है, वह त्रिकाल में अपना ही रहेगा, जो अपना नहीं है, वह त्रिकाल में अपना होगा भी नहीं। जो तुम से छूट जाये, रूठ जाये, टूट जाये, फूट जाये, वह तुम्हारा है ही नहीं।** तुम्हारा है ज्ञान–दर्शन, वह तुम से तीन काल में जुदा नहीं होगा। हाँ! विभवसागर जी महाराज आज आये हैं, कल चले जायेंगे, इसका मतलब है अपने हैं नहीं सत्य को स्वीकारना, अपना तो सिर्फ आत्मा ही है। स्वतत्त्व तो आत्मा ही है, विभवसागर साधु अवस्था की अपेक्षा पर तत्त्व हैं। लेकिन परतत्त्व में परमतत्त्व हैं, क्योंकि कल्याण में सहायक हैं। रिश्ते, बन्धु सब पर तत्त्व हैं। पर तत्त्व दो तरह के होते हैं, एक अकल्याणकारी पर तत्त्व, एक कल्याणकारी परतत्त्व। आचार्य, उपाध्याय, साधु आत्मा के प्रयोजन में निमित्त होने से कल्याणकारी परतत्त्व हैं। आत्मा का प्रयोजन सम्यग्दर्शन इन से सधता है, सम्यग्ज्ञान सधता है, सम्यक्चारित्र से सधता है, इसलिए निमित्त आचार्य, उपाध्याय, साधु कल्याणकारी परमतत्त्व है। उपादेय है कुछ क्षण के लिए, जब तक स्वयं को केवलज्ञान न हो जाये, जब तक शुक्लध्यान की यात्रा शुरु न हो जाये, तब तक आचार्य उपाध्याय, साधु का समागम अनिवार्य है। जब तक स्वयं साइकिल चलाने न लग जाओ, तब तक पीछे से मदद करने वाले की आवश्यकता पड़ती है। आप जब गाड़ी चलाना सीखते हैं, तो कोई न कोई ड्राईवर चाहिए पड़ता है। **महात्मानं'** महापुरुषों ने, कहा पुरुषार्थ किया? महानपुरुष सामान्य पुरुषों की बात नहीं करते। पूज्यपाद स्वामी! महापुरुष है, महापुरुष यह कह रहे कि महात्माओं ने, उद्यम किया, महात्मा वह है, जो आत्मा के लिए पुरुषार्थ करे। महात्मा शब्द का प्रयोग इष्टोपदेश में आया है। यह शब्द पकड़ने का शब्द है, आत्मा को आत्मा, पर को पर जाने, और पर को दुःखरूप जाने, निज आत्मा को सुख रूप जाने, और निज आत्मा में पुरुषार्थ करे, वह महात्मा है। महात्मा ने क्या किया? यदि आप महात्मा हो, श्रेष्ठ आत्मा हो, और प्रत्येक आत्मा महात्मा हो सकता है जो आत्मा पर को पर जाने, निज को निज जाने,

और पर को दुखरूप माने, निज को सुखरूप, मानकर के निज में पुरुषार्थ करने लग जाये वही महात्मा है। महान आत्मा बनाओ समास, **महान चासौ आत्मा महात्मा।** इस तरह से महापुरुष चेतना का सत्कार करे – शुद्धात्मा का सत्कार करे, पंचपरमेष्ठि का सत्कार करेगा, आत्म कल्याण कारक तत्त्वों का सत्कार करेगा। और जो महात्मा नहीं है, तो फिर क्या बचा? अब आचार्य को कहना अच्छा नहीं लगा, इसलिए महात्मा कह दिया, लेकिन इससे दूसरा पक्ष, विपरीत पक्ष, विलोम भी समझ लेना चाहिए कि जो आत्मा को आत्मा रूप नहीं मान रहा है, और आत्मा की साधना में नहीं जुट रहा है, आत्मकल्याण में नहीं जुट रहा है, फिर वह क्या बचा? बहिरात्मा, दुरात्मा, तो वह दुरात्मा है, तो वह क्या जानता है, क्या करता है, उसका संसार भ्रमण रूकता की नहीं रुकता? अगली कारिका में अविद्वान वह क्या है? जो इस तरह के कार्य न करे, 45वीं कारिका में, सबसे पहले तो आपको महात्मा बनाना चाहते है, कि आप महात्मा बन जाइये। आत्मा हो अपने के लिए मेहनत करो, पर में क्यों लगे हो, पर की पीड़ायें, उलझनों को छोड़ो, कुछ समय अपने लिए निकालो। **परः परा 'ततो दु:खम्, आत्मैव आत्मा ततः सुखम् अतएव'** इस कारण ही महात्माओं ने, **तन्निमित्तं** उस आत्म सुख के निमित्त, **कृत उद्यमम्** 'पुरुषार्थ किया, साधना की, मोक्ष मार्ग चुना, उपसर्गों को सहा **मार्गाच्यवन – निर्जरार्थं परिषोढव्या: परीषहा:** (9) कि स्थिति को लाये, इस रहस्य को हमने जाना,

❑❑❑

46

पर के अनुराग का फल

अविद्वान पुद्‌गल द्रव्यं, योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोः सामीप्यं, चतुर्गतिषु मुञ्चति।।

अन्वयार्थ – (**यः**) जो (**अविद्वान्**) मूर्ख बहिरात्मा (**पुद्‌गल– द्रव्यम्**) पुद्‌गल द्रव्य को (**अभिनन्दति**) आत्मीय भाव से समादर करता है (**तस्य जन्तोः**) उस (**बहिरात्मा**) प्राणी का (**तत्**) वह (**शरीर आदि पुद्‌गल द्रव्य**) (**जातु**) कभी भी (**चतुर्गतिषु**) चारों गतियों में (**सामीप्यं न मुञ्चति**) समीपता नहीं छोड़ता।

आगे आचार्य कहते हैं, अविद्वान, जो विद्वान नहीं है, **पुद्‌गलद्रव्यं अभिनंदति'** वह क्या करता है? पुद्‌गल द्रव्य का आदर करता है, सत्कार करता है। आदर करना, सत्कार करना। पुद्‌गल का क्या सत्कार होता है। आपको जरूरत नहीं भी है कि आप कोई नयी वस्तु खरीदे, लेकिन रास्ते से जा रहे थे, बाजू में दुकान लगी थी, बहुत अच्छा माल दिखा खड़े हो गये, अब खड़े होने पर देखा कि सस्ता मिल रहा है, लेलें, यह क्या हो गया? ये पुद्‌गल का सत्कार, भैया ! आपने पच्चीस वर्ष कमायी में लगा दिये, और फिर एक अच्छा सुन्दर मकान बना लिया किसका सत्कार हो रहा? यह कारिका **अभिनंदति पुद्‌गलद्रव्यम्'** पुद्‌गल द्रव्य का अभिनंदन, किसका अभिनंदन पुद्‌गल का अभिनंदन, अभी मकान बन गया, अब गृहप्रवेश, सामान्य में पंचपरमेष्ठि का जाप करके भी हो सकता था, भक्तामर का पाठ करके भी हो सकता था, लेकिन गृहप्रवेश का ओचित्य भीतर में एक ललक की व्यक्ति आये, देखे और फिर बोले, बहुत अच्छा बना। महत्वाकांक्षा भीतर में बैठ जाती है कि मकान

बन गया तो सब लोग पूँछे। पुद्गल द्रव्य का आदर, आज विज्ञापन का युग है, आज टी. वी. लेना सस्ता है, लेकिन टीवी पर दिखाये जाने वाले विज्ञापन को खरीदना बहुत महँगा है। बच्चे विज्ञापन को देखते हैं, और कहते हैं हमको यह चाहिए।

यह किसका सत्कार कर रहे? हर दस दिन में बाजार में नयी गाड़ी उतर रही है, किसका सत्कार है? पुद्गल का, कोई जरूरत नहीं है, कि नयी गाड़ी आये, लेकिन बाजार में नयी आयी है, पैसा अथाह है, क्या करें? यह लेलो, सेकेण्ड हेन्ड बेच दो, भैया! आचार्य ने अपरिग्रह भावना का सूत्र लिखा है।

मनोज्ञाऽमनोज्ञेन्द्रिय–विषय–राग–द्वेष–वर्जनानि पञ्च ॥8/7॥ (त.सू.) मनोज्ञ मे राग का त्याग, अमनोज्ञ में द्वेष का होना यह परिग्रह की भावना है, यदि तुम परिग्रह नहीं चाहते हो, तो अमनोज्ञ में द्वेष मत करो। देखिए, अभी आप जरा बोलदें, तत्काल अमनोज्ञ मे द्वेष, बुरा को बुरा कहने में क्या पाप है? और अच्छे को अच्छा कहने में क्या पाप है? भैया! मैं बोल रहा हूँ, वेद जी साहब! आप बहुत अच्छे कपड़े पहने, आपकी ड्रेस बहुत अच्छी लग रही, समझ रहे, अच्छे को अच्छा कहा एक बात है, अरे भैया ! आप कहाँ की ड्रेस पहनके आ गये, अब क्या हो गया? बुरे को बुरा कहा आचार्य कह रहे हैं– बुरे को बुरा कहा, अच्छे को अच्छा कहा लेकिन इसमें अपरिग्रह व्रत की भावनाओं का नाश हो गया। परिग्रह पाप हो गया। तत्त्वार्थ सूत्र में जब मैंने पढ़ा, कि अमनोज्ञ में द्वेष करने से यह अपरिग्रह का भाव नष्ट हो रहा है? फिर उसको समझा कि आप से यदि मैं कह दूँ भैया ! ये घड़ी आपकी अच्छी नहीं लग रही, कौन से जमाने की पहनते हो आज कल बाजार में एक से एक आ रही, यह कौन से समय की लेके बैठे हो? अब क्या होगा? ऐसा बोलने से, आपके अंदर नयी वस्तु लेने की भावना प्रबल हो जायेगी, और यह वस्तु परिग्रह बन जायेगी। जो द्रव्य तुम्हारा आत्म कल्याण में लग सकता था, उस द्रव्य को मैंने परिग्रह में लगा दिया। आचार्य ने कहा–पुद्गल द्रव्य का आदर, करने पर जीव का संसार बढ़ता है, मनोज्ञ है, सुंदर है, दुकान पर यह दिखाया जाता है, कि पहले आप पसंद कर लीजिए फिर भाव बताता हूँ, कारण पसंद हो गया। पहले आप माल पसंद कर लीजिए, फिर हम पसंद के भाव बता देंगे। तात्पर्य यह है, जब मनोज्ञ में राग जागता है, तो परिग्रह की भावना होती है। जितना हानिकारक मनोज्ञ का

राग है, उतना ही हानिकारक अमनोज्ञ का द्वेष है। जिससे संसार छूटता नहीं है **'चतुर्गतिषु न मुञ्चति'** ए पुद्गल के प्रति, हमारा राग वचनों से नहीं है, हमारा ज्ञान तत्त्व ज्ञान से है और तत्त्वज्ञान कल्याण के क्षेत्र में है, और यदि पुद्गल से ही राग हो जाये, महाराज सुंदर दिखते हैं, ये सोचकर के हम उपदेश सुनने आये, या कुछ और विशेषतायें, तत्त्वज्ञान की महिमा तो समझमें नहीं आ रही, और अन्य कारणों से हम महाराज से जुड़े हुए हैं, तो फिर प्रयोजन क्या है? आत्मा का ध्यान तो लक्ष्य में ही नहीं है, तो फिर तुम्हारे लिए सिद्धि क्या हुयी? आचार्य कहते हैं– अविद्वान, पुद्गल द्रव्य का आदर कर रहा है। क्या मोबाइल है? क्या गाड़ी है? क्या टिप टॉप बँगला है? क्या स्टाइल है? यह क्या है? पूज्यपाद की भाषा हमें समझना होगी, कि यह पुद्गल द्रव्य के प्रति आदर करो, आदर करते रहो। पैसा कमाते रहो, पैसा बनाते रहे मकान। बनाओ, रहना है इसलिए लेकिन उसका कुछ अंश धार्मिक कार्यों में भी, लगाओ। अन्यथा पुद्गल, पुद्गल का आदर। दिन में दस बार घर में पोंछा लग रहा है? एक बार गीला कपड़ा यहाँ से वहाँ तक फिरता है, तो जीव मर जाते हैं, अब उस को कब पोंछोगे? पाप का पोंछा कब लगेगा? कचरा तो साफ हो गया, लेकिन हृदय में जो कचरा जमा हो गया उसमें पोंछा कब लगेगा? पुद्गल का सत्कार हो गया, दीवाल साफ हो गयी, कमरा साफ हो गया लेकिन अपना हृदय, **अविद्वान पुद्गल द्रव्य अभिनंदति** मूर्ख प्राणी पुद्गल द्रव्य का अभिनंदन करता है। अज्ञानी पुद्गल का आदर करता है। लेकिन आचार्य कहते हैं आदर आत्मा का करो, सम्यग्दर्शन का आदर करो, सम्यग्ज्ञान आदरणीय है, सम्यक्चारित्र आदरणीय है। आदरणीय क्या है? रत्नत्रय आदरणीय हैं, आगम आदरणीय हैं, सिद्धांत आदरणीय हैं, आचरण आदरणीय है, इनका आदर करो। यदि जीव

'वपुर्गृहं धनं दाराः पुत्रा मित्राणि' इन्हीं का आदर करता रहा तो जिसका आदर करोगे, उसको ही ग्रहण करोगे। फिर संसार से छूट नहीं पाओगे। जिनका आदर करोगे उन्हीं को प्राप्त करोगे उसी में मोह करोगे, उसी में उलझोगे, तो फिर क्या होगा? वह प्राणी कभी भी, चारों गतियों में साथ नहीं छोड़ता, अर्थात् चतुर्गति में भ्रमण करता है। इसलिए पुद्गल का राग नहीं करो। अभिनंदन करो किसका, आत्मीय अभिनंदन। गुणाभिनंदन, अभिनंदन स्वामी की स्तुति में समन्तभद्र आचार्य ने लिखा– **'गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान्'** पहला

शब्द लिखा गुणाभिनंदन। तनाभिनंदन लिख देते, स्वर्णाभिनंदन लिख देते, वपुअभिनंदन नहीं, गुणाभिनंदन लिखा, अभिनंदन स्वामी, गुणों का अभिनंदन करने वाले थे, और हम गुणों का अभिनंदन करके, जड़ शरीर आदि पुद्‌गल द्रव्यों का अभिनंदन करते हैं, और जिसका हम अभिनंदन करते है, वह हमारे पास ठहरते हैं। संभालके रखते हैं तिजोरी में, जिनका हम आदर करते हैं।

एक बार हम जिसको मूल्य देते हैं, उसको हम अपने पास सँभालके रखते हैं। कर्नाटक में अनेक जगह शास्त्र क्यों उपलब्ध हो जाते हैं? आदर भाव के कारण। भैया! मैंने इंदौर में यह अनुभव किया कि इंदौर वासियों में स्वाध्याय के प्रति बहुत अभिरुचि है, गहरी रुचि है। यदि साधु को अपना विकास करना हो, तो इंदौर, विदिशा यह ऐसे स्थान हैं, कि इन स्थानों को छोड़ना नहीं चाहिए। अन्य जगह, न्याय आदि के क्षेत्र में उन्नति करना हो तो फलटण, नातेपोते, अकलूज, कुम्भोज, बारामति, सोलापुर में साधुओं को निरन्तर भ्रमण करना चाहिए, यह पाँच–छः स्थान महाराष्ट्र में हैं। जैसे समुद्र में कोई एक स्थान पर रत्न होते हैं, उसी तरह से किसी प्रदेश में, किसी मुख्य स्थान पर वह जीव होते हैं। शांतिसागर जी ने अपने 20 साल कुल पाँच स्थानों में लगा दिये। स्वाध्याय के प्रति अभिरुचि यदि कुछ समय के लिए साधु अन्य स्थानों पर रुक जायें, तो ऐसा लगता सब जगह ऐसा ही धर्म होता होगा, भूल ही जाये। ज्ञानमति माताजी ने जब बुंदेलखण्ड में प्रवेश किया, तब उन्हें महसूस हुआ कि बुंदेलखण्ड में कितने लोग धर्म को जानने वाले, मानने वाले, उपासना करने वाले हैं। तात्पर्य है कि स्वाध्याय के प्रति अभिरुचि है। अन्य जगह लोग बोलते है शास्त्र छपेंगे तो क्या होगा? रखे रहेंगे? मैंने देखा भी है, कोई बिरला जीव हैं, जो अध्ययन करते हो, लेकिन यहाँ तो घर–घर में, शास्त्र दिखते हैं। आज एक घर में, मैं पहुँचा आहार के बाद अम्मा जी समयसार जी का स्वाध्याय कर रही थी, मेरी आत्मा गद्–गद् हो गयी, स्वाध्याय कर रही थी। इसलिए साधुओं को निरंतर भ्रमण करके स्थान का चयन करना चाहिए, और चित्त में रख लेना चाहिए कि हमारे योग्य कौन सा स्थान है? और ऐसे योग्य व्यक्तियों का चयन कर लेना चाहिए कि वह हमें ले जायें। निरंतर भ्रमण के बाद ही महसूस होता है कि कहाँ धर्म का, क्या स्वरूप है? भैया ! नदी वर्षा ऋतु में तो बहती ही रहती है,

हर जगह पानी बहता ही रहता है, लेकिन गर्मी के दिनों पता पड़ता है कि कहाँ पानी रुकता है। यदि नदी बहे न तो पता ही न पड़े कहाँ रुकता है। उसी तरह वर्षात में तो सब जगह साधु रहते हैं, लेकिन जहाँ गर्मी के दिनों में साधु प्रभावना के साथ ठहर जायें, अरे वर्षात में तो सम्पूर्ण नदियों में पानी रहता है, सम्पूर्ण धरती पर पानी रहता है, लेकिन गर्मी के दिनों में, जहाँ पानी ठहर जाये, समझ लेना कि वह स्थान मनुष्यों के लिए रहने के लिए सबसे अच्छा स्थान है क्यों कि वहाँ गर्मी में पानी है, वर्षात में तो पानी मिल ही जाता है। उसी तरह साधुओं को देखना चाहिए कि जहाँ गर्मी में सबसे ज्यादा श्रावक उपलब्ध हो जाये, तो समझ लेना चाहिए, कि वह स्थान सबसे उत्तम स्थान है, सर्वोत्तम स्थान है। क्योंकि हम लोग ऐसा अनुमान लगाते हैं, गर्मी में पाँच, वर्षात में पचास, यदि गर्मी के दिनों में पाँच व्यक्ति आ रहे हैं, तो इसका अनुपात है, कि वर्षात में पचास आते हैं। यदि गर्मी में आपके पास सौ व्यक्ति आ रहे है, तो इसका सीधा दस गुना हो जाता है। क्योंकि वह सीजन है। हाँ, वह **न जातु** कदाचित् के साथ वह जीव सामीप्यता को निकटता को प्राप्त नहीं करता। किसकी चतुर्गतिषु यानी संसार की निकटता, समीपता को प्राप्त नहीं करता, वह तो दूर ही दूर भ्रमण करता रहता है, वह संसार समीप नहीं छोड़ता। जब तक पुद्गल में आदर बना रहेगा, तब तक तुम बाहर–बाहर, दूर–दूर की यात्रा करोगे, क्यों? वह आत्मा के समीप ही नहीं आता है, **'सामीप्यं न मुञ्चति'** वह कभी भी चारों गतियों में अपना साथ नहीं छोड़ता, पुद्गल अपनी समीपता नहीं छोड़ेगा। यह लोहा रखा है, यह चुम्बक रखी है, चुम्बक के पास लोहा रख दिया, या लोहे के पास हमने चुम्बक रख दिया, अब चुम्बक ने किसका आदर किया? लोहे का अब वह साथ कैसे छोड़ेगा? उसी तरह आत्मा पुद्गल द्रव्य का आदर करेगा, तो पुद्गल द्रव्य आत्मा का साथ नहीं छोड़ेगा। चिपक जायेगा, जैसे चुम्बक लोहे को अपने पास खींच लेता है, ऐसे ही आत्मा रागादिभावों से पौद्गलिक भावों को अपने पास खींच लेता है। फिर वह पौद्गलिक कर्म छोड़ता नहीं, फिर जब कभी तत्त्वज्ञान जागेगा, फिर छूटेगा। ऐसा सामीप्यपना, इसलिए अभिनंदन आदर सत्कार पुद्गल का नहीं क्योंकि पुद्गल के आदर में ही आत्मा का तिरस्कार छुपा हुआ है, क्योंकि एक ही काल में दो कार्य सम्भव नहीं है। मानके चलिए हमने समय दीवाली को साफ करने में लगा दिया, उतना समय सामायिक हो

पाया कि नहीं? प्रतिक्रमण से गया की नहीं? स्वाध्याय से गया की नहीं। भैया! आचार्य ने जो परिग्रह परिमाण व्रत बताया है, वह इसीलिए बताया कि ताकि पुद्गल द्रव्य में आदर कम हो, यदि परिग्रह प्रमाण नहीं बताते, तो फिर मकानों की सफाई करते–करते जीवन बीत जाये। पुद्गल का आदर मकान की सफाई, कपड़े की धुलायी, शरीर का नहलाना, यह सब पुद्गल का ही सत्कार है और पुद्गल के सत्कार में लगे रहे, मूर्छा भाव जागता रहेगा।

मनोज्ञाऽमनोज्ञेन्द्रिय – विषय–राग–द्वेष–वर्जनानि पञ्च॥ मेरा चिंतन हुआ कि द्वेष करने से परिग्रह कैसे बड़ सकता है? द्वेष में तो हम वस्तु को हटायेंगे, हमें द्वेष हो गया तो हम वस्तु को हटायेंगे, तो परिग्रह घटेगा कि नहीं, क्यों नहीं घटेगा?

मेरा चिंतन चलता रहा तत्त्वार्थ सूत्र पर, जब द्वेष हुआ, तब द्वेष होने पर अपरिग्रह की भावना कहाँ नष्ट हुयी? समाधान मिला द्वेष होने पर परिग्रह घटता नहीं है, **मूर्छा हटे तो परिग्रह घटे**, लेकिन मूर्छा तो विद्यमान है, द्वेष के कारण तुमने इस वस्तु को त्यागा है, तो तुम और वस्तु को अपनाओगे, द्वेष के कारण तलाक दिया है लेकिन तुम दूसरी शादी कर लोगे तीसरी करोगे। आचार्य कहते हैं–मूर्छा का त्याग हुआ कि नहीं? मूर्छा भाव का जब त्याग होता है, तब वहाँ आता है कि तुमने त्याग किया। सर्वार्थसिद्धि में लिखा – यदि कोई परिवार से लड़के–झगड़के जंगल में पहुँच जाये, तो क्या उसे आप त्यागी कहोंगे? बोले–नहीं कहेंगे। क्यों? क्योंकि अभी मूर्छा नहीं छूटी, यदि मूर्छा छूटे तो त्याग, चतुर्गति से भ्रमण छोड़ना है, तो आचार्य कहते हैं, पुद्गल द्रव्य में जो आदर भाव है, मूर्छा भाव इन्होंने आदर शब्द दिया है, उमास्वामी जी ने मूर्छा शब्द दिया है और पूज्यपाद स्वामी ने आदर शब्द दिया है। मूर्छा कहते है तो आप को जरा अच्छा नहीं लगता, लेकिन आदर करना इस आदर को आप जितना समझोगे, यहाँ से आप चले जाइये, रास्ते में किनारे–किनारे पर आपको दुकान लगी मिलेगी, जो–जो सामान खरीदने का भाव जागता जाये, समझना कि यह पुद्गल का आदर हो रहा है। पुद्गल का आदर कौन कर रहा है? **अविद्वान पुद्गल द्रव्यं अभिनंदति** जो पुद्गल का आदर करता है, वह अविद्वान है। **पुद्गल द्रव्य का आदर,** फिर नया फ्रिज, फिर नयी गाड़ी, फिर नया बँगला, पुद्गल का आदर भैया ! समझो सँभलो। अपन सब भ्रष्ट संस्कारी शिष्य हैं, और भ्रष्टसंस्कारी होने के कारण, भ्रष्ट माने भूलना, संस्कार माने

स्मृति। अपन सब स्मृति को भूलने वाले हैं – इसलिए बार–बार यह शब्द कहा जा रहा है, हे जीवो ! सँभलो जितना पुद्गल का आदर कम करोगे, उतना आत्मा का आदर ज्यादा होगा। एक समय में उपयोग एक ही जगह रहेगा, चाहे पुद्गल में टिकालो, चाहे आत्मा में टिकालो, इसलिए एक का आदर करो, अपना उपयोग आत्मा में लगाओ।

!! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !!

—————

47

स्वरूप निष्ठता

(अक्षय तृतीया पर्व)

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहार बहिः स्थिते:।
जायते परमानन्द:, कश्चिद् योगेन योगिन:।।(47)

अन्वयार्थ – (**व्यवहार**) व्यवहार से (**बहिः स्थिते:**) बाहर ठहरे हुए (**आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य**) आत्म–ध्यान में लवलीन (**योगिन:**) मुनि के (**योगेन**) आत्मध्यान के द्वारा (**कश्चित्**) कोई अपूर्व (**परमानन्द:**) परम आनन्द (**जायते**) उत्पन्न होता है।

आचार्य भगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी इष्टोपदेश की इस कारिका में कहते हैं, आत्मा के अनुष्ठान में जो निष्ठा पूर्वक लगा हुआ है, आत्मा के आराधन में, आत्मा के कल्याण में, आत्मा की साधना में, जो निष्ठा पूर्वक, पूरी लगन से लगा हुआ है, वह बाहर के कार्यों को बाहर ही छोड़कर के, भीतर की साधना में जब लीन हो जाता है, तब उस साधु को परमानंद प्राप्त होता है। वह फिर सामायिक करे, या प्रतिक्रमण या स्वाध्याय लेकिन बाहरी प्रयोजन को त्याग करके, अंतरंग कार्य में जिसकी रुचि जागी है, वह ऐसा लीन होता है कि निज में इतना डूबता है कि भोजन की भी आकुलता, व्याकुलता नहीं सताती। आज लगभग तेरह महिने नौ दिन हो चुके हैं मुनि दीक्षा लिये हुये, तेरह महिने आठ दिन तक आहार नहीं हुआ, बिना आहार के विहार हो रहा है साधना में लीनता है, सामायिक में लीनता है, जिस दिन दीक्षा ली, उस दिन से आज हमारे आराध्य प्रथम मुनिराज, प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ मुनि का जीवन चरित्र हम देखें, वह महामुनिराज वर्धमान चारित्र के धनी थे। पहली बार जब

आहार को निकले, तो उनकी पड़गाहन विधि को कोई नहीं जानता था फलस्वरूप वापिस वन को वापिस चले गये। आत्मा के अनुष्ठान में लीन हो गये, बाहर में नहीं ठहरे, भीतर में समा गये। जब तीर्थंकर आदिनाथ स्वामी, का दूसरी बार बाहर आहार को निकलना हुआ बताइये आदिनाथ स्वामी अक्षय तृतीया के पहले कितनी बार आहार को निकले? सिर्फ एक बार निकले थे आज दूसरी बार, क्योंकि जो वर्धमान चारित्र का धनी होता है, वह एक बार जितनी तपस्या करता है, दूसरी बार उससे अधिक तपस्या करता है, वर्धमान चारित्र का मतलब है बड़ता चारित्र। छः महिने का उपवास पहली बार किया है, तो द्वितीय बार उससे अधिक उपवास करने के बाद आहार को निकलेंगे। इससे सिद्ध होता है, आदिनाथ भगवान एक ही बार निकले और दूसरी बार आज के दिन निकले, धन्य है, अभी तक की इतनी गर्मी निकल गयी, बिना आहार पानी के और यह मई चल रही है, तो दीक्षा भी अप्रैल में हुयी होगी चैत्र कृष्णा नवमीं के दिन इन्होंने दीक्षा ली, और आज तेरह महिने नौ दिन हो रहे है। आज प्रथम आहार तेरह महिने नौ दिन के बाद, अब सोचिये लगभग 400 दिन के बाद पहला आहार आज के दिन राजा श्रेयांस ने, महामुनिराज आदिनाथ स्वामी का पड़गाहन का सौभाग्य पाया, धन्य है भैया ! जिस राजा श्रेयांस ने वज्रजंघ और रानी श्रीमती के समय को इतनी विशुद्धि से प्राप्त किया था कि वज्रजंध राजा ने जब आहार दियां, वह राजा तो आदिनाथ भगवान बना, और वज्रजंघ की पत्नी श्रीमती ने इतनी विशुद्धि से आहार दिये, कि वह राजा श्रेयांस बना इतने भाव–भक्ति से आहार आदि देना चाहिए, देखों कितने सागर प्रमाण निकल गये करोड़ों, अरबों वर्षों की उम्र बीतने के बाद भी दो आत्मायें कहाँ मिली? एक तीर्थंकर (मुनिराज) बनके आहार ले रहे और एक स्त्री पर्याय का छेद करके राजा श्रेयांस आहार दे रहा है, कभी दिये थे आज लेने का सौभाग्य भी मिल रहा है।

जो कभी देता है, तो कभी लेने का भाव भी जागता है। बताइये सब से पहले कौन सा तीर्थ चला है? धर्मतीर्थ अथवा दानतीर्थ? दानतीर्थ। दान तीर्थ के प्रवर्तक कौन थे? राजा श्रेयांस आज के दिन अक्षय तृतीया के दिन दानतीर्थ का प्रवर्तन राजा श्रेयांस के द्वारा हस्तिनापुर नगर में हुआ था।

प्रिय बंधुओ !

ऐसी पावन पवित्र भूमि हस्तिनापुर धन्य है। जहाँ पर शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ आदि जन्म लेंगे, ऐसी पवित्र भूमि पर यह दान तीर्थका प्रवर्तन हुआ था। आज जहाँ पर जम्बूद्वीप चमक रहा है। भरत चक्रवर्ती ने आकर के राजा श्रेयांस की पूजा की, सत्कार किया, अभिनंदन किया। तो आदिनाथ के द्वारा कौनसा तीर्थ चला? धर्म–तीर्थ, राजा श्रेयांस के द्वारा दानतीर्थ, पहले कौन चला? दानतीर्थ। दान के एक हजार साल बाद केवलज्ञान हुआ, आदिनाथ भगवान एक हजार साल तक मुनि रहे, मुनि रहने के बाद केवलज्ञान एक हजार साल की साधना से हुआ, महावीर को बारह साल की साधना के बाद केवलज्ञान हुआ, मल्लिनाथ को छः दिन की साधना में केवलज्ञान हुआ, सब की साधना जुदी–जुदी थी। आदिनाथ प्रभु ने केवलज्ञान पाया, सोचिए जब दिव्यदेशना हुयी, तब धर्म तीर्थ चला। इसलिए हम अपने दान के द्वारा, ऐसा दानतीर्थ चलाये कि हमारे गुरुओं के द्वारा धर्म का तीर्थ चले। यदि श्रावक दानतीर्थ चलाता है, तो साधु धर्मतीर्थ चलाता है, यह साकाररूप है, अन्य कार्यों में, द्रव्य का कोई उपयोग नहीं होता है लेकिन शास्त्रों में लिखा है, तीर्थों की वन्दना, जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा, जिनशासन की स्थापना के अंग है। समाधि भक्ति में पढ़ते है–जिनशासन में प्रीति बढ़ाऊँ।

यह जिनशासन का प्रेम जिसके जीवन में होता है वही जीव साधु संतों के मंगल विहार, तीर्थ प्रवर्तन, के साथ–साथ जब वह जगह–जगह धर्मोपदेश के साथ बढ़ता है, समाज को समाज की कड़ी से जोड़ते चलता है। समाज में धर्म की भावना और अधिक संचार को करते चलता है, समाज साधुओं से जुड़ती चली जाती है, तो वह विहार धर्म प्रवर्तन का रूप ले लेता है। तीर्थंकर भगवान का विहार होता है, तो धर्म के प्रवर्तन के लिए, शांतिसागर जी ने विहार किया था। मुम्बई से सम्मेदशिखर धर्मप्रवर्तन हुआ, उसी तरह से हम जहाँ–जहाँ से भी आये, धर्म के सूत्र समाज को देते आये, धर्म का लाभ देते आये।

प्रिय आत्मन !

आज अक्षय तृतीया का पावन दिन आप सभी के कल्याण के लिए, सुख, शांति, समृद्धि के लिए है। अक्षय तृतीय पर्व से हम सब प्रेरणा लें कि हमारे द्वारा दान तीर्थ का प्रवर्तन होगा, तो साधुओं के धर्म तीर्थ का प्रवर्तन होगा। हमारे द्वारा साधुओं की सेवा में किया

गया सहयोग, धर्म के प्रवर्तन के लिए होता है। धर्म की प्रवृत्ति के लिए होता है, हम जो भी साधु सेवा में भाव समर्पित करते हैं। उससे धर्म का प्रवर्तन हो ऐसी धार्मिक सद्भावनाओं के साथ, जैसे राजा श्रेयांस के द्वारे आदिनाथ पधारे, ऐसे ही आपके जीवन में हमेशा, हर रोज दिगम्बर साधु पधारें ऐसी मंगल शुभकामनाओं के साथ चार पंक्तियाँ

खेतों में हरियाली होवे, घर–घर खुशहाली।
रक्षाबंधन पर्व दशहरा, घर–घर दीवाली॥
यही कामना यही, भावना, सदा निरन्तर हो।
मेरा अंतिम मरण समाधि तेरे दर पर हो॥ (स.भ) 80

!! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !!

—————

48

आनन्द का कार्य

आनन्दो निर्दहत्युद्धं, कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी, बहिर्दुःखेष्वचेतनः।।48।।

अन्वयार्थ –(**आनन्दः**) आत्मध्यान का आनन्द (**अनारतम्**) निरन्तर (**उद्धं**) बहुत से (**कर्मेन्धनम्**) कर्म रूपी ईधन को (**निर्दहति**) जलाता है (**च**) तथा बहिः दुःखेषु बाहरी (**परीषह, उपसर्गादिक**) दुःख से (**अचेतनः**) अनभिज्ञ (**असौ योगी**) वह योगी आत्मध्यानी (**न खिद्यते**) खेद खिन्न (**दुःखी**) नहीं होता है।

प्रिय आत्मन !

योगी योग में, आनंद पाता है, जगत को कष्ट दिखाई देता है, किन्तु उसी योग में योगी को आनंद आता है, और जगत में जहाँ जीवों को आनंद दिखाई देता है, योगी को वहाँ कष्ट दिखाई देता है, क्योंकि जगत का मुख जिस ओर है, योगी की पीठ उस ओर है, और जगत की पीठ जिस ओर है, योगी का मुख उस ओर है। दोनों में ३६ का आँकड़ा है, जिस ध्यान–साधना में साधु आनंद लेता है, यदि निस्पृहता से भरा हुआ, वीतरागता पर खरा उतरता हुआ साधु है, तो उसकी एकांत की साधना उसे उत्सव बन जाती है। उस साधना का हर पल उसके जीवन का एक त्यौहार हो जाता है। ''जितने दिन बीते त्यौहार सरीखे'' चाहे बोम्बे में रहे, चाहे इंदौर में रहे, चाहे वन में रहे, चाहे भवन में रहे, हर पल त्यौहार, **हर पल पर्व समाया है, फिर भी गर्व न आया है। चरण शरण त्यौहार लगे, मंगलमय व्यवहार लगे।।** ऐसा लगता है कि पल–पल त्यौहार हो, क्योंकि जहाँ परिणामों की विशुद्धि होती है,

और समतामय बुद्धि होती है वहाँ पर त्यौहार बन जाता है। पवित्र ऊर्जा का प्रवाह परिणामों में विशुद्धि भर देता है। फलस्वरूप त्यौहार हो जाता है। देखिए ! योगी जब योग में ठहरते है तो **''परमानन्द: जायते''** परमानन्द उत्पन्न होता है।

किस योग से? सामायिक योग से, ध्यान योग से, समता योग से, विहार भी एक योग है पथ में जो भीषण तपन के मध्य में समता से बिहार कर रहे हैं। धन्य हैं! कैसी भीषण गर्मी के मध्य में संघों के विहार चल रहे हैं, उधर विशुद्ध सागर जी भोपाल की ओर विहार कर रहे हैं, विरागसागर जी गुरुदेव कोलकाता की ओर विहार कर रहे हैं, और दोनों अपने स्वरूप में विहार कर रहे हैं, उड़ीसा में 3 मई 2019 को फानी तूफान आ गया उस दिन पूरे संघ ने उपवास किया। फिर भी **''जायते परमानन्दा:''।** प्रश्न आता है महाराज आपको ऐसा करने से मिलता क्या है? एक टाइम आहार, दो टाइम विहार, क्या मिलता है? **जायते परमानंद:** परमानंद मिलता है। यदि हम साढ़े सत्तरह सौ किलोमीटर की यात्रा करके इंदौर न आते, तो यहाँ के स्वाध्याय प्रेमी हमको कैसे मिलते? यहाँ के ज्ञान प्रेमियों से हमारा परिचय कैसे होता? आज आखातीज पर सैंकड़ों भव्य जीवों ने आहार दान दिया, यह आपका पुण्य था। **जायते परमानंद:** विहार में चलते है तो भी परमानंद। अनुभव होता है, यात्रायें होती हैं, संघ में अधिकांश साधकों ने चौथी टोंक की भी वंदना की, धन्य है भैया ! **आनन्दो निर्दहत्युद्धं,** जब भीतर में आनन्द आता है, तो कर्मों की निर्जरा होती है।

तनाव लेकर साधना नहीं की जाती, कोई टेंसन लेकर साधना नहीं की जाती, समता धर के साधना होती है, **समता का आचरण ही साधना का रस है,** साधना का रस समता में निहित है, जैसे हम नींबू के रस को, छोटी सी कटोरी में ले लेते हैं, छः फीट के गन्ने के रस को एक लोटे में भर लेते हैं। उसी तरह जीवन भर की साधना का रस पल भर की समता में निहित होता है। द्वीपायन मुनिराज समय पर समता नहीं रख पाये, साधना तो लम्बी थी, लेकिन समय पर समता नहीं रख पाये। जिस बर्तन में समता रखी है, वह बर्तन गिर गया। उसी तरह से, यदि हमारी समता को छति पहुँचती है, तो साधना का वृक्ष लगाने का कोई फायदा नहीं रहता है, इसलिए साधु को हर परिस्थिति समता के लिए होती है।

''समदाचारो समणो''

वह माता नहीं जिसमें ममता नहीं, वह साधु नहीं जिसमें समता नहीं। इसलिए समतामय जीवन ही साधुता का श्रृंगार है।

आनन्दो निर्दहत्युद्धं, कर्मेन्धनमनारतम्।
न चाऽसौ रिवद्यते योगी, बहिर्दु:खेष्वचेतन:॥48॥

निर्दहति उद्धं तीव्र गति से, तीव्र प्रकार से, तीव्र वेग से, **निर्दहति** जलाता है। किसको? कर्म ईंधन को। आप सुनते हैं –

होली खेलें मुनिराज शिखर वन में,

काहे की जा तुमने, होली बनायी

काहे की आग लगायी वन में,

होली खेलें

होली खेलें मुनिराज शिखर वन में, होली खेले,

अष्ट कर्म की जा होली जलायी,

ध्यान की आग लगायी वन में

होली खेलें

होली खेलें मुनिराज शिखर वन में, होली खेलें

'निर्दहति उद्धं' कर्म रूपी ईंधन को जलाते हैं, और भीतर में आनन्द–आनंद भोगते है। भीतर में जितना आनन्द आयेगा, उतनी ही ज्यादा निर्जरा होगी। वह आनन्द परानंद होना चाहिए, आत्मीय आनंद होना चाहिए, ज्ञानानंद होना चाहिए, ध्यानानंद होना चाहिए, निजानंद होना चाहिए तो निर्जरा होती है। **''अनारतम्''** शीघ्र निर्जरा, निरंतर निर्जरा, गुणश्रेणी निर्जरा चलती है, पहले समय में चार कर्म की निर्जरा, दूसरे समय में सोलह कर्म की निर्जरा तीसरे समय में दो सौ छप्पन कर्म की निर्जरा और चौंथे समय में पैंसठ हजार, पाँच सौ छत्तीस इस तरह से गुणितक्रम से निर्जरा, चलती है।

न चाऽसौ खिद्यते योगी

क्या इससे योगी को खेद नहीं होता है, वह महाराज गर्मी में विहार कर रहे, यह महाराज ठंडी में विहार कर रहे, भैया ! जिसने यह समझ लिया है कि देश की रक्षा करना है, तो मजबूत सैनिक की आवश्यकता है, और धर्म की रक्षा करना है तो मजबूत साधु की आवश्यकता हैं। देश की रक्षा के लिए मजबूत सैनिक चाहिए, जो हर समय बोर्डर पर तैनात रहे। कभी भी कहीं भी, जाने के लिए तैयार हो। दमोह में गुरुवर विराजमान थे गुरुवर विहार करके आये थे, इंदौर से विहार करके गुरुवर ललितपुर पहुँचे, करीटोरन में पहला कार्यक्रम उसके बाद तत्काल बमीठा में कार्यक्रम था, महरौनी से जो रास्ता था, पूरा नौ किलोमीटर का गिट्टी वाला रास्ता था। मैंने कहा–गुरुवर इस रास्ते से। बोले–संघ हमेशा तैयार। रास्ता कैसा भी हो, मौसम कैसा भी हो, मिलेट्री के जवान की तरह संघ को मजबूत बनाया जाता है। हर मौसम में परिषह सहने की क्षमता, समता रखने की आदत, हर परिस्थिति में समता को कैसे बनाया रखा जा सके, इसलिए हर समय विहार। विहार एक बड़ा विज्ञान है, आचार्य भगवन् ने मूलाचार में लिखा –

साधु को गाँव में एक दिन, शहर में पाँच दिन। वाचना करें तो दो माह रुकें, चातुर्मास में चार महिने। लेकिन वाचना न करें, तो गाँव में एक दिन शहर में पाँच दिन, गाँव छोटा होता है, एक ही दिन में सब को लाभ मिल जाता है, शहर में ज्यादा लोग होते हैं, उनको लाभ पहुँचे, और आपका उतने समय तक राग–द्वेष नहीं होगा। अतः शहर को अधिक गुना लाभ पहुँचाने की बात, मूलाचार में लिखी है। उसका अपना विज्ञान है, संस्कृति का प्रवाह शहरों से चलता है, संस्कार स्थिर गाँव में रहते हैं। भाषा शहरों से चलती है, प्रभावना शहरों से बढ़ती है, साधना गाँव से, दोनों अनिवार्य हैं। **'बहिर्दुःखेष्वचेतनः'** बाहरी दुःखों में साधु अचेतन की तरह हो जाता है। जैसे– दीवाल को कोई पत्थर मारे, दीवाल पर धूप पड़े तो भी दीवाल को कोई असर नहीं होता, ऐसे साधु खो जाता है, अपने आप में, एयरकंडीसन की स्थिति जैसे आपकी गाड़ी एयरकंडीसन है, या आपका घर ए.सी. रूम है, बाहर का प्रभाव आपके ए.सी. रूम पर नहीं होता है। उसी तरह जो साधु अपने आत्म–ध्यान में लीन हुआ है, उस पर बाहर का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा, कमठ पत्थर वर्षा रहा है, या कुर्युधर लोहे के गर्म आभूषण पहना रहा है, या कोई नाना तरह के उपसर्ग कर रहा है। तब भी

स्थिति आनंद में है, तभी तो केवलज्ञान हो गया उपसर्गों को सहने वाले, केवलज्ञान जगा के, निर्वाण पधार गये। क्योंकि इन्होंने आनंद लिया, आनंद भोगा है, आनंद पाया है, दुख होने पर दुख में डूबे नहीं, दुख देने वाले का स्मरण नहीं किया, मैं इस समय अचेतन हूँ, मुझे बाहर के दुख का, और बाहर के दुख देने वाले का दोनों का संवेदन नहीं करना है। मुझे सिर्फ आत्मा के भीतर में जो ज्ञान है, ध्यान है, उसका संवेदन करना है, ज्ञान–ध्यान में दुख नहीं है। यदि आपका ए.सी. रूम है तो धूप आयेगी कहाँ से, और धूप आ रही है, तो कहीं की खिड़की खुली है। ए.सी. चालू है, कमरा ठंडा नहीं हो रहा कोई खिड़की खुली होगी। उसी तरह से यदि पाँच इन्द्रियों का व्यापार चल रहा है, तुम्हारा उपयोग बाहर की ओर जा रहा है, तो बाहर का सुख–दुख तुम्हारे भीतर प्रवेश करेगा, बाहर का विकल्प तुम्हारे भीतर प्रवेश करेगा। लेकिन जब पाँचों इन्द्रियों के व्यापार को रोक लिया है और निज में चित्त लगा दिया है, भीतर के ज्ञान में स्थिरता आ गयी है, तो फिर बाहर का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। ऐसे–ऐसे स्थिर योगी देखे हैं, कि बैठे तो बैठे, सन्मति सागर जी के पैर में इतना बड़ा घाव हो गया कि एक अंगुलि चली जाती थी। फिर भी डॉक्टर से ईलाज नहीं कराया, कभी पट्टी नहीं बँधवायी, कभी कोई इंजेक्शन नहीं लगवाया, कभी कोई मेडिकल की दवाई नहीं खायी, आहार में भी दूर जाते थे। बड़े–बड़े तपस्वी इस भूमि पर हो गये हैं। आज मुनि सुबलसागर जी महाराज ऐसे है कि जिस दिन से मुनि बने कभी लेटे नहीं। निद्रा विजयी, क्योंकि साधु के लिए दो चीजे हैं जीतने के लिए जिह्वा को और निद्रा को जीतो, दो पर विजय पाली तो सब पर विजय पाली। निद्रा सारे पापों की जननी होती है, इसलिए आचार्यों ने कहा नींद को जीतो, और जिसने निद्रा पर विजय पायी, वह धन्य है। निद्रा दर्शनावरणीय घाति कर्म की प्रकृति है। बिना पाप के उदय से किसी को नींद आ ही नहीं सकती, चाहे धरती पर कोई भी इंसान हो, कोई भी आचार्य हो, साधु हो, यदि वह नींद लेता है तो यह सिद्ध है कि दर्शनावरणीय घाति कर्म की पाप प्रकृति तीव्र उदय में चल रही है। आप सो जाते हैं, तो आपके शरीर में रक्त प्रवाह चलता कि नहीं चलता, सो जाने पर रक्त का प्रवाह, श्वास का चलना, नाड़ी का धड़कना दिल की धड़कन यह बंद नहीं हो जाती, उसी तरह निद्रा के समय में भी कर्म बंधते हैं, क्योंकि कर्म के आस्रव का कारण मन है, वचन है, और काय है, यह

चलते रहते हैं सूक्ष्मरूप में मन चलता ही रहता है, यहाँ तक की व्यक्ति सोते–सोते स्त्यानगृद्धि में पहुँच जाता है। दर्शनावरणीय का तीव्र आस्रव चलता है, सोते समय आठ कर्म का बंध चलता है। जब भी कोई कर्म आता है, तो उसका बटवारा भिन्न–भिन्न प्रकार से होता है, सबसे ज्यादा कर्म असाता वेदनीय को मिलता है, कोई भी कर्म आया जितनी मात्रा में, तो सबसे ज्यादा कर्म जो मिलेगा वह असातावेदनीय को मिलेगा, किसी भी समय, जैसे आपके विद्यालय में प्राचार्य हैं, हैडमास्टर हैं, उसके बाद मास्टर है, उसके बाद अतिथि शिक्षक है, उसके बाद और सेवा करने वाले हैं, तो क्रम–क्रम से घटते क्रम से वेतन मिलता है। उसी तरह आये हुए कर्म प्रदेशों में, सर्वाधिक कर्म असातावेदनीय को मिलता है। इस तरह से **''बहिर्दु : खेषु'** बाहरी दु:ख होने पर अचेतन की तरह पत्थर की तरह, काष्ठ की तरह, जैसे वन में मृग लकड़ी से खाज खुजाते हैं उसी तरह से साधु ठहर जाते हैं। यह है साधु की दशा का चित्रण, योगी की दशा का चित्रण इष्टोपदेश के उपदेश में है, कि बाहर का दुख आ जाये, तो तुम उस ओर मत देखो। दुख कौन दे रहा है, इस ओर भी मत देखो, तुम्हारा स्वभाव सुख स्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, उस स्वरूप में डूबे रहो। बाहर कितनी धूप है यह मत देखो, तुम अंदर बैठे, तुम अपनी स्थिति को देखो। आप लोग को धूप लग रही क्या? धूप नहीं है क्या? बोलते हैं, नहीं लग रही, जहाँ हैं, वहाँ बैठे नहीं, जहाँ बैठे वहाँ है नहीं, बस यह स्थिति साधु को बनाना पड़ती है स्वरूप में दुख नहीं है, और जहाँ दुख है, वहाँ स्वरूप नहीं है। **जहाँ संक्लेश है, वहाँ स्वरूप नहीं है, स्वरूप में संक्लेश नहीं है।** इससे सिद्ध होता है, कि यदि हम संक्लेश और दुख में जी रहे तो हम अपने ही स्वरूप में नहीं है। इसलिए **स्वरूप की साधना ही मुनित्व की साधना है।** इसलिए तन की साधना अलग है, और आत्मा की साधना अलग है। आचार्य ने लिखा यह वनवास क्या करेगा? ध्यान, व्रत, क्या करेगा? यदि समता नहीं है, तो तुम्हारा ध्यान, व्रत, उपवास सब निरर्थक चला जाता है, और समता है तो थोड़ा भी व्रत उपवास करोगे, तो महान फल को प्रदान करेगा इसलिए आचार्य भगवन् ने सबसे पहले साधु को समतावान बताया, माँ को ममतावान बताया। घर में कितने भी पुत्र–पुत्रियाँ हो, और माँ में ममता न हो, तो क्या काम का? उसी तरह साधु के पास कितना भी ज्ञान, ध्यान, चारित्र हो, लेकिन समता न हो तो, क्या? इसलिए साधु,

को समतामय, माँ को ममतामय होना चाहिए। आइये! इस तरह से मुनिराज अंतर्मूहूर्त में कर्मों को उदय में लाकर के खिरा देते हैं, कोटि–कोटि सागर के, कर्म सत्ता में पड़े हैं,और वह साधना के द्वारा,अंतर्मूहूर्त के भीतर भीतर सागरों पर्यंत के कर्म खिरा देते हैं।

हम आपको एक उदाहरण देते हैं–एक सेठ ने एक साल कपास खरीदा। 3 6 5 दिन कपास खरीदा, और ग्राउण्ड में रख दिया, अब बताइये जो साल भर में खरीदा गया कपास है, एकत्रित करने में साल भर लगा है, उस कपास को यदि कोई चिंगारी लगा दे, तो नाश होने में कितनी देर लगेगी? अल्प समय। उसी तरह जीव ने पाप वर्षों में कमाया है, उस पाप को भी एक अंतर्मूहूर्त में, नष्ट किया जा सकता है। आत्मा मात्रा विशेषज्ञ है, किस जीव को कितना कर्म उदय में आना है, जो आत्मा स्वयं जानता है, पर का कर्म हमारे उदय में आता नहीं है, हमारा कर्म पर के उदय में जाता नहीं है। हमारे लिए दूसरा व्यक्ति उदय नहीं दे सकता, मैं दूसरे को उदय दे नहीं सकता। हमारे लिए दूसरा कोई दुख दे ही नहीं सकता, अपने ही परिणामों से मैं दुखी होता हूँ, कर्म को मालूम नहीं लेकिन आत्मा को तो मालूम है। यह निर्णय कौन करता है? अपने यहाँ ईश्वर तो कर्ता है नहीं। अब यह बंध हुआ किसमें है? मैं आपको बताऊँ आपने कुकर में दाल–चावल रखा, यह कुकर को कैसे मालूम कि अब सीटी बजना चाहिए? जब दाल पक गयी या चावल पक गया, तभी सीटी बजी ऐसा क्यों हुआ? उसमें टाइम सेट करते क्या? नहीं। मैं बता रहा हूँ कर्म अभी स्वतंत्र नहीं है, आत्मा संसारी आत्मा से जुड़ा हुआ है, तो वह कर्म भी, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का निमित्त पाकर के उदय में आता है। आप मनुष्य हैं, यह मनुष्य आयु का उदय नरक में नहीं आ सकता, यह मनुष्य आयु का उदय स्वर्ग में नहीं आ सकता, मनुष्य आयु का उदय पशुगति में नहीं आ सकता। इसलिए इसी द्रव्य में, इसी क्षेत्र में, इसी काल में इसी भाव में, यह व्यवस्था सर्वज्ञकृत नहीं है, ईश्वर कृत नहीं है, बस यही तो कर्मों की विचित्र गति है, और जीव कि विचित्रता है कि देखो, कर्म सहित जीव, पर का भोक्ता नहीं, अपनी सत्ता में जो पड़ा है वह निकाल लेता है। कर्म उदय मे आया है, तो जीव में परिणामों से आया है। आपके पास ए.टी.एम. कार्ड रखा है, बॉम्बे में जमा किया, इंदौर में आप निकाल रहे हो, एक ओर हम बोलते हैं, अणु–अणु स्वतंत्र है, और फिर कह दें कि इसकी व्यवस्था कौन बनाता? यदि इसकी व्यवस्था दूसरा बनाता है, प्रश्न हुआ............।

भैया! उसकी उतनी स्थिति समाप्त हो गयी, एक कर्म समाप्त हो गया, दूसरा कर्म उदय में आया, तीसरा आया, चौथा आया। पुराना कर्म भी आता रहता है और नया भी आता रहता है। कषाय परिणामों के प्रभाव से स्थिति बंध बँधता हैं अनुभाग बंध, कौनसा कर्म, कितनी स्थिति में बाँधा है, कितने टाइम के लिए बाँधा है, और कितनी अनुभाग शक्ति से बाँधा है, इन सब का प्रभाव पड़ता है, कि एक कर्म भोग लिया, इतने टाइम वाला भोग लिया, अपन पढ़ते है, जीव सत्तर कोड़ा–कोड़ी प्रमाण तक के कर्म बाँधके रख सकता है, तो धीरे–धीरे निकाल लेता है, आपने जमा करके रखा है, तो जहाँ जितनी आवश्यकता पड़ती है, उस आवश्यकता के अनुरूप आप ए.टी.एम. से पैसा निकाल लेते हो, उसी तरह से हम कर्म को निकालते जाते हैं। आपकी व्यवस्था के अनुरूप आप को प्राप्त होता जाता है। अभी पुण्य कर्म हमारे उदय में आ रहा है, सातावेदनीय उदय में चल रहा है, मैं निश्चिंतता से बोल रहा हूँ। जरा सा असाता का उदय आ जाये तो कहीं बुखार आ जाये, कहीं जुखाम हो जाये, और वंचित हो जाऊँ तो कर्म की व्यवस्था कोई दूसरा करता नहीं है, यह वस्तु व्यवस्था स्वतंत्र व्यवस्था है। देखिये ! व्यवस्थायें कितने प्रकर की है, किस पद्धति से बनायी जाती है और उसके बीच में क्या भाव छुपा हुआ है, मुख्य प्रयोजन यह था, कि नेमिकुमार को वैराग्य कैसे आये? पशुओं को सिर्फ वैराग्य लाने के निमित्त रखा गया था। देखिए शास्त्र जी में लिखा है, उसी समय उन्होंने वन मे एक जगह शब्द देखना वन में, न कि नगर में, वन में लिखा है, यह शब्द देखना हरिवंश पुराण क्या बोल रहा है, आप ने नगर बोला था, तत्काल देखो, उसी समय उन्होंने वन में एक जगह भय से जिनके मन और शरीर काँप रहे थे, जो अत्यंत बिह्बल थे, पुरुष जिन्हें रोके हुए थे, जो नाना जातियों से युक्त थे, तृण भक्षी, पशुओं को देखा। अब देखिए यहाँ पर स्थान क्या दिया? वन शब्द दिया है, यह श्लोक नम्बर 85 **सः खलु पश्यति तत्र वने** यह वन शब्द है, और अपन ने कहाँ लगा लिया? नगर लगा लिया, हरिवंश पुराण से तो अपन बाधित हो गये, हम राजुल या राजुल के परिवार पर आरोप लगा न लगायें, यहाँ स्पष्ट हो गया।

सा खलु पश्यति तत्र तदा वने, विविध जाति

यह वन शब्द स्पष्ट किया है, और वन में कोई भी हो सकता है, श्री कृष्ण अपनी

किसी प्रकार की योजना बना सकते हैं। निराकरण हुआ वन शब्द का वन शब्द कहने से, राजुल या राजुल के पिता, या राजुल का परिवार, इससे कोई टच नहीं हुआ, न तो नेमिकुमार और न नेमिकुमार कुमार का परिवार दोनों स्वतंत्र हो गये। अब हम रास्ते से निकल रहे रास्ते में क्या मिलेगा? इसकी जिम्मेदारी न वर पक्ष ले सकता न वधु पक्ष ले सकता है। बोलिए आप सहमत हो, अब रास्ते में कौन क्या व्यवस्था अपनी ओर से लगा दे। किस उद्देश्य से लगा दे, इसमें न राजुल का पक्ष जिम्मेदार, न नेमि का पक्ष जिम्मेदार, क्यों? वन में क्या हो रहा है? उसका जिम्मेदार न वर पक्ष है, न वधु पक्ष है। यद्यपि भगवन् अवधिज्ञान से उन पशुओं को एकत्रित करने का कारण जानते थे, तथापि उन्होंने शीघ्र ही रथ रोककर अपने शब्द से मेघध्वनि को जीतते हुए सारथी से पूछा कि—नाना जाति के पशु यहाँ किस लिए रोके गये हैं? सारथी से पूछा,तो सारथी तो वहाँ देखने गया नहीं था, सारथी कोई पाठ पढ़ाया गया था पहले से, कि तुम ऐसा बोल देना। सारथी ने नम्रीभूत होकर के कहा आपके विवाह उत्सव मे जो राजा आये हैं, उनके निमित्त यह है, तो इस प्रकार सारथी के वचन सुनकर ज्यों ही भगवान ने मृगों के समूह की ओर देखा त्योंहि उनका हृदय प्राणी दया से सरावोर हो गया। दया की प्रधानता पर अपनी दृष्टि जाना चाहिए और यहाँ पर तीसरा यह था कि, कहीं अब इस राज्य के राजा ये न बन जायें, तो वैराग्य का कारण बनाया। जब नेमिकुमार ने नाग शय्या पर चढ़कर के नाक से शंख फूंक दिया और पैर के अंगूठे से चक्र चला दिया तो संदेह हो गया था कि इस राज्य को न तो हम संभाल पायेंगे, न बड़ा भाई, अब तो नेमिकुमार राजा बन जायेंगे, अब क्या उपाय है कि नेमिकुमार राजा न बने राज्यों में ज्योतिषी रहते थे यह ज्योतिषी आदि निमित्त ज्ञान से बता देते थे, कि इनके जीवन में ऐसा निमित्त आ सकता है, यदि आप ऐसा करते हैं, तो इसको देखकर के वैराग्य आ जायेगा, इनका विवाह भी नहीं हो पायेगा तो राज्य में स्थिर रह ही नहीं पायेंगे। इनसे राज्य कैसे छुड़ाया जा सकता है, बिना युद्ध के राज्य का त्याग कैसे कराया जा सकता है? तो इस कारण से इनको वैराग्य आ जायेगा, बस चल देंगे। यह श्री कृष्ण के द्वारा रची गयी रूप रेखा थी। भैया! किसी न किसी रूप में, किस जीव को कैसे वैराग्य आयेगा, बिना वैराग्य के वह भूमिका नहीं बनती है, इसलिए सिर्फ वैराग्य की भूमिका का प्रस्तुत चित्र है।

49

मुमुक्षु क्या करे?

अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत्।
तत् प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद्द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः॥49॥

अन्वयार्थ – (**अविद्याभिदुरं**) अज्ञान अन्धकार को नष्ट करने वाली (**परं ज्योतिः**) आत्मा की उत्कृष्ट ज्योति (**महत् ज्ञानमयं**) महान् ज्ञान रूप है (**मुमुक्षुभिः**) मोक्ष अभिलाषी पुरुषों को (**तत् प्रष्टव्यं**) उसी के विषय में पूछना चाहिए (**तत् एष्टव्यं**) उसी को पाने का प्रयत्न करना चाहिए (**तत् द्रष्टव्यं**) उसी का दर्शन करना चाहिए ।

अज्ञान अंधकार को नष्ट करने वाली **अविद्याभिदुरं** अविद्या माने मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र, इन तीनों को खंडित करने वाली, समाप्त करने वाली, नष्ट करने वाली, परम ज्योति, आत्म ज्योति, **'महत् ज्ञान रूपं'** महान ज्ञानरूप है अर्थात् सम्यग्ज्ञान रूप है। **मुमुक्षुभिः** मोक्ष के अभिलाषी पुरुषों को क्या होना चाहिए? **तद् प्रष्टव्यं** अविद्या का नाश कैसे हो? उसके विषय में पूछना चाहिए, **तदेष्टव्यं** उसी अविद्या रहित आत्मा की प्राप्ति का मार्ग खोजना चाहिए। **तद्द्रष्टव्यं** उसी को देखना चाहिए। आत्मा को पूछो, आत्मा को चाहो और आत्मा को देखो।

आतम पूछो, आतम देखो,
आतम ही चाहो।

एक पंक्ति में आचार्य भगवन् ने दे दिया। अज्ञान तम जिससे नाश को प्राप्त हो जाये क्यों? अनादि अविद्या के कारण ही जीव संसार में भटक रहा है,

ऐसे मिथ्यादृग ज्ञान चरण, वश भ्रमत भरत दु:ख जन्ममरण।

तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान॥1॥ 2 (ढाल)

हे जीव! जिससे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र का नाश हो जाये, ऐसी आत्म ज्योति के विषय में ज्ञानियों के पास जाओ, और आत्मा के विषय में पूछो, ज्ञानियों के पास जाओ, तो आत्मा की अभिलाषा करो। मुमुक्षु कैसा होता है? मुमुक्षु शब्द दे रहे हैं, पहले योगी बता दिया, अब मुमुक्षु बता रहे हैं, वह परम ज्योति, महानज्ञान रूप है, जिसके अन्दर मोक्ष की अभिलाषा विद्यमान है, जो वैराग्य की ओर जा रहा है, जिसको वैराग्य प्रकट हुआ है, ऐसा जीव आत्मा के विषय में ही पूछे, आत्मा को चाहे, आत्मा का ही अनुभव करे, तीन काम के अलावा चौंथा नहीं, यदि तुम मुमुक्षु हो, तो हमारे तीन काम–

आतम पूछो, आतम देखो,

आतम ही चाहो।

आत्मा का अनुभव करो, ऐसी उस आत्मा का दर्शन करो, यह अंत में अंतिम प्रेरणा दे दी। पूरे ग्रंथ के सार में प्रेरणा क्या है? आत्मा में ही लीन रहो, आत्मा में ही ठहरो, आत्मा में ही रमो, जिससे तू वही संतोष को प्राप्त हो, अन्य जगह मत जा, यह तीन बातें, यदि तू मुमुक्षु है, तो मुमुक्षु का कर्तव्य क्या है? जा गुरु के पास, और वहाँ पर सिर्फ आत्मा को देखो, अविद्या के नाशक, आत्मा के विषय मे पूछो, अविद्या के नाशक उस आत्मा का अनुभव करो, यह मुमुक्षु का कर्तव्य है। अंतिम सार कि ओर चल रहे हैं, आचार्य भगवन्, यह इतना पवित्र पावन निर्णय अपने पास रख रहे हैं, हे जीव ! इस संसार में अब तुझे कुछ भी नहीं करना है, पूरे ग्रंथ की 48 कारिकायें पढ़ ली है, तुझे सिर्फ तीन काम सौप कर आचार्य भगवन् कहते बस, जैसे पूरा निबंध लिखते, फिर सम्यग्दृष्टि को बंध नहीं होता आप वेद जी साहब को पचपन हजार पाँच सौ पचपन रुपये, एक साल, दो साल, तीन साल पाँच साल से न मिल रहे हो, तो ऐसा लगता है कि अब तो व्यक्ति ने हजम कर लिए। लेकिन किस से यदि कुछ प्राप्त हो, यदि वह व्यक्त एक बार मे आके कहे भैया– ये पचास हजार ले लो, क्यों कि सोरस तगड़ा है, वह कहता भैया ! पचास हजार ले लो, हम पाँच हजार पाँच सौ पचपन बाद में दे देंगे। जिस दिन व्यक्ति समाचार लेता वेद्य जी साबह। आपके पैसे मिल गये, अब

बोलो ये क्या बोलेगे? बोलो आप क्या कहोगे अब तो ये नहीं, कहोगे नहीं मिले, उसी तरह जब मिथ्यात्व को तोड़कर जीव सम्यक्त्व में आता है, तो जयसेन आचार्य कह देते हैं, ये अबंधक है। क्योंकि सबसे बड़ी संसार भ्रमण की ताकत थी तो वह मिथ्यात्व की थी, और मिथ्यात्व उसका टूट गया। अब जिसने पचास हजार चुका दिये, क्या वह पाँच हजार पाँच सौ पचपन नहीं चुकायेगा? चुकायेगा। जिसका मिथ्यात्व टूट गया, उसकी अविरति भी टूटेगी, उसका प्रमाद भी टूटेगा, उसकी कषाय भी टूटेगी, उसका योग भी टूटेगा, समय लगेगा लेकिन टूटेगा। अब जिस व्यक्ति ने पचास हजार चुका दिये अब वह इतने पैसे के लिए रुकेगा। समझ गये, इसलिए सबसे पहला शुभोपयोग का विकल्प नहीं है। सबसे पहला तो विक्षेप अशुभोपयोग का है। तीव्र राग द्वेष जो हमें अपनी साधना से हटा देता है। इस तत्त्व को पकड़ो पहले मिथ्यात्व हटाओ, दूसरा यदि कदाचित् उसे योग मिला और द्वारा आये तो वेद्य जी साहब ये आप पाँच हजार और ले लो, अब क्या होगा? अब द्वारा वह फिर फोन करता है, भैया ! आपके पैसे पूरे मिल गये, हाँ बिल्कुल...........मिल गये। अब पाँच सौ पचपन के लिए इनके मुख से ये नहीं निकला कि भैया ! इतने नहीं मिले, समझ रहे। क्यों? यही व्यवहार है, यही व्यवस्था है। अब जिसने सम्यग्दर्शन पाने के बाद देशव्रत प्राप्त कर लिया हो, महाव्रत प्राप्त कर लिया हो, मिथ्यात्व और अविरति दोनों को त्याग कर दिया हो, अब तो उसे मोक्षमार्गी कहेंगे। अब तो भैया ! ये मोक्ष के आँगन में खेल रहा है, प्रत्यक्ष मोक्ष मार्ग है, ये लो, और आगे थोड़ा चल दे, यदि वह पाँच सौ और देते तो, अब तो जो क्षपक श्रेणी चढ़ रहा है, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, सातवें गुणस्थान में पहुँच गया प्रमाद का त्याग करके, क्षपक श्रेणी के सम्मुख हो गया। अब यदि पचपन में भी पचास और दे दे तो, अब बताओ क्या कहा जायेगा? मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय चार प्रत्ययों का त्याग कर चुके हैं, लेकिन योग बाकी है, तुम भगवान कह सकते हो, लेकिन सिद्धांत अभी भी संसारी कहेगा। अभी भी संसारी है। तुम कहते परमात्मा, सिद्धांत कहेगा सकल परमात्मा, तुम कहोगे कर्म रहित, वह कहेगा सिर्फ घाति कर्म रहित, यानि कुछ शेष है, इसलिए योग पाँच अंक के बराबर रह गया, और जिसने पचपन हजार पाँच सौ पचास चुका दिये अब क्या वह पाँच रुपये नहीं चुकायेगा? हो जाता है भैया ! बैंक का समय है, और बैंक में स्थिति ये

बनती है, कि बीस पैसे जमा करने के लिए पचास रुपये खर्च करना पड़ते हैं। वेद्य जी साहब सामने बैठे, अच्छी तरह से जानते हैं, यदि बैंक में बीस पैसे, आप पर कर्ज में आ जाये, तो आपको ये नहीं कहा जायेगा कि आप कर्जदार नहीं हो, अब तुम वह बीस पैसे कहाँ से लाओ, कैसे लाओ? और जो आप लाते वह चलता नहीं। यह स्थिति एक जगह बनी थी, वो पैसे कैसे जमा हो? भैया ! पचास हो, पचहत्तर हो जमा हो जाये लेकिन तिरेसठ पैसे, कैसे जमा हो? आखिरकार बैंक से, पुनः प्रमाण पत्र लिया, भरा और भरने के पश्चात् जमा किये, और बैंक मे निवेदन किया, कि मुझे आपके बैंक के तिरेसठ पैसे देना है, कृपा आप अपने तिरेसठ पैसे, इस राशि में से जमा करके शेष मेरे नये खाते में जोड़ दें। क्योंकि वापिस मागोगे तो मिलेगा नहीं, इसलिए नये खाते मे जोड़ दें तो तात्पर्य ये है, कि इस तत्त्व को समझो। मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद, कषाय, योग का त्याग करेंगे तो हम अपनी साधना में आगे बढ़ेंगे। प्रकार से इस तत्त्व में हमने 36वीं कारिका का विचार किया है।

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

50

तत्त्व का सार

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य, इत्यसौ तत्त्वसङ्ग्रहः।
यदन्यदुच्यते किञ्चित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः।।(50)

अन्वयार्थ – (**जीवः अन्यः**) जीव अन्य है (**च**) और (**पुद्गलः अन्यः**) पुद्गल अन्य है (**इति**) इस प्रकार (**असौ**) यह (**तत्त्वसंग्रहः**) तत्त्व का सार है, इसके अलावा (**यत**) जो (**अन्यत् किंचत्**) कुछ अन्य बात इस विषय में (**उच्यते**) कही जाती है (**स**) वह (**तस्य एव विस्तरः**) उसका ही विस्तार है।

जीव जुदा है, पुद्गल जुदा है, इतना ही तत्त्व का सार है, जितना भी मैंने यह ग्रंथ कहा है, उस ग्रंथ का सार सिर्फ दो बातों में निहित है,

जीव जुदा, पुद्गल जुदा, यही ग्रंथ का सार।
जो कुछ काहा अन्य है, याही का विस्तार।।

आत्मा अलग है, शरीर आदि पुद्गल द्रव्य अलग हैं, इतना ही सार है, और इसी सार की प्राप्ति के लिए यह इष्टोपदेश ग्रंथ है, यदि किसी से पूछना तो आत्मा के विषय में पूछना, किसी से जानना तो आत्मा के विषय में जानना, और अनुभव करना तो आत्मा का, अंत में यह तीन काम देके, आचार्य भगवन् ने विराम दे दिया। आप कहें महाराज श्री कोई काम, कोई सेवा, आत्मा को देखो, आत्मा को पूछो, आत्मा का अनुभव करो। इसलिए यह सार रूप में हुआ कि जीव जुदा है, पुद्गल जुदा है, यह ग्रंथ का सार है। और इसका नाम तत्त्व का संग्रह भी है, यह तत्त्व का संचय है, पूरा तत्त्व का सार इन दो शब्दों में आ गया, जीव अलग पुद्गल अलग, **जीव+पुद्गल=संसार, जीव – पुद्गल=मोक्ष।** बस इतना ही

तो है, पुद्गल को (–) किया कि जीव मोक्ष में पहुँच गया।

'जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः'

जीव अन्य है, और पुद्गल अन्य है। ध्यान देना जैसे कलश अन्य है और जल अन्य है। स्याही अन्य है। और पेन अन्य है। पिंजरा अन्य है और तोता अन्य है। उसी तरह से, आत्मा अलग है और शरीर अलग है, इतना ही पूरे ग्रन्थ का सार है, सार यदि दो शब्दों में कहा जाये तो

जीव जुदा पुद्गल जुदा, यही ग्रंथ का सार।
जो कुछ काहा अन्य है, याही का विस्तार॥

भैया ! आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है, यह तत्त्व का सार है, इसके अलावा जो कुछ मैंने कहा है वह इसका ही विस्तार कहा है। जो आगे कहूँगा वह भी इसका विस्तार कहूँगा। द्रव्य संग्रह में जिस चरण से प्रारम्भ हुआ है। इष्टोपदेश में उस चरण से अंत हुआ है। **जीवमजीवं दव्वं** से प्रारम्भ हुआ। जीव और अजीव यह दो द्रव्ये हैं। यह किसने कहा है? **जिणवरवसहेण,** जिनवर वृषभ ने कहा है। **जेण णिद्दिट्ठं देविंदविंदवंदं,** देवेन्द्रों के वृन्द से वंदनीय, ऐसे वृभषदेव ने कहा है और वहाँ जहाँ से प्रारम्भ हुआ। यहाँ पर आचार्य ने समाप्त किया। जीव जुदा है, पुद्गल जुदा है। कल मैंने एक शब्द में कहा था।

जीव + पुद्गल = संसार
जीव – पुद्गल = मोक्ष

जीव और पुद्गल के संयोग का नाम संसार है और जीव और पुद्गल के वियोग का नाम मोक्ष है। इसलिए आत्म को पुद्गल से कैसे हटाया जाये। कैसे छुड़ाया जाये, जैसे माँ तेरा बेटा पर के घर में जाता है तो, तू अपने बेटे को कैसे लाती है। उसी तरह तेरी आत्मा पुद्गल के घर में गया है, अब तू अपनी आत्मा को कैसे भी करके निकाल, तो इस तरह से पूरा सार बता दिया कि सार तो दो शब्दों में है, जैसे कल बताया था जैसे छः फीट का गन्ना है, और उसका सार एक लौटे में आ जाता है, एक किलो दूध का सार घी में आ जाता है। भैया ! इसलिए सार को प्राप्त करना हो तो अंत में एक ही गाथा पर्याप्त है। जीव जुदा है और पुद्गल जुदा है। एक भी चरण याद कर लिया आपने, तो आपका पूरा इष्टोपदेश हो गया।

51

इष्टोदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन्सजने वने वा,
मुक्तश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः।।51।।

अन्वयार्थ – (**धीमान् भव्यः**) बुद्धिमान् भव्य पुरुष (**इति**) इस प्रकार (**इष्टोपदेशं**) इष्टोपदेश ग्रन्थ को (**सम्यक् अधीत्य**) अच्छी तरह अध्ययन करके (**स्वमतात्**) अपने आत्म–ज्ञान से (**मानापमानसमतां**) सम्मान और अपमान में समता भाव को (**वितन्य**) फैलाकर (**मुक्ताग्रहः**) आग्रह को त्यागता हुआ (**सजने**) गाँव आदि में (**वा**) अथवा (**वने**) निर्जन वन में (**विनिवसन्**) रहता हुआ (**निरुपमां**) अनुपम (**मुक्तिश्रियम्**) मुक्ति लक्ष्मी को (**उपयाति**) प्राप्त करता है।

इस इष्टोपदेश के पढ़ने के फायदे क्या है? लाभ क्या है? मैं बीस अप्रैल 2019 से इष्टोपदेश की वाचना कर रहा हूँ, और आज मई 2019 हो रही है। हे प्रभु! इष्टोपदेश के पढ़ने के फायदे क्या है, लाभ क्या है? फायदे क्या है?

'इष्टोपदेशमिति सम्यग्'

पहली बात तो सम्यक् प्रकार से पढ़कर के कौन? धीमान् बुद्धिमान जीव इष्टोपदेश को सच्चे तरीके से पढ़कर के, विनय–भक्ति से पढ़कर के,क्या करे? **'स्वमताद्'** निज मत से अब अपने स्वयं संवेदन से, पहले पढ़ लिया आगम, अब स्वमत याने संवेदन से क्या करें? विस्तार करे, **जैसे तेल की बूंद पानी में जाकर के विस्तार को प्राप्त हो जाती है, ऐसे गुरु की विद्या विनयवान शिष्य में जाकर के विस्तार को प्राप्त हो जाती है।** जैसे ग्रीष्म काल में जंगल में, लगी हुई चिंगारी, पूरे जंगल के बराबर बन जाती है, उसी तरह

योग्य शिष्य में गयी हुई थोड़ी सी विद्या, उसके समग्र जीवन को प्रकाशित कर देती है। आचार्य ने कहा जहाँ अवधिज्ञान के छः भेद बताये, वहाँ वर्धमान बढ़ता जाता है, जैसे शुक्ल पक्ष का चाँद दोज से लेकर पूनम तक बढ़ता जाता है, उसी तरह जो इष्टोपदेश को पढ़ता है उसका ज्ञान वर्धमान हो जात है। चिंतन नहीं करेगा तो हीयमान हो जायेगा, स्वाध्याय नहीं करोगे तो हीयमान हो जाओगे। अब भैया ! फल की ओर चलो, पेड़ की जड़ से लेकर के ऊपर के तने तक पहुँच गये, फल भी हाथ में आ गया, लेकिन फल से काम नहीं चलना, फल के रस से काम चलना है, फल में कुछ ऐसा होता है, जो हटा दिया जाता है। तो फल में जो रस है, वह सारभूत है। बोलो, सम्पूर्ण फल खाया जाता है, आप क्या करते हो केला खाते हो कि नहीं, उसका छिलका निकाल देते हो क्यों? उसमें जो सार तत्त्व है उसको प्राप्त कर लिया। पहले खरीदते समय केला का छिलका भी सारभूत था, यदि छिलका नहीं होता तो आप बाजार से केला नहीं खरीदते, दुकानदार कहे सर आप क्यों मेहनत करे। मैं ही मेहनत कर देता हूँ। केले छीलके दे देता हूँ। बोलो तो उस समय वह छिलका उपादेय है कि नहीं? तो पूरा इष्टोपदेश उपादेय है कि नहीं, अन्यथा आप कहते महाराज मैं एक गाथा पढ़ूँगा 50 नम्बर भैया ! किसान अपने बाग में पेड़ लगाता है, उसी तरह द्वादशांग का पूरा वृक्ष लगा दिया। आचार्य ने, तत्त्वज्ञान का तरुवर लगा दिया। अब अंत में जाकर के दो में बांट दिया। एक फल ये लगा, एक फल ये लगा। ये अलग है और ये अलग है। ये खाने योग्य है, ओर ये खाने योग्य नहीं है। अब क्या करो? मान और अपमान, मनुष्यगति में मान की प्रचुरता है, यद्यपि देवों में भी है। यहाँ पर तुम इतना करो, क्योंकि आचार्य जानते हैं, कि सम्यग्दर्शन टूटता क्यों है? धर्मात्मा, धर्मात्मा से टूटता क्यों है? श्रावक साधु से टूटता क्यों है? सिर्फ एक कारण मान। मान हमें तोड़ देता है, इसलिए समन्तभद्र आचार्य ने लिखा –

स्मयेन योऽन्यानत्येति, धर्मस्थान गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्बिना (26)।।

रत्नकरण्डक श्रावकाचार

स्मय याने घमण्ड को जो प्राप्त न हो, वह धर्मात्मा है, जिसके अन्दर अहंकार न आये, कर्तव्य आये, अहंकार न आये। जो अहंकार से परे जी रहा है। ऐसा वह आत्मा, मान और अपमान से समता को धारण करता है। साधना का सार समता में निहित है। समता है,

तो साधना है। समता है तो समाधि है। जैसे आपके व्यापार की कोई भी वस्तु सिर्फ लाभ के लिए बिकती है। उसी तरह श्रावक और साधु की कोई भी चर्या समता के लिए होती ह। समता साधना नहीं है, समता साधना का रस है। सामायिक साधना है, स्वाध्याय साधना है, विहार साधना है, मूलगुण साधना है, महाव्रत साधना है। लेकिन समता साधना का रस है, कहा जात है –

''समता का ताला न टूटे''

यदि जौहरी की दुकान पर सौ रुपये का ताला पड़ा हुआ है और कहा जाये कि भैया ! आपकी दुकान का ताला टूट गया, तो आप क्या समझते हो? क्या गया, ताला टूट गया मतलब क्या गया? सिर्फ सौ रुपये का ताला नहीं गया। बहुमूल्य सम्पत्ति चली जाती है, उसी तरह से यदि समता टूट जाती है, तो आत्मा के सभी अमूल्य गुण चले जाते हैं और ताला सही लगा है यानी भीतर का माल सुरक्षित है। समता सही है, तो भीतर के सभी गुण सुरक्षित है। समता का ताला टूट गया तो सब गुण गये। भैया! तुमने कभी भाजी बैचने वाली को देखा। जब मैं मोराजी में था, बड़े बाजार में भाजी बैचने वालों की दुकान लगती वह अम्मा क्या करती? उसी बोरे पर उनको बैठना है और पैसा भी बोरे में ही रखना है। अब वह क्या करेगी, उस पैसे को बार–बार टटोलती रहेगी, देखती रहेगी, ऊपर से टटोलती रहेगी, भाजी भी तोल देगी। जैसे वह भाजी बैचने वाली अम्मा दिनभर सुबह से शाम तक पैसों पर हाथ फेरती रहती है। क्योंकि वह भाजी बैचने का सार है, उसी तरह स्वाध्याय का सार है, समता पर हाथ फेरते रहो। भैया ! वह समता है, कि नहीं है, खो तो नहीं गयी। वह परिणाम शमभाव के परिणाम

''चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो''

चारित्र आत्मा का धर्म है, फिर पूछा कि वह कैसा है? बोले धर्म शमभाव में तिष्ठता है, तो पूछा कि शमभाव क्या है? मोह और क्षोभ से रहित परिणाम, अर्थात् तुमने स्वाध्याय कर लिया है, तो अब मोह पैदा नहीं होना चाहिए, क्षोभ पैदा नहीं होना चाहिए, मान और अपमान पैदा नहीं होना चाहिए। यदि मान और अपमान से परे जीवन जीने की कला आ गयी, तो सुखी हो जाओगे। स्वर्ग में भी मान कषाय में जलते हैं। आज तो मेरी दशा ये थी कि दूसरे इन्द्र मेरे पांव धोते थे, अब यहाँ से मरण करके क्या होगा? समझना मान कषाय

में, दूसरे के पास कितना वैभव है? उसके वैभव को देखकर के स्वर्ग के देव भी सुखी नहीं रह पाते है, मिथ्यादृष्टि जीव किसी दूसरे के वैभव को देखने के बाद सुखी नहीं रह पा रहे हैं, तो इसका तात्पर्य, जो स्थिति स्वर्ग के मिथ्यादृष्टि देव की है, वही स्थिति मेरी हो सकती है, इसलिए अपने आप को जानो कि, मैं दूसरे के वैभव को देखकर के, दूसरे की प्रतिष्ठा को देखकर के, मेरे अंदर ईर्ष्या के परिणाम तो नहीं होते हैं, दूसरे को नीचे गिराने के परिणाम तो नहीं होते हैं, बड़े लोगों के वैभव को दो लोग देखते हैं, सम्यक्दृष्टि जीव भी देखते हैं, और मिथ्यादृष्टि भी देखते हैं, सम्यक्दृष्टि जीव ये विचार करता है कि इसने मेरे से अधिक तप किया था, इसने मेरे से अधिक भक्ति भावपूर्वक पूजा की थी, इस कारण इसे वैभव मिला है, और मिथ्यादृष्टि ये विचार करता है, मुझे क्यों नहीं मिला, इसका वैभव कब नष्ट हो जाये, समझना भैया ! और ऐसे विचार करने से, सामने वाले का तो वैभव नष्ट नहीं होता है, लेकिन इसके पुण्य जरूर नष्ट हो जाता है।

मोहक्खोह विहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो।। प्र.सा. 7

प्रिय बन्धुओ !

अपनी मान कषाय में दूसरे का अहित मत सोचो, अपनी मान कषाय में दूसरे को नीचे मत गिराओ। मान कषाय के कारण जीव क्रोध करता है, मान करता है। ये सब द्वेषात्मक स्थिति बनती है। अपमान में समता रखो और फिर क्या करो? **मुक्त आग्रह,** हठाग्रही मत बनो, क्योंकि हठाग्रही जीव दुःख पाते हैं, सत्यभामा का हठाग्रह था कि जिसके पहले पुत्र होगा दूसरे को अपनी चोटी काट के देना पड़ेगी। आखिर कष्ट उठाना पड़ा, इसलिए हठाग्रही मत बनो, मुक्त आग्रह, हमारा कोई आग्रह नहीं है। हठाग्रह नहीं है कि मुझे यहीं रहना, मुझे वहीं रहना, कि मुझे यही खाना, कि मुझे यही पीना, हठाग्रही नहीं, विवेकी बनो। विवेकी बनने में सार है, हठाग्रही बनने में सार नहीं है, सार तो विवेक में है कि तुम्हारा विवेक क्या है? अपने आपको विवेक की तराजू पर तोलो, फिर चाहे तुम वन में रहो, चाहे भवन में रहो, **सुख मकान नहीं देता है, सुख भवन नहीं देता है। सुख तो आत्मा का ज्ञान परिणाम देता है।** निर्मोह दशा में सुख है, सिद्धों के पास कोई मकान नहीं है, लेकिन अनंत सुख है, तो सुख का आधार मकान नहीं है, इसलिए आचार्य कहते हैं –

''विनिवसन्सजने वने वा'

चाहे जन में रहो, समुदाय में रहो या वन में रहो, वह जीव **'मुक्तिश्रियं निरुपम'** अनुपम मुक्ति रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है जैसे भक्तामर कार ने कहा –

'तं मानतुंग – मवशा समुपैति लक्ष्मी:'

उसके लिए मुक्तिरूपी लक्ष्मी स्वयं पास आ जाती है। वही बात इष्टोपदेश कार ने कही, वह मुक्ति रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करता है, इष्टोपदेश का अंतिम फल बता दिया, कौनसी लक्ष्मी? मुक्तिरूपी लक्ष्मी उसकी सखी कौन है? समता। समता सखी होगी मुक्ति रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति होगी।

प्रिय बन्धुओ !

इस तरह से हमने इष्टोपदेश को परिपूर्ण रूप से देखा। यह इष्टोपदेश का सार तत्त्व पूरा रस–रसायन आप समझ लें, और ऐसा समझकर के कि हमें अहंकार नहीं करना है। मान और अपमान में नहीं जीना है। अपने आप को निरभिमान दशा में ले जाना है। यही जीवन का सार है, क्यों? पल दो पल के लिए जिंदगी मिली है, किसका मान करेंगे, देखो सुंदरता का मान करने वाले, फूल पौधे बन जाते हैं, हम जो इच्छा करेंगे वह मिलेगा, लेकिन इच्छा करने की हम में कला भी तो नहीं है, इसलिए हम तुच्छ इच्छायें कर लेते हैं, और विशेष पुण्य के फल से हमारी तुच्छ इच्छायें पूर्ण हो पाती हैं, जबकि हमें बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है।

प्रिय बन्धुओ !

इस ग्रंथ की महिमा तो देखो, कहाँ से निकाला था? खान से निकाला था, दूसरे श्लोक में कहा था –''**दृषद: स्वर्णता**'' खान से निकाला था और **मुक्ति श्रियं** मुक्ति रूपी लक्ष्मी पर विराजमान अर्थात् जीवन के लिए एक ही ग्रंथ पर्याप्त है यदि सौ ग्रंथ कोई न सीख पाये, एक ग्रंथ को सौ बार सीखो। आचार्य भगवन् श्री विद्यासागर जी महाराज एक बात कहते हैं, **पढ़ाई को पहाड़ मानकर के मत पढ़ो, पहाड़ा मानकर के पढ़ो।** एक बात बताऊँ, कभी–कभी लोग बोलते हैं, कि महाराज ! मैं अपने आप में सब का अध्ययन करता हूँ और सबकी पुस्तकों का भी अध्ययन करता हूँ और सबके संदेशों का भी अध्ययन करता

हूँ। हित की बात जहाँ से मिलती है, मैं उसे प्राप्त करता हूँ। भैया चिंता मत करो, **बायें हरिण दायें जाए, लंका जीत राम घर आये।** मैं एक जगह था और एक व्यक्ति मिल गये, मैं प्रवचन को बैठा और किसी ने मुझे कह दिया कि महाराज श्री आज आप को ''मूकमाटी'' पर बोलना है, मैं उस दिन पहली बार मूकमाटी पर बोला, फिर किसी ने बोला, महाराज श्री हम तो मूकमाटी को इतनी बार पढ़ चुके हैं, हम इतने रहस्य को नहीं जान पाये, आपने इन सब रहस्यों को कैसे प्राप्त कर लिया? मैंने कहा जिसकी साहित्य के प्रति अभिरुचि है, वह कहीं न कहीं से पुस्तक भी प्राप्त कर लेता है, उसका पठन भी कर लेता है उसका सार तत्त्व भी प्राप्त कर लेता है। मूकमाटी जो आचार्य भगवन् विद्यासागर जी ने लिखी, उन्होंने पिछली पाँच कृतियाँ लिखी थी, और मुक्तागिरि में जो एकांत में नीरवता में जो लेखन किया, उसका सार तत्त्व मूकमाटी है।

प्रिय आत्मन्।

इन सबका अध्ययन करने के बाद सार ये निकलता है, कि जीवन में समता है, तो सारे स्वाध्याय का फल है, साधना का फल है, आज प्रवचन में बैठे हो समता है, सब समान भाव से बैठे हो, समाचार सुना आपने न्यूज पेपर लिखा रहता है। समाचार, समतामयी आचार, सबके प्रति समान आचार, हो जिसमें वह समाचार कहलाता है। मूलाचार का एक अधिकार समाचार अधिकार है। उस अधिकार का सार पहले दो शब्दों में, जीव जुदा, पुद्गल जुदा, अंत में प्रेरणा क्या है? पूरा पढ़ने की प्रेरणा क्या है? समता। मान और अपमान संसार में कदम–कदम पर मिलेगा, लेकिन इन दोनों के बीच में आपको, यदि पूरी वाचना का सार यदि एक शब्द में लिखना हो तो समता। दो जीव जुदा, पुद्गल जुदा और तीन शब्द में लिखा हो तो मान–अपमान में समता, हमारा पूरा इष्टोपदेश हो गया। आपको मालूम है, विवाह शुरु से पूरा होता है। तैयारियाँ चलती है। एक शब्द से मतलब क्या है? विदाई। पूरे विवाह का एक शब्द में क्या अर्थ निकलता है? बेटी की विदाई सत्य है कि नहीं। सत्य है। विदाई तक ही विवाह है। विवाह का विदाई हो गया। उसी तरह यहाँ पर समता में ही सार है।

❑❑❑

परिशिष्ट–1

।।ॐ नमः सिद्धेभ्यः।।

विशेष–प्रवचन

भाग्य और पुरुषार्थ समीक्षा

दैवादेवार्थ सिद्धिश्चेद्दैवं पुरुषतः कथम्।
दैवतश्चेद् निर्मोक्षः, पौरुषं निष्फलं भवेत्।।88।।

यदि भाग्य से ही प्रयोजन (कार्य) की सिद्धि हो तो पुरुषार्थ किसलिए? यदि से भाग्य ही मोक्ष हो जायेगा तो पुरुषार्थ निष्फल ठहरता है।

पौरुषादेव सिद्धिश्चेत्, पौरुषं दैवतः कथम्।
पौरुषाच्चेद मोक्षंस्याद्, सर्व प्राणिषु पौरुषम्।।89।।

अर्थ – यदि पौरुष से ही कार्य सिद्ध होवे तो भाग्य से पुरुषार्थ का फलित हुआ ऐसा क्यों। यदि पुरुषार्थ से ही मोक्ष हो तो सर्व प्राणियों पुरुषार्थ पाया जाता है। सबको मोक्ष होना चाहिए।

अबुद्धिपूर्वा पेक्षाया, मिष्टानिष्टं स्वदैवतः।
बुद्धिपूर्वव्यपेक्षाया, मिष्टानिष्टं स्वपौरुषात्।।91।।

प्रिय आत्मन्।

''सिद्धिः अनेकांतात्'' श्री पूज्यपाद आचार्य ने जैनेन्द्र व्याकरण मैं लिखा, **सिद्धि अनेकांत से होती है,** यह सभा तत्त्वज्ञान मन्दिर है, गणधर परमेष्ठि न्याय के देवता हैं, यहाँ

सिद्धि का निर्णय पक्ष और विपक्ष को देखकर नहीं होता है यहाँ सिद्धि का निर्णय अनेकांत और स्याद्वाद के अनुरूप होता है। आज जैन दर्शन के उद्भट आचार्य समंतभद्र स्वामी द्वारा प्रदत्त भाग्य और पुरुषार्थ के विषय में आपके समक्ष पूर्वाचार्यों का चिंतन प्रस्तुत करूँगा, सर्वप्रथम भाग्य और पुरुषार्थ की परिभाषायें समझ लें। **पुरुषार्थ क्या है? भाग्य क्या है?**

अबुद्धि पूर्वापेक्षायाम्.....

सुनो! जिस कार्य के विषय में, हमने पूर्व में योजना तय नहीं की और वह कार्य पुण्य के योग से हो गया, उसे तो कहते हैं, भाग्य। और जिस कार्य की हम पूर्व योजना कर रहे हैं, ओ कहलाया पुरुषार्थ। आपने घर में चौका लगाया आपका पुरुषार्थ। लेकिन चौका लगाने के बाद ये कोई पता नहीं था कि आज आचार्य महाराज आयेंगे, या मुनिराज आयेंगे या एक साधु आयेंगे, या दो साधु आयेंगे, या क्या होगा? ये प्रश्न खड़ा था कि नहीं? तो पहले आपने क्या किया? पुरुषार्थ किया। अब आगे के लिए प्रश्न अभी बुद्धि पूर्वक चौका लगाया, ये हुआ पुरुषार्थ। इसके बाद आप पड़गाहन के लिए भी आये, ये भी हुआ पुरुषार्थ। विनय भक्ति से पड़गाहन किया ये हुआ पुरुषार्थ, लेकिन उस पड़गाहन में आपको प्रथम दिन ही आचार्य परमेष्ठि का पड़गाहन मिल गया, प्रथम दिन ही आचार्य परमेष्ठी के साथ एक दो और साधु मिल गये और आपके यहाँ निराकुलता पूर्वक निर्विघ्न आहार हो गये, इसे आप क्या कहोगे? भाग्य। आचार्य कहते हैं, जहाँ बुद्धि पूर्वक योजनाबद्ध तरीके से कार्य हो वह पुरुषार्थ है– क्योंकि मन का पुरुषार्थ, वचन का पुरुषार्थ, काया का पुरुषार्थ तथा ज्ञान का पुरुषार्थ, भी पुरुषार्थ कहलाता है। ध्यान देना। तत्त्व ज्ञान का पुरुषार्थ पुरुषार्थ है। मैं प्रवचन कर रहा हूँ, ये मैं पुरुषार्थ कर रहा हूँ। मेरे प्रवचन सुनकर के आपको वैराग्य आ जाये, आप दीक्षा लेने तैयार हो जायें, और संघ में सम्मिलित हो जायें तो ये मेरा भाग्य। आप भाग्य पुरुषार्थ पर विश्वास रखे हैं। **तो पुरुषार्थ के फल का नाम भाग्य है,** समझना। बुद्धि पूर्वक, ज्ञान पूर्वक, सम्यक् ज्ञान पूर्वक किये जाने वाले सत्कार्य को सत्पुरुषार्थ कहते हैं। मिथ्याज्ञान, विपरीत ज्ञान, कषाय के आवेग में किये जाने वाले कार्य को गलत पुरुषार्थ कहते हैं। पुरुषार्थ दो तरह का हो जाता है। जब ज्ञान ही गलत है, कषाय का आवेग है, और आप कार्य कर रहे हो तो वह पुरुषार्थ गलत दिशा में जा रहा है। मैं अनादि से पुरुष हूँ,

आत्मा हूँ, पुरुष माने आत्मा, अर्थ माने प्रयोजन। **आत्मा के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला कार्य पुरुषार्थ कहलाता है।** जिससे आत्मा का प्रयोजन सिद्ध हो उसे हम सम्यक् पुरुषार्थ कहते हैं और जिससे आत्मा का प्रयोजन सिद्ध न हो, वह कषाय के आश्रित राग–द्वेष के आश्रित किया जाने वाला कार्य असत् पुरुषार्थ, मिथ्यापुरुषार्थ है। जो मिथ्यापुरुषार्थ होगा ओ सिद्धि भी क्या देगा? लौकिक सिद्धि और जो सम्यक् पुरुषार्थ होगा, ओ सिद्धि भी अलौकिक देगा, पुरुषार्थ दोनों कर रहे। शुभचन्द्र भी कर रहे, भर्तृहरि भी कर रहे? एक ही माँ के दो बेटे शुभचन्द्र आचार्य और भर्तृहरि, भर्तृहरि वैदिक संत बने, शुभचन्द्र दिगम्बर संत बने, पुरुषार्थ दोनों ने किया, तप दोनों ने किया – भर्तृहरि ने 12 साल में सोना बनाने की विधि सीखी। शुभचन्द्र आचार्य ने आत्मा को शुद्ध बनाने की विधि सीखी। भर्तृहरि के मन में आ गया, मेरा भाई कहाँ तप कर रहा होगा? उसने क्या सिद्ध किया होगा? मुझे तो सोने की सिद्धि हो गयी है, क्यों न मैं एक बोतल स्वर्ण रस भाई के पास भेज दूँ? भेजा। शुभचन्द्र आचार्य कनक गिरि पर्वत (स्वर्णगिरि पर्वत) पर ध्यान कर रहे थे, भर्तृहरि का शिष्य स्वर्णरस लेके पहुँचा, इन्होंने ध्यान नहीं दिया, दुबारा भेजा और ज्यादा भेजा, संदेश के साथ ही आपके भाई भर्तृहरि ने बारह साल में स्वर्ण रस की सिद्धि की है। तो इन्होंने कुछ नहीं कहा। तीसरी बार में भर्तृहरि स्वयं पहुँचे, और प्रणाम किया और स्वर्ण रस के साथ भर्तृहरि ने शुभचन्द्र के पास अर्घ अर्पित किया, शुभचन्द्र देखते हैं कि मेरे भाई को, इस बात का... ...गर्व है। कि मैंने सोने बनाने की विद्या सिद्धि कर ली है, शुभचन्द्र आचार्य कमण्डलु का जल लिया और पर्वत पर फेंक दिया, पूरा पर्वत सोने का हो गया। तप दोनों ने किया, दोनों का तप भिन्न था, सिद्धियाँ भिन्न हुयी।

प्रिय बंधुओ।

पुरुषार्थ और भाग्य। पुरुष (आत्मा) अर्थ (प्रयोजन)। आत्मा के लाभ के लिए, जो किया जाये, वह पुरुषार्थ है। लौकिक में मेहनत करने को, परिश्रम करने को पुरुषार्थ कहते हैं। लेकिन यदि दिशा ही गलत है, भैया ! आपको इंदौर काँच मन्दिर जाना है, तो काँच मन्दिर जाने के लिए यदि विपरीत दिशा पकड़ लेंगे, तो कहाँ पहुँचेगे? महु पहुँचेंगे। आप काँच मन्दिर तो नहीं पहुंचेगे, चलेंगे तो पुरुषार्थ बराबर होगा, लेकिन फल नहीं मिलेगा।

आचार्य ने पहले कहा सुबुद्धि पूर्वक किया गया कार्य ही पुरुषार्थ कहलाता है, यदि कुबुद्धि पूर्वक किया जाये, तो वह पुरुषार्थ असत् पुरुषार्थ कहलाता है, और असत् पुरुषार्थ सफलता भी देगा, तो गलत सफलता मिलेगी, वह विफलता कही जायेगी। निर्णय हो गया। पुरुषार्थ के दो भेद ! भाग्य दो रूप परिणमन कराता है, सौभाग्य और दुर्भाग्य। जब पुण्य कार्य संपादन होता है, पवित्र सिद्धियाँ होती है, तो सौभाग्य बोलते हैं और अपवित्र घटनायें घटती हैं, तो उसे दुर्भाग्य बोलते हैं। आचार्य भगवन् का कहना है कि भाग्य से सिद्धि होती है। आचार्य कहते हैं– देखो एकांती मत बनो, ये कहो कि भाग्य से भी सिद्धि होती है, और पुरुषार्थ से भी सिद्धि होती है। लेकिन जब मैं बचपन में श्री गणेश दिगम्बर, जैन संस्कृत महाविद्यालय मोराजी सागर में पढ़ता था, उस समय प्रत्येक शनिवार को सभा होती है। छात्रहित कारिणीसभा, उस सभा मे एक विषय मिलता था, हमारे प्राचार्य दयाचन्द्र साहित्याचार्य जी, बोलते थे –

'वादे वादे जायते तत्त्व बोधः'

उनका सूत्र रहता था, कहते वाद विवाद करना चाहिए, क्यों करना चाहिए? बोले वाद विवाद करने से तत्त्व का बोध बढ़ता है, तो एक पक्ष में भाग्य के ऊपर बोलेगा। दूसरा पक्ष पुरुषार्थ के ऊपर बोलेगा। इस पक्ष में भी पाँच–सात वक्ता रहते थे और उस पक्ष में भी पाँच–सात सभा में पूरे शिक्षक मण्डल प्राचार्य गण और मनोनीत अध्यक्ष होते थे, निर्णायक मण्डल होता था, चूँकि हमारा जैन विद्यालय था, तो निर्णय भी अनेकांत की दृष्टि से देते थे। पुरस्कार वक्तृत्व शैली पर मिलता था। आइये, कोई सोचे कि भाग्य से ही कार्य की सिद्धि होती है, एक पल के लिए मान ले, तो आचार्य कहते हैं पुरुषार्थ से भाग्य का निर्माण कैसे होगा? भैया। भाग्य क्या है? पुरुषार्थ के द्वारा निर्मित किया हुआ महल। पुरुषार्थ की ईंट से, बने हुए महल का नाम भाग्य है। पुरुषार्थ की ईंट कैसी रखी है? भैया! कूप खोदते समय ये पता नहीं था कि पानी निकलेगा या नहीं। जब किसान अपने खेत में कुँआ खोदता है, पुरुषार्थ सब करते हैं, लेकिन भाग्य, किसी–किसी को फलता कि नहीं, तो ये भाग्य से ही मान लें, अगर भाग्य से ही मानते हो तो बिना कुँआ खोदे खेत में पानी बहना चाहिए। बिना खोदे पानी आ जाना चाहिए। लेकिन बिना कुँआ खोदे पानी नहीं निकलता,

इससे सिद्ध क्या हुआ? पुरुषार्थ पूर्वक भाग्य सफलता देता है। सफलता का सूत्र क्या है? यदि हम इसे मेथमेटिक्स से ले लें पुरुषार्थ (+) भाग्य (=) सफलता, यदि हम दूसरे तरीके से लिख दें, भाग्य + पुरुषार्थ = सफलता। मुख्यतः कभी पुरुषार्थ की होती है, कभी भाग्य की होती है। किसी के लिए किन्हीं क्षणों में पुरुषार्थ मुख्य होता है, किन्हीं क्षणों में भाग्य मुख्य होता है। तीर्थंकर जन्में, रत्नों की वर्षा हुयी, और किसी का जन्म होता है तो घर में समस्या खड़ी होती है, भैया ! आचार्य कहते हैं कि जन्म जन्मान्तरों का पुरुषार्थ भी किसी भव में फलता है। महानुभव ! ये सामने आम का पेड़ लगा है, इस आम के पौधे में जो फल लग रहे हैं, इस फल की प्राप्ति होना हमारा भाग्य है, कि नहीं बोलो? लेकिन पुरुषार्थ कब किया गया था पेड़ को लगाने का, विगत पाँच वर्ष पहले आम के पौधे को लगाया और आज वह बढ़कर के फल दे रहा है तो फल कि प्राप्ति यदि भाग्य है तो उसके पूर्व लगाया गया पौधा पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ पूर्वक भाग्य कि सिद्धि, देखिए आपने पौधा भी लगा लिया, पेड़ मे फल भी आ गये लेकिन जिस समय फल का आना हुआ, उसी समय आपका ट्रांसफर हो गया, पाँच साल तक जबलपुर में वेदजी साहब ने सींचा और ज्यों ही फल का आना हुआ कि ट्रांसफर हो गया। इंदौर के लिए, क्या हुआ? ध्यान देना। पुरुषार्थ किया, बुद्धि पूर्वक सींचा था, लेकिन ज्यों ही फल आना शुरु हुआ, कि फल के समय ट्रांसफर इसे क्या कहते हैं? भाग्य, लेकिन तत्त्वज्ञानी जीव ये जानता है कि मेरा भाग्य सिर्फ बाहर निर्धारण नहीं होता। मेरा भाग्य मेरे भीतर भी निर्धारण होता है। **और भाग्य में है तो भागके आयेगा, और भाग्य में नहीं है तो भाग जायेगा।** इसलिए आपाधापी की जिंदगी सुख नहीं देती। विवेक पूर्वक निर्णय लो, सम्यक् पुरुषार्थ करो, सिद्धि भाग्याधीन है, तो आचार्य भगवन् ने स्पष्ट कह दिया, यदि तुम भाग्य से ही भाग्य की सिद्धि मानोगे तो फिर मोक्ष नाम का पुरुषार्थ क्यों कहलायेगा? पुरुषार्थ कितने हैं? चार–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। पहला प्रश्न हमारा–अभी आप कौनसा पुरुषार्थ कर रहे हैं? ये प्रवचन सुनना कौनसा पुरुषार्थ है? धर्म पुरुषार्थ है, सम्यग्ज्ञान धर्म है कि नहीं, सम्यग्ज्ञान धर्म है, सम्यग्दर्शन धर्म है, उस धर्म की आराधना चल रही है पुरुषार्थ चल रहा है। इस पुरुषार्थ के द्वारा प्रवचन सुनते–सुनते विशुद्धि बढ़ जाये। सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाये ये आपका भाग्य है। किसी के अंदर व्रत, नियम, संयम

के भाव जाग जायें, ये आपका भाग्य है। पहले पुरुषार्थ है। मोक्ष भी पुरुषार्थ हैं। भाग्य से धर्म नहीं होता, भाग्य से मोक्ष नहीं मिलता, आचार्य ने क्या कहा? धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ है। अब यदि ये माने कि भाग्य से भाग्य की सिद्धि मानों, तो मोक्ष का अभाव हो जायेगा और पुरुषार्थ निष्फल हो जायेगा, इसलिए भाग्य से ही भाग्य की सिद्धि होती है, ऐसा भी नहीं है, तो फिर द्वितीय पक्ष बोलता है, मेरी तो जीत हो गयी, पुरुषार्थ से ही सिद्धि मानना पड़ेगी, तो आचार्य कहते हैं यदि पुरुषार्थ से सिद्धि मानते हो, तो फिर पुरुषार्थ से भाग्य का निर्माण कैसा होगा? आपने पहले कहा था कि पुरुषार्थ की ईंट से बने हुए महल का नाम भाग्य है। तो आपने पुरुषार्थ से सिद्धि कैसे मान ली? पहले दीवाल को खड़ी करो, तो पुरुषार्थ के द्वारा भाग्य का निर्माण होता है। हमने सम्यक् पुरुषार्थ किया। हमने शास्त्र खोला और हमें सुख शांतिदायक तत्त्वज्ञान मिल गया, ये हमारा भाग्य है। पन्ना (म.प्र.) में लोग जमीन लेते हैं, ये बुद्धिपूर्वक कार्य करते हैं, जमीन लेकर के फिर खोदने का कार्य प्रारम्भ करते हैं। किसी को हीरा मिल जाता है। किसी को नहीं मिलता है, कोई लापरवाही कर दे तो खोदने वाले ही ले जायें। जरा सा प्रमाद हो जाये तो आयी हुई उपलब्धि भी हाथ से चली जाती है, तो ये पुरुषार्थ तो किया, लेकिन भाग्य कमजोर था, नहीं मिला। अब कोई व्यक्ति लोटा लेके गया, मिट्टी पास में नहीं, उसने मिट्टी खोदी और हीरा निकल आया, उस उपलब्धि को भाग्य कह दिया। लेकिन उपलब्धि होने के बाद उसने सदुपयोग नहीं कर पाया तो फिर दुर्भाग्य कहोगे कि नहीं। इसलिए भाग्य और पुरुषार्थ को अच्छी तरह समझो, जिनका मत है कि भाग्य से ही सिद्धि होती है। तो भैया ! राम लंका क्यों गये? सीता को लेने, समझ रहे, सबसे पहले राम ने पुरुषार्थ किया कि नहीं? जब सीता का स्वयंवर होना था तब राम वहाँ पहुँचे कि नहीं? धनुष उठाया कि नहीं? उठाया। पहले पुरुषार्थ किया। सीता का जब अपहरण हो गया, तो लंका वापिस लेने पहुँचे कि नहीं? रावण से युद्ध हुआ कि नहीं? क्यों हुआ? यह पुरुषार्थ क्यों किया? इतना बड़ा सेतुबाँध क्यों बाँधा? यदि भाग्य से ही सिद्धि होती है, तो राम के भाग्य में यदि सीता थी तो इतना युद्ध क्यों? तो राम भी जानते थे, सीता भाग्य में तो है, लेकिन इसी प्रकार पुरुषार्थ करने के बाद मिलेगी। राम को पुरुषार्थ पर भरोसा था, हनुमान को पुरुषार्थ पर भरोसा था। यदि राम सोचते मेरे भाग्य में सीता होगी

तो यही लौट के आ जायेगी, भैया ! ऐसा एकांतमत राम ने स्वीकार नहीं किया। तो राम ने क्या किया? पुरुषार्थ किया कि नहीं, गलत पुरुषार्थ नहीं किया। रावण ने अनीति पूर्वक पुरुषार्थ किया। रावण ने चाहा था कि सीता मेरी हो जाये, लेकिन वहाँ पुरुषार्थ अनीति पूर्वक था, अन्याय पूर्वक था, मिथ्या पुरुषार्थ चल रहा था, इसलिए क्या हुआ? रावण का भी पुरुषार्थ था, राम का भी पुरुषार्थ था। दोनों परम पुरुषार्थी थे। दोनों के पुरुषार्थ में कमी नहीं थी, लेकिन रावण का पुरुषार्थ मिथ्या था। राम का पुरुषार्थ सच्चा था। इसलिए सफलता राम को मिली। पुरुषार्थ दो तरह का हुआ कि नहीं, स्पष्ट हो गया। पुरुषार्थ दो तरह का हुआ। राम ने भी पुरुषार्थ किया। रावण ने भी पुरुषार्थ किया। यदि आप कहते हो पुरुषार्थ से सिद्धि होती है, तो पुरुषार्थ दोनों ने किया है, बोलो? जीवन भर की संपदा–पुत्र, परिवार और लंका के सैनिकों को युद्ध में ले गया कितना पुरुषार्थ किया उसने, लेकिन वहाँ पर लेकिन वहाँ पर आचार्य कहते हैं, राम का पुरुषार्थ सुबुद्धि पूर्वक था, रावण का पुरुषार्थ कुबुद्धि पूर्वक था, और जब सुबुद्धि पूर्वक पुरुषार्थ होता है, तो सफलता मिलती है, कुबुद्धि पूर्वक पुरुषार्थ होता है, तो विफलता मिलती है। सफलता विफलता तो आगे की बात है, पहले पुरुषार्थ तो सही हो। दिशा तो सही हो, इसलिए हम पहले से सोचते है अपने बच्चे को डॉक्टर बनाना है, 11वीं क्लास से साइंस, सी.ए. बनाना है तो कॉमर्स, आपको कलेक्टर बनना है आर्ट, आप अपने बच्चे को क्या बनाना चाहते हैं? उस तरह की भूमिका पहले से रखना पड़ती है, तो आचार्य कहते हैं, आगे डॉक्टर बनना। ये उसके भाग्य की बात है, लेकिन 11वीं में उसे साइंस लेना पड़ेगी। पढ़ना पड़ेगी और इतनी क्लास उसे विज्ञान के साथ उसे पास करना होगी, तो ये है पुरुषार्थ और भाग्य की बात कोइ सोचे मैं पढूँगा नहीं, साइंस नहीं पढूँगा, पढूँगा मेथेमेटिक्स बनूँगा डॉक्टर, पढूँगा कॉमर्स और बनूँगा डॉक्टर तो नहीं भाई ध्यान देना ! इसलिए पुरुषार्थ की नींव पर भाग्य का महल खड़ा होता है ये मातायें बोलती है, मैनासुंदरी को तो भाग्य से ही सफलता मिल गयी, मैनासुंदरी ने क्या कहा था?

मैना सुंदरी कहे पिता से, भाग्य उदय जब आयेगा।
कोड़ी पति जो दिया आपने, कामदेव बन जायेगा।।

मैना सुंदरी पिता से क्या बोलती है? पिताजी इसमें आपका कोई दोष नहीं है, नाटक

सुनना और नाटकीय बातें अलग होती है। हम तत्त्व की चर्चा कर रहे हैं, यानी नाटक की नहीं, मैनासुंदरी को श्रद्धान था कि पिताजी तुमने कुछ दिया ही नहीं है, न कोड़ी पति दे सकते थे, न राजकुमार दे सकते थे, ये भी मेरे भाग्य में है वह भी मेरे भाग्य में, लेकिन मैनासुंदरी जानती थी, भाग्य का निर्माण पुरुषार्थ से होता है। यदि मैनासुंदरी जानती थी, भाग्य के भरोसे बैठती, कि जब भी कामदेव बनना होगा बन जायेंगे, लेकिन नहीं ज्ञानियों! मैनासुंदरी ने पुरुषार्थ किया, मैनासुंदरी ने हजारों तीर्थ की वंदना की है। वहाँ से निकलने के बाद जहाँ–जहाँ कदम रखा, प्रत्येक जगह तीर्थों की वंदना की। धर्म की आराधना की। बारह साल तक सिद्धचक्र विधान किया। एक वर्ष में तीन बार सिद्धचक्र किया, छत्तीस बार सिद्धचक्र व्रत किया, आठ–आठ दिन के छत्तीस बार उपवास किये। आप लोग सिर्फ तसला उठाने वाले को परिश्रमी कहते हो। आप लोग सिर्फ हाथ ठेला चलाने वाले को, धूप में काम करने वाले को परिश्रमी कहते हो। लेकिन ध्यान रख लेना, प्रज्ञाशील लोग सिर्फ उसे तन का श्रम कहते हैं, लेकिन तन के श्रम से वचन का श्रम, और वचन के श्रम से मन का श्रम अनंतगुना होता है। इसलिए वेतन भी उस क्रम से मिलता है। तन का पुरुषार्थ करने वाले को कुछ वेतन उससे संख्यात गुना वेतन वचन के पुरुषार्थ को, उसे संख्यात गुणा वेतन मन वाले को, आचार्य कहते हैं, तन पुरुषार्थ, वचन पुरुषार्थ, मन पुरुषार्थ, इसको भी समझो। कौन तन से पुरुषार्थ कर रहा, कौन वचन से पुरुषार्थ कर रहा, कौन मन से पुरुषार्थ कर रहा? मैनासुंदरी क्या कर रही थी? मैनासुंदरी ने अपने पति को, जो श्रीपाल पूर्व भव का साधक था सामान्य पुरुष नहीं था, वह श्रीपाल देखिए गलत पुरुषार्थ का फल देख लीजिए। श्रीपाल ने अपने जीवन में, चार बार गलती की कि एक बार सही काम किया, मैं पाँच घटनायें याद दिलाता हूँ तो आपको पता पड़ेगा कि पुरुषार्थ कब का, और भाग्य कब? श्रीकांत की पर्याय में, श्रीपाल ने पूर्व भव में मुनिराज को कोड़ी कहा एक गलती। मुनिराज जो सरोवर के किनारे तप कर रहे थे उठाया और तालाब मे फेंक दिया, दूसरी गलती की। लेकिन वहाँ पर सेठिया जी जैसे समझाने वाले मिल गये तो तत्काल तालाब से निकाल लिया। एक और घटना हुयी, एक मुनिराज को निंदा भरे शब्द कहे, तो श्रीपाल ने अपने जीवन में ये त्रुटियाँ की, जहाँ त्रुटियाँ हुयी, तो उस भव में न सही पर भव में मिलता है।

अपने–अपने कर्मों का फल –

''इस जीवन में न सही, परभव में लिता है।
अपनी–अपनी करनी का फल, सबको मिलता है''॥

करनी पूर्व भव में, और फल इसमें, ध्यान देना। टी के वेद जी ने मालूम है क्या किया? जो जबलपुर में नर्सरी के छोटे–छोटे पौधे लाये थे, उन पौधों से इतना प्रेम हो गया कि जबलपुर में छोड़के नहीं आये, वह पौधे भी साथ में लाये। यहाँ अपने बगीचे में लगा लिये। अर्थात् पूर्व स्थान का पुरुषार्थ आगे स्थान पर भाग्य बन जाता है एक समय पहले का पुरुषार्थ अगले समय में भाग्य बन जाता है। एक मिनट पूर्व का पुरुषार्थ, अगले मिनट में भाग्य बनके आ जाता है। घंटा, दिन, वर्ष भैया। आज मैं सौभाग्यशाली हूँ तो कल मैं पुरुषार्थशाली था। कल जब मैं पुरुषार्थ कर रहा था, तब मेरा सौभाग्य था कि मुझे सम्यक् गुरु मिले और आज उस पुरुषार्थ से सौभाग्य वाला हूँ। और आज मैं पुरुषार्थ कर रहा हूँ। तो इसका सौभाग्य हे प्रभु! ये जिनवाणी माँ प्रवचन उपदिष्टा को, गणधर बनाती है, अरिहंत बनाती है, बनायेगी। आओ पुरुषार्थ मात्र से ही एकांत से सिद्धि मत मानों पुरुषार्थ से सिद्धि होने लगे तो पुरुषार्थ से भाग्य का निर्माण होता है। ऐसा कैसे कह पाओगे और पुरुषार्थ भी सफल कैसे हो पायेगा? इसलिए हे जीवो! सभी प्राणी पुरुषार्थ करते हैं लेकिन सबका पुरुषार्थ सफल नहीं होता है। इसलिए प्रत्येक पुरुषार्थी को क्या करना चाहिए? सम्यक् पुरुषार्थ करना चाहिए और सम्यक् पुरुषार्थ में धर्म पुरुषार्थ भी आता है, ध्यान देना। आप दुकान खोलेंगे, व्यापार आपका चलेगा, लेकिन दुकान के पुरुषार्थ के साथ, आपको धर्म का पुरुषार्थ भी करना चाहिए कि आपके बेटे मन्दिर आयें। आपके बेटे आहार चर्या में रहें, ताकि कल दुकान की पूँजी को व्यर्थ में न बहा दें। ये धर्म पुरुषार्थ आपके माता–पिता ने जो आपको संस्कार दिये हैं, वह उनका धर्म पुरुषार्थ था, आपके प्रति। समन्तभद्र स्वामी ने लिखा –

यदि पापनिरोधोऽन्य, सम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्न, सम्पदा किं प्रयोजनम्।।27॥

(रत्नकरण्डक–श्रावकाचारः)

यदि तुमने पाप को रोक दिया, यानी गलत पुरुषार्थ करना बंद कर दिया, पाप यानी गलत पुरुषार्थ, पुण्य यानी सम्यक् पुरुषार्थ) यदि तुमने पाप को रोक दिया तो सम्पत्ति से क्या प्रयोजन? और यदि पाप का आस्रव जारी है, तो सम्पत्ति कर क्या लेगी तुम्हे? दुःखों से बचा लेगी क्या? नहीं, बचा पायेगी।

प्रिय बंधुओ!

इस तत्त्व को समझो कि पुरुषार्थ की जब भी बात आती है, व्यक्ति मेहनत को पुरुषार्थ मानता है, तत्त्व की आराधना को, भगवान की भक्ति को, णमोकार की जाप को, स्वाध्याय को पुरुषार्थ की गिनती में व्यक्ति गिनता नहीं है। भैया ! जरा ध्यान से सुनना। भैया! आप कितने वर्षों से व्यापार कर रहे हो? और आपने जीवन में कितना कमाया होगा? आपने अपने जीवन में जितना कमाया है, उतना तो आपके बेटे ने, जिस दिन माँ की गोद में खेला उसी दिन कमा लिया। अरे तुम मुख भी नहीं देख पाये थे, वह तुम्हारी सम्पत्ति का मालिक बन गया था। भैया ! तुम भी कमाओ, तुम्हारा बेटा भी कमाये दोनों मिलके कमाओ, कितना कमाते हो। लेकिन तुम्हारा नाती जो होगा बेटे का बेटा जितना तुम जीवन भर में कमाओगे, उतना तो वह एक सैकण्ड में कमा लेगा। बोलो सत्य है, कि नहीं? अब कहो अहंकार किस बात का, कि हमने इतना कमाया, संसार के व्यक्ति सोचते हैं हमने इतना कमा लिया, हमने इतना कमा लिया, पर आचार्य कहते हैं, जीव ! तू क्या कमायेगा, जितना तू कमायेगा, उतना तो तेरा बेटा एक सैकण्ड में कमा लेगा, भैया! भाग्य भी तो देखो, और सुनो भैया ! तुम्हारा बेटा, तुम्हारे पुण्य पाप के अनुरूप तुम्हारे घर में हुआ, बेटे के पुण्य पाप के अनुरूप आप जैसे माता–पिता उसे मिले, समझ रहे आप, बेटे के पुण्य–पाप के अनुरूप माता–पिता मिलते हैं, और माता–पिता के अनुरूप संतान मिलती है। कोई माता–पिता, बच्चों को कोसते हैं, कि ऐसा हुआ। कोई आशीर्वाद देते हैं, कि ऐसा हुआ। माताओ ! ध्यान देना ! उसमें आपका भी पुण्य–पाप है, एकांत नहीं है, इसलिए कहा जाता है, माता–पिता को धार्मिक होना चाहिए, सद्विचार सम्पन्न होना चाहिए। पुण्य के अनुरूप घर मिलता है, यहाँ लगे हैं प्रतिपाल जी टोंग्या मिर्ची की धासन में, एक बेटी भगवान की आराधना कर रही है, खूब अच्छे से प्रवचन सुन रही है, और प्रतिपाल जी खूब मेहनत कर रहे हैं और मेहनत

करने के बाद बाईस साल पच्चीस साल का बेटा हुआ। शादी करके, बेटी को लाये बहु घर में आयी, बताओ कमाने वाले पिताजी भोगने वाले बेटा–बहु। यानी तुम ये मत सोचो कि कुछ नहीं हो रहा, हम यहाँ बैठे पुण्य कर रहे हैं, तो हमारे पुण्य के अनुरूप सृष्टि में अपने आप कार्य होते रहेंगे। यानी उस बेटी के पुण्य से तुम आज कमा रहे हो, जो बेटा, जो पोता तुम्हारे घर में जन्म लेता है, उस पोते के पुण्य से, तुम आज कमा रहे हो, भैया! ध्यान देना। आपने इतना अच्छा भव्य मन्दिर बनाया, एक बेटा जो पालने में झूल रहा है, उसका पुण्य देखो कि उसे बना बनाया मन्दिर मिला, उसका पुण्य कि उसे बना बनाया संत निवास मिल गया, साधु मिल गये। भैया ! इसलिए कहते हैं कि हम इस जीवन के पुरुषार्थ से जो भाग्य का निर्माण करते हैं, वह भाग्य निर्माण तत्क्षण में भी साथ दे सकता है। और अगले भव में भी काम आ सकता है। साईकिल के पेडल पर पाँव रखते हो, ये पुरुषार्थ है, और जब आगे चलने पर कोई वस्तु पड़ी मिल जाती है यह भाग्य, भैया ! पुरुषार्थ और भाग्य दोनों साथ चलते हैं। इंदौर में आना मेरा पुरुषार्थ है। साढ़े सत्तरा सौ किलोमीटर पहले से निर्णय ले लेना कि इंदौर में महावीर जयन्ती करना है कितना बड़ा पुरुषार्थ है? प्रार्थना आपकी, प्रयत्न हमारा, सफलता भाग्य पर। मैं प्रयत्न कर सकता हूँ। प्रार्थना आप कर सकते हो, लेकिन सफलता भाग्य पर है। और भाग्य ने ऐसा साथ दिया कि पूरे संघ की निराकुल चर्या होती रही और अच्छे से आ गये। कुछ लोगों ने पुरुषार्थ किया और पूरी समाज को दर्शन हो गये। तो पुरुषार्थ करने वाले कुछ होते हैं लेकिन उनके भी भाग्य थे, कि पुरुषार्थ आप करोगे, और फल उनको मिलेगा और उनको जो भाग्य जागा है, आचार्य भगवन् कहते हैं, इससे तुम्हारा पुण्य बढ़ा है। दो तरह के ज्ञानी होते हैं, एक तो ये देखते हैं कि महाराज के आने से मन्दिर को कितना अर्थ लाभ हुआ? एक ये देखते हैं कि समाज के जीवों को कितना धर्म का लाभ हुआ। भैया ! अर्जन के दिन तो 365 है लेकिन समर्पण के दिन तो कुछ ही आते हैं। ये समर्पण के दिन हैं और समर्पण के दिन ही हम अर्जन में लगा देते हैं तो फिर क्या होगा? भैया ! बेटी के विवाह से कमाई नहीं कि जाती है, वाचना आदि के कार्य हो तो ये समझ के चलो कि जैसे घर में, बेटी का विवाह होता है, तो हम कोई कमायी नहीं करते हैं, ऐसे ही वाचना आदि उत्सव में तो हमें, चातुर्मास करा रहे, कोई हमारा प्रोजेक्ट नहीं सिर्फ सौभाग्य

है, हम अर्पण करेंगे और सबको लाभ देंगे। तब आनंद आता है। साधु को मंच पर बिठाओ तो ये समझ कर बिठाओ कि अब मैं बेटी का विवाह कर रहा हूँ। बेटी के विवाह से कोई कमाई नहीं करूँगा। हमने जो जीवन में कमाया है वह हम बेटी के विवाह में खर्च करेंगे। हमने 365 दिन मन्दिर में जो कमाई की है। अब साधु की वाचना, चातुर्मास का अवसर आया है। तो ऐसे अवसर पर हम व्यय करेंगे। ये भाव जब समाज में आ जाता है। भैया ! ये उज्ज्वल भाव जब आते हैं, तभी पुरुषार्थ और भाग्य अरे हमारे भाग्य हो जाये कि हमें साधु के उपदेश तो मिल जायें, जिनवाणी तो मिल जाये। सौधर्म इंद्र तो स्वर्ग का वैभव लाके रख देता है, हम स्वर्ग से न ला पाये, हम तो सिर्फ इतना ही कर लें कि अपने–अपने घर से वैभव लाकर सभा को सभा का रूप दे देते हैं।

प्रिय बंधुओ!

पुरुषार्थ से कार्य की सिद्धि होती है कि भाग्य से कार्य की सिद्धि होती है, बताओ? पुरुषार्थ से नहीं, भाग्य से नहीं। पुरुषार्थ+भाग्य=सफलता। पुरुषार्थ भी कहीं मुख्य होता है, कहीं भाग्य मुख्य होता है, ध्यान देना। आज का पुरुषार्थ हो सकता कि, कल भाग्य बन जाये, आप ध्यान से सुनो ! आप जिस मन्दिर में बैठे हो। इस मन्दिर के निर्माण में कई वर्ष लग गये होंगे। जिस महल की छाँव में बैठे हो, उस महल के निर्माण में कई वर्ष लग गये होंगे। कितने वर्षों का पुरुषार्थ कितने वर्षों का श्रम कमाया हुआ धन आपने एक मकान में लगाया, तो भैया ! पुरुषार्थ पूर्वक भाग्य, और भाग्य हो तो पुरुषार्थ कार्य तत्काल सिद्धि दे देता है और भाग्य न हो तो पुरुषार्थ आगे–आगे कार्य सिद्धि देगा। एक पत्थर को तोड़ने में, सौ चोटें लगी, निन्यानवें (99) चोट लगने पर एक व्यक्ति ने छोड़ दिया कि अब मुझसे नहीं टूटता, और अगले व्यक्ति ने सौ वीं (100) चोट लगाई और पत्थर टूट गया, अब बताइए देखने वाले क्या कहेंगे, कि उसकी चोट से पत्थर टूट गया, लेकिन सच्चाई ये है, कि 99 चोटें बेकार नहीं है। इसलिए वह दादा–दादी के संस्कार, नाना–नानी के संस्कार भले ही नाना–नानी के समय में आप मुनिराज नहीं बन पाये, दादा–दादी के समय आप मुनिराज नहीं बन पाये। लेकिन वह संस्कार आज फलीभूत हुए कि आज आप साधु बन गये। भैया! मैं लगभग 6 साल का था तब मेरी नानी भगवान की वेदी पर उठाके खड़ा कर देती थी

अभिषेक के लिए और नानी विनती पढ़ाती थी। दोनों का काम अलग–अलग था। पंडित पन्नालाल जी की जन्मभूमि पारगुआ में, मैं वहाँ पर सीखता था। तात्पर्य ये है कि किस समय के संस्कार कब फलीभूत होंगे। पौधे में खाद देते हैं, और वृक्ष बनके फल कभी आते हैं, यदि आपको मैथी उगाना है तो 24 घंटे चाहिए। यदि आपको आम उगाना है, तो पाँच साल चाहिए। अखरोठ उगाना है तो 50 साल चाहिए। **इसी तरह बड़ी सफलता के लिए बड़ा समय लगता है,** बड़ा पुरुषार्थ लगता है। सबसे पहले मेरा यही कहना है, सिर्फ तन के श्रम को पुरुषार्थ मानने की धारणा को तोड़ो, **भावों की विशुद्धि को भी पुरुषार्थ मानों,** धार्मिक अनुष्ठान को पुरुषार्थ मानों, परस्पर भावों की निर्मलता को भी पुरुषार्थ मानो। ये एक पुरुषार्थ है, जब चंदन के बुरादे में हाथ डालेंगे तो सुंगध हाथ में आयेगी, कोयले के भण्डार में हाथ डालोगे तो कालिक हाथ में आयेगी। इसलिए पुरुषार्थ समीचीन दिशा में होना चाहिए। फिर हम भाग्य की बात करें। पुरुषार्थ ही समीचीन दिशा में न हो तो हम भाग्य कि बात कैसे करें? बर्तन मे दूध दुहरा अच्छी बात है, लेकिन बर्तन के स्थान पर कोई चलनी में दूध दुहे, भाग्य में होगा तो मिलेगा। भैया ! मैं उस भाग्य को भाग्य नहीं अज्ञानता मानता हूँ। तुम चलनी में दूध दुहो और भाग्य को दोष दो, ये तो ठीक नहीं है। कोई–कोई लोग ऐसे होते हैं, प्रत्येक चीज को भाग्य पर टाल देते हैं। भाई! पुरुषार्थ समीचीन करो, फिर भाग्य पर छोड़ दो ताकि आकुलता–व्याकुलता न हो, लेकिन पुरुषार्थ ही गलत करो और भाग्य पर छोड़ों, तो उचित नहीं है। आप दिन भर दुकान खोलते हो, रात में ताला बंद करके क्यों आए? ताला खुला छोड़ आते। क्यों नहीं छोड़ा? आपको मालूम है गलत पुरुषार्थ होगा, तो सफलता भी गलत मिलेगी, इसलिए रात में समय से दुकान बंद करके वापिस आ गये। वहाँ पर आपने भाग्य पर नहीं छोड़ा, वहाँ पर आपकी सम्यक् बुद्धि, को भी पुरुषार्थ कहते है। इसलिए निर्णय सोच विचार के लो, निर्णय लेना भी पुरुषार्थ है। फिर उसको क्रियान्वित करो ये भी पुरुषार्थ है। और ये भी ध्यान रखो प्रत्येक जीव का भाग्य साथ में चलता है और पुरुषार्थ भी साथ में चले। मनुष्य आयु का एक भी क्षण पुण्य हीन नहीं है। लोग कहते हैं हमारा पुण्य ही नहीं है, ऐसा मत सोचो भैया बताओ! मनुष्य आयु में ऐसा कौनसा क्षण है, जीवन जिस क्षण पुण्य का उदय न रहता हो? हर क्षण। क्यों रहता है? मनुष्य हर क्षण

पुण्यात्मा क्यों है? आयु चार होती है। नरकआयु, तिर्यन्चआयु, मनुष्यआयु, देव आयु ये पुण्य प्रकृति हैं और पहली श्वांस से अंतिम श्वांस तक मनुष्य रहोगे कि नहीं? और मनुष्य रहोंगे तो मनुष्य आयु रहेगी कि नहीं रहेगी? और मनुष्य आयु पुण्य आयु है। एक भी क्षण तुम पुण्य के बिना नहीं हो, अब पुण्य को पाप में मत लगाओ। पुण्यमयी जीवन पाप के कार्य में न बीते, इसका ध्यान रखना तुम्हारा सच्चा पुरुषार्थ है, एक भी श्वास बिना पुण्य के नहीं आ रही। मनुष्य आयु पुण्य प्रकृति है। इस पुण्य प्रकृति की सत्ता में से ही मनुष्य आयु के निषेक आ रहे जा रहे, इसलिए कोई भी निषेक हमारा पाप मे न बीते इस तरह का ध्यान रखना भी पुरुषार्थ है। हमनें बच्चों को ये सिखाया है कि निरंतर पढ़ते रहो, लेकिन बच्चों को ये भी सिखाते कि बेटा अभिषेक करना भी पुरुषार्थ है। मुनि विनम्रसागर नवरत्न भैया जी महाराज प्रतिदिन अभिषेक करके ही परीक्षा देने जाते थे। मित्रों ने कहा तुम प्रतिदिन अभिषेक पूजा कर रहे, अब परीक्षा के समय तो छोड़ दो। उन्होंने कहा नहीं धर्म के, पुण्य के योग से तुम ज्यादा नहीं भी पढ़ पढ़ोगे। वह तो पढ़ ही लोगे जो परीक्षा में आना है। कल कोई चर्चा कर रहा था, कि कम व्यक्ति आये तो क्या? ध्यान देना। पुण्य के योग से वह व्यक्ति आपकी सभा में आ जायेंगे। जिन व्यक्तियों का कल्याण आपसे होना है।

प्रिय बंधुओ !

इसलिए पुरुषार्थ और भाग्य दोनों से सफलता होती है, ये सदा ध्यान रख लेना, अपन वकील नहीं है, कि एक पक्ष की ओर बोले दूसरे पक्ष को गोण करें, दूसरे पक्ष को हानि पहुँचायें नहीं, हम जज है और जज का कार्य होता है दोनों पक्ष को सुनना और सुनकर के न्याय और नीति के साथ अपनी सूझबूझ से निर्णय देना। इसलिए हमने आपको निर्णय दिया है ये जैन सिद्धांत और अनेकांत स्याद्वाद की पोषक दृष्टि से दिया है, और इस दृष्टि से मैंने कुछ पद भी लिखें हैं वह पद में आपको सुना रहा हूँ –

हो भाग्य से यदि विभो सकलार्थ सिद्धि।
तो भाग्य के सृजन क्यों पुरुषार्थ रीति।।
जो भाग्य से रचित भाग्य सदैव मानो।
वैफल्य नित्य करते पुरुषार्थ जानो।।88।। देवागम स्तोत्र

यदि भाग्य से ही भाग्य का निर्माण होता है, तो पुरुषार्थ विफल हो जायेगा।

जो कार्य सिद्धि कहते पुरुषार्थ ही से।
तो भाग्य से श्रम फले यह बात कैसे?।।
लो मान पौरुष करे सब कार्य सिद्धि।
तो–तो सभी श्रमिक को मिल जाये रिद्धि।।89।। देवागम स्तोत्र

यदि पुरुषार्थ से फल मिलता है, तो सभी तसला ढोने वाले अरबपति करोड़पति बन जाना चाहिए।

न भाग्य सिद्धि करता श्रम के बिना ही।
होती न सिद्धि श्रम से शुभ के बिना ही।।
एकांत वाद मत में, यदि मानते हैं।
सर्वज्ञ के वचन वे, न प्रमाणते हैं।।90।।

यदि कहते हो, कि पुरुषार्थ से ही सिद्धि होती है, तो तुम सर्वज्ञ को नहीं मानते, यदि कहते हो भाग्य से ही सिद्धि होती है, तो भी तुम सर्वज्ञ को नहीं मानते हो यदि सर्वज्ञ को मानते हो, तो भाग्य और पुरुषार्थ दोनों से कार्य सिद्धि होती है।

होता अबुद्धि बस जो श्रम साध्य मानो
श्रद्धान पूर्ण कर लो जिन देशना में।।
ये नाथ सम्भव करे उपदेश ऐसा,
श्रद्धान पूर्वक करो मुनि कार्य वैसा।।
हाँ भाग्य और पुरुषार्थ, जहाँ फलेंगे,
आनंद से मुख कमल, सबके खिलेंगे।।

हाथ जोड़ो, एक नहीं जुड़ा न, बस नमस्कार करने के लिए दोनों हाथ जोड़ना पड़ते है, ध्यान देना! मैत्री दोनों की चाहिए। मित्रता अकेले एक हाथ से नहीं दोनों से होती है। हाथ मिलते हैं, ये मैत्री का सूत्र है – पुरुषार्थ + भाग्य = सफलता।

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

❑❑❑

पुण्य पाप समीक्षा

प्रिय आत्मन्!

तीर्थंकर भगवान शीतलनाथ स्वामी का समवशरण विदिशा मे आया, चंदाप्रभु का समवशरण सोनागिर में आया, महावीर भगवान का समवशरण उज्जैन में आया, पार्श्वनाथ का समवशरण नैनागिर में आया, इन समवशरण में जो देशना हुयी, उस देशना में, एक प्रश्न आया जो प्रश्न आपने किया, बहुत अच्छा प्रश्न है कि सुख देने से पाप लगता है, दु:ख देने से पुण्य लगता है, इस प्रश्न के समाधान में आ. समन्तभद्र स्वामी का क्या मत है?

प्रिय आत्मन !

जैन दर्शन क्रिया के साथ भाव को पकड़ता है, मात्र क्रिया को नहीं देखता है, **अभी को नहीं अभिप्राय को निहारता है।** आप्तमीमांसा लिखित चिंतन प्रस्तुत है अभी क्या हो रहा, ये नहीं देखता, अभिप्राय में क्या है? ये देखता है। तो दु:ख देने से पाप होता है और सुख देने से यदि पुण्य होता है, तो ऐसा भी नहीं है, यदि आपकी ऐसी मान्यता है, कि दु:ख देने से पाप होता है, और सुख देने से पुण्य होता है, तो आचार्य कहते हैं, यदि ऐसा मान लोगे, तो सबसे ज्यादा पापी तो, आचार्य परमेष्ठी होंगे, उन बराबर दु:ख कौन देगा? ऐसा उपदेश दिया कि सबके सब साधु एक टाइम भोजन कर रहे, जरा सा कुछ हो गया तो नीरस दे दिया, डाँट दिया। यदि दु:ख देने से पाप होता है, तो सबसे ज्यादा पाप आचार्य परमेष्ठि को लगना चाहिए, जो अपने शिष्य से कहते हैं। एक टाइम का भोजन करो, कभी नीरस करो, कभी रस त्याग करो, प्रायश्चित देते हैं, दण्ड देते हैं, शिष्य दु:खी होता है। समझना, आपको क्लियर समझ में आ रहा, यदि दुख देने से पाप होता है तो सबसे ज्यादा पाप आचार्य को लगना चाहिए। आपको दृष्टि समझना पड़ेगी और आप कहते हो, तो पहले इस बात से आप समर्थित है क्या? कि आचार्य परमेष्ठि को सबसे ज्यादा पाप लगेगा। आप ने कहा था दुख देने से पाप लगता है, तो मैंने आपके सामने प्रश्न रखा है, यदि दुख देने से पाप लगता है, तो सबसे ज्यादा पाप आचार्य परमेष्ठि को लगना चाहिए। सबसे ज्यादा पाप इस बूढी अम्मा को लगना चाहिए, क्यों लगना चाहिए अम्मा? जब तेरा बेटा मन्दिर नहीं जा रहा था, तूने

उस दिन भोजन नहीं दिया था, कहा था न, कि मन्दिर नहीं जायेगा तो आज भोजन नहीं मिलेगा, अब बताओ दुख दिया था बच्चे को, मन्दिर नहीं जायेगा तो भोजन नहीं देंगे। दुख दिया था माँ ने, माँ ने कष्ट दिया मन्दिर नहीं जाओगे तो भोजन नहीं मिलेगा, पाठशाला नहीं जाओगे तो दुःख, मन्दिर नहीं जाओगे तो दुख। बोलो सत्य बोल रहा हूँ कि नहीं। यदि हितैषी माँ है, तो नियम से दुख देगी। मुझे मिला है, तुम्हारी माँ ने दिया हो, या न दिया हो, मुझे तो बहुत दुख मिला, जाना ही पड़ेगा, भैया! तो वह माँ बेटे को कष्ट देकर के मन्दिर भेज रही है, उस पिता को सबसे ज्यादा पाप का बंध होना चाहिए, जो पिता अपने बच्चे को सुबह–सुबह नहलाकर के भगवान का अभिषेक कराने के लिए साथ में लेके आ रहा है। बेटा दुखी हो रहा है कि इतनी ठण्डी में पापा ने मुझको जगा दिया, मुझे दो घंटे और सोना था, लेकिन जगा दिया, और आज अभिषेक में लगा दिया, बोलो? उस पिता को पाप का बंध होगा कि नहीं, दुख तो हुआ बेटे को, अभी आपने कहा था कि दुख देने से पाप होता है, सबने एक मत से स्वीकार किया था कि नहीं, दुख देने से पाप होता है, आपने अपने बेटे को दुख दिया। भैया! अब आचार्य कहते हैं ये तो पहले स्वीकार करो कि दुःख दिया तुमने, गलत बोल रही, स्वीकार करना पड़ेगा कि तुमने कष्ट दिया है बेटे को, बेटा ठण्डी में 6 बजे नहीं उठना चाहता था, ओ 8 बजे उठना चाहता था लेकिन तुमने उठाया। चलो अभिषेक करना है। मैं नहीं उठना चाहता था, लेकिन मेरे गुरु जी ने कहा 4 बजे उठना ही पड़ेगा, तो गुरु को पाप लगेगा कि नहीं लगेगा। पहले ये स्वीकार करो कि हाँ दुख दिया। उसके बाद पुण्य कि बात करेंगे। आप ऐसे कितने कार्य करते हैं, जिनके कार्यों से घर में दुःख होता है। बिचारी बहु को आये चार दिन नहीं हुए और आपने अनुशासन बताना शुरु कर दिया, हमारे घर में सभी प्रतिदिन मन्दिर जाते हैं। बहु दुःखी है कि नहीं? कि मैं कौन से घर में आ गयी। जहाँ रोज मन्दिर जाना पड़ता है। महाराज आ गये है, चौका भी लगाना, लो अभी तक मैं आठ बजे तक भोजन बनाती थी। चलता था, अब महाराज आ गये तो मुझे छः बजे बनाना पड़ेगा। एक और पहाड़ पटक दिया, सामने वाले का अध्ययन करें कि आप दुख दे रहे कि नहीं दे रहे? न्याय की दृष्टि से समझना और नहीं समझोगे, तो तुम जैन धर्म को नहीं समझ पाओगे। अरे भाई! समझो तो कि इसमें जैन दर्शन कहाँ है? जैन न्याय क्या बोलता है? तो

आप दुःख दे रहे कि नहीं दे रहे?, पहले ये समझो, आचार्य ने अपने शिष्य को, दुःखी किया कि नहीं किया? दुःखी किया शिष्य की आत्मा से पूछो? एक आर्यिका माता जी के लिए, काँच लग गया, पाँव से खून की धार बह रही है। मैं आपको सत्य घटना सुना रहा हूँ सुबह भक्ति में पहुँचे, माताजी कुछ विलम्ब से पहुँची, समाचार मिला कि माजा जी अस्वस्थ है। बाद में आयी और गुरुजी ने पूछा, बेटा ! क्या हो गया? गुरुवर आज रात्रि में, अंधेरे में शुद्धि के लिए गये थे, काँच लग गया और खून ज्यादा निकल गया। बेटा! उपवास करो इतना सुनते ही तत्काल वहाँ जो श्रावक बैठे थे, उनकी आत्मा द्रवित हो गयी। आज खून निकल गया, आज तो माताजी को, बादाम का हलुवा चलाना चाहिए, बैठे थे प्रतिपाल जी जैसे श्रावक रत्न महाराज श्री आज माताजी को पहले आहार में उठा दें। मैं गणनी माताजी विशुद्ध माताजी की बात कर रहा हूँ। आचार्य शिवसागर जी की बात कर रहा हूँ। आचार्य महाराज बोले, उससे पूछो, गुरुवर आपकी जो आज्ञा हो, शिष्य क्या बोलेगा? गुरुवर आपकी जो आज्ञा हो, आचार्य शिवसागर महाराज बोले, एक उपवास अब सेठी जी की आँखों से, महाराज ये आप अन्याय कर रहे हो, एक तो उसको चोट लगी और आपने उपवास दे दिया। कास घर में होते तो माता–पिता तत्काल ड्रेसिंग करते, पहली बात तो अभी ड्रेसिंग हुयी नहीं, दवाई लगी नहीं और आपने उपवास और दे दिया। आप उपवास की बात कर रहे हैं, महाराज श्री आज आहार करने दो, उपवास फिर कभी कर लेगी। उससे पूछ लो, शिवसागर जी बोले विशुद्धमति आर्यिका बोली, गुरु ने जो कहा वह मेरी आत्मा के कल्याण के लिए है। माताजी आप भी, जरा अपना स्वास्थ्य तो देखो। भैया! अब सोचिए खून निकल रहा है, उस समय आप घर मे क्या करते बताइये, बोलिए, घर के किसी सदस्य को चोट लग जाए, तो आप क्या करते? उपचार करते, खिलाते–पिलाते लेकिन आचार्य शिवसागर महाराज ने उपवास दिया। उचित किया कि नहीं, अनुचित किया? आपकी दृष्टि में, डॉक्टर की दृष्टि में तो अनुचित है। अब अपन आचार्य शिवसागर महाराज से पूछें, कि तुमने ऐसा क्यों किया? बोले बेटा! ये बता जब तू रात में गई थी, तो ये बात, जब काँच पर पैर पड़ सकता है, ये तो तुझे कटने से बोध हो गया, यदि मेंढक पर पैर पड़ा होता तो, प्रवचन सार में क्या लिखा? जीव मरे या न मरे, यदि अयतनाचार पूर्वक चलते हैं तो साधु हिंसा का भागी होता है, अब

बताओ बेटा! मैं तुम्हें काँच लगने का उपचार कराऊँ या मेंढक मरने का प्रायश्चित दूँ। गुरुवर आपने सही कहा आपने जो प्रायश्चित दिया, वह उचित है। उस दिन माताजी ने उपवास किया, अब बताइये दुःख तो हुआ, क्या दुःख देने से पाप होता हैं। प्रायश्चित तो तप है, और तप से यदि पाप होने लगे तो मार्ग ही दूषित हो जायेगा। अब बताओ दुख देने से पाप हुआ, कि पुण्य हुआ? अब क्यों शांत बैठ गये, अब बोलो दुःख देने से पुण्य हुआ कि पाप हुआ? ओ हो..........पुण्य हुआ, किसको पुण्य हुआ? भैया ! यदि दुख देने से पुण्य हुआ तो सभी जीव एक दूसरे को दुख देने लग जायेंगे। भैया! न दुख देने से पुण्य होता है, न सुख देने से पुण्य होता है, न दुख देने से पाप होता है, न सुख देने से पाप होता है। एक और सुनलो अभी फिर मैं सबका निचोड़ लाऊँगा, सुख देने से पुण्य होता है, कि पाप होता है? आज अभिप्राय देखने की बात कर रहे हो, अभी तक देखा था, अभी तक क्या कहते आये हो? पुण्य कहते आये भैया ! सुख देने से यदि पुण्य होता है, तो फिर जो स्विमिंग पूल चल रहे हैं, सैंकड़ों लोगों को रोज नहला रहे हैं, उनको तो फिर पुण्य ही हो जाना चाहिए। भैया! माँ तेरा बेटा बाहर पढ़ता है, तेरा बेटा तो खूब मेहनत करना चाहता है, लेकिन सामने वाला साथी सोचता है, ये आगे न बढ़ जाये, इसलिए क्या बोलते हैं सो जा भैया, बोलो माँ सिर्फ थपथपी लगाके सुला दिया। अभी प्रवचन की बेला थी, बेटे को मन्दिर लाने का समय था। लेकिन तुमने क्या किया? बेटा सो जा, बेटे को सुख दिया कि नहीं दिया? बेटा तो आना ही नहीं चाहता था, और तुमने और कह दिया, बेटा सो जा, तो बेटे को सुख मिला कि नहीं मिला? मेहनत नहीं करना पड़ी, बेटे को सुख मिला, तुमको पुण्य हुआ कि पाप? कह रहे पाप, बेटे को सुख मिला और तुमको पाप स्वीकार है। क्यों आचार्य महाराज विराजमान है, शिष्य सो रहा है, तो आचार्य महाराज कहते हैं, शिष्य सो रहा है, शिष्य सुखी हो रहा है, लेकिन उसके सुखी होने का पाप आचार्य को लगेगा। दण्ड दे दिया, समझा दिया, खुराक दे दी, पुण्य लगेगा। जैन दर्शन का न्याय भिन्न है भैया! जगत कुछ देखता है, कुछ कहता है लेकिन जैन दर्शन तत्काल को नहीं देखता है, उसमें छुपी हुई भावनाओं को देखता है। जो मुझे सुला रहा है, उसकी भावना क्या है? बताइये, किसी को मिठाई खिलाना पुण्य है कि पाप, चलो उसे सुगर है ही नहीं, अरे भाई मालूम है, आपने सफेद लड्डू, काले लड्डू

की कहानी सुनी, मृगसेन धीवर की कहानी पढ़ी। मृगसेन धीवर ने अपने जीवन में, नियम लिया था, कि मेरे जाल में जो पहली मछली आयेगी मैं उसे नहीं मारूँगा। पाँच बार वह मछली उसके जाल में आयी, उसने उसे पहचान करके छोड़ दिया, अंततोगत्वा रात्रि में मृगसेन धीवर का मरण हो गया। उस नियम के साथ उसका मरण हो गया। अगले भव मे वह, एक सेठ का पुत्र हुआ। पड़ौस में एक और सेठ था, उसके घर पर मुनिराज आये, तो सेठ ने पूछा महाराज मेरी इस अपार सम्पत्ति का मालिक कौन होगा? तो सामान्य उत्तर जब तुम्हारा बेटा है, तो तुम्हारा ही होगा, लेकिन मुनिराज ने कहा सामने वाले का बेटा, ये आंगन में कुडर रहा न, ये वाला बेटा, तेरी सम्पत्ति का मालिक होगा। अब सोचिए, जबकि मृगसेन जिस परिवार में जन्मा था, वह निर्धन परिवार था, वैसे भी पड़ौसी से ईर्ष्या और फिर पड़ौसी का बेटा मेरी सम्पत्ति का मालिक हो जाये। इस स्थिति में सेठ ने, उस बेटे को चाण्डालों से उठवा करके। बोल दिया कि–इसको समाप्त कर दो। वहाँ चाण्डाल के मन में दया का भाव आ गया, इसने मेरा क्या बिगाड़ा और मैं क्यों निरपराध पर प्रहार करुँ। इसको जीना होगा जियेगा, नहीं जीना होगा मर जायेगा लेकिन मैं ऐसा गलत काम नहीं करूँगा। चाण्डाल ने वहीं उसको जंगल में छोड़ दिया। गाय आयी उसने दूध पिलाया, दुग्ध का पान कराया, चार पाँच दिन, ग्वाला ने ऐसा देखा कि गाय में दूध क्यों नहीं निकल रहा, ग्वाला गया तो स्थिति देखी। उस बालक को ग्वाला ले आया, लगभग पन्द्रह साल बीत गये, बेटा सौलह साल का हो गया था, सेठ गाँव आये, घी खरीदने के लिए, घी खरीदने के बाद, उस बालक पर दृष्टि पड़ी, गोपाल ये बालक? गाँव की भाषा तो प्यार की भाषा होती है, सेठ जी साहब आप का ही है, नहीं–नहीं ये बालक? सेठ के मन में संदेह, सेठजी साहब जो सेवा हो बताइये, मुझे तो वन देवी ने दिया है। सेठजी ने कहा इसे मेरे घर भेज दीजिए। ये वहाँ से पैसे लेके आ जायेगा। हम यहाँ सबको पैसे बाँट देंगे। भैया! उसी लड्डू वाली कहानी पर मैं आता हूँ, दो तीन चरण के बाद कहानी के अर्न्तगत ये बात आती है कि सेठ जी लिख देते हैं, कि इस बालक को देखते ही विष दे देना। और वह बालक चलते–चलते थक गया था, एक पेड़ के नीचे सो जाता है। वह मछली का जीव, जो एक स्त्री बना था, वह वहाँ से निकलता है, देखता है यह बालक पेड़ के नीचे सो रहा है। इसके गले में एक कागज बंधा हुआ है, उसमें

लिखा है, इस बालक को देखते ही, विष दे देना। सेठ जी के हस्ताक्षर हैं। वह महिला भी बहुत दयालु थी और सेठजी के स्वभाव से परिचित थी, उस महिला ने अपनी आँख का काजल निकाला, और विष के स्थान पर 'आ' की मात्रा और लगा दी, क्या हो गया? विषा हो गया। वहाँ पर बालक पहुँचा, सेठजी ने ये कागज दिया है। सेठानी ने देखा, इसमें लिखा है कि इस बालक को देखते ही विषा दे देना, विषा सेठ की पुत्री का नाम था, क्या हुआ? जब पिता ने ही बोला है। इतना अच्छा योग दोबारा आ पाये या न आ पाये, इसलिए उसी दिन भाँवरें पड़ गयीं। अब ध्यान देना। अभिप्राय और क्रिया दोनों पर ध्यान देते जाओ, पाप और पुण्य दोनों ध्यान देते जाओ। अब सेठजी कुछ दिन बाद आये, क्योंकि सेठ को तो पता था कि मैंने उस बेटे को तो विष देकर मरवा दिया। इसलिए मुझे गाँव में जल्दी नहीं जाना है, कुछ दिन बाद जायेंगे तो दस पन्द्रह दिन बाद सेठजी पहुँचे, गाँव वालों ने कहा– सेठ जी, मिठाई न खिलाते तो न खिलाते, कम से कम बेटी के विवाह में न बुलाते तो हमें दर्द नहीं होता लेकिन आपने बेटी के विवाह में हमें न बुलाना पड़े तो आप स्वयं नहीं आये। हमारी बेटी सो तुम्हारी बेटी। हम सब खर्च उठा लेते। लेकिन आके हमसे कह तो देते कि हमें बेटी का विवाह करना है। सेठ जी सुनते ही.... जैसे–तैसे घर आये, क्या अनहोनी हो गयी। देखा कि जिसे मैंने जहर खिलाना सोचा था, मारना चाहा था, वह तो मेरा जंवाई, कुंवर साहब बनके बैठ गया। ओ हो .... भैया! अब भी सेठ को शांति नहीं मिली। अब सेठ ने उदासीनपना दिखाया, सेठानी पूछती है, आपको क्या तकलीफ हो गयी। क्या कष्ट हो गया? देखों मैंने इतने जीवनभर धन कमाया, और अपने धन का स्वामी ये पड़ौसी का छोकरा हो जायेगा। अब महिलायें विशेष बुद्धिमान होती हैं, जो काम पुरुष न कर पाये, वह काम चुटकी में कर देगी, ठीक है। जैसे सेठ, वैसी उनकी सेठानी। सेठजी साहब उपाय करते हैं। उन्होंने दो तरह के लड्डू बनाये। काला लड्डू, सफेद लड्डू। अब सफेद लड्डू, काला लड्डू बनाने के बाद, सेठानी तो बहाना लेके पानी भरने चली गयी। बेटी को बोल गयी, बेटी। ये सफेद वाला लड्डू पति को देना, और काला वाला लड्डू पिता जी को देना, अब बेटी ने सुन लिया, सुनने के बाद बेटी के मन में परिवर्तन आया, देखों मैं बीस साल से पिताजी के पास हूँ। पिताजी को मैं अपने हाथ से भोजन कराती हूँ। अभी कुछ ही दिन मेरी शादी को

हुए हैं, और मैं पिताजी को काला लड्डू दूँ और पति को सफेद लड्डू दूँ। तो पिताजी को कैसा लगेगा। और पति यदि रूठ भी जायेंगे तो जीवन में कभी भी समझा लेंगे। लेकिन पिताजी का दिल दुखाना, अच्छी बात नहीं है। ऐसा सोचकर के, उसने काला लड्डू तो पति के लिए रख दिया, और सफेद लड्डू पिता के लिए खिला दिया पिताजी ने खाया और सदा के लिए सो गये। क्यों सो गये, क्योंकि सफेद लड्डू में जहर था। भोजन किसलिए बनाया था मारने के लिए? माँ ने लड्डू बनाया और किसको खाने मिला। पिता जी को। अब सोचो ओ लड्डू खिलाने से पाप हुआ कि पुण्य हुआ? बेटी के लिए तो पुण्य था, क्योंकि बेटी ने तो पवित्र भावना से खिलाया, लेकिन बेटी की माँ के अंदर खोट थी, इसलिए माँ के लिए पाप हुआ। यदि सामान्यतः अपराध घोषित करे तो लोग कहेंगे इस बेटी ने लड्डू खिलाया, इसने ऐसा कर दिया। लेकिन सत्य में दोष किसका है? यहाँ पर बेटी का है, या माँ का है? अब माँ का दोष है कि पिता का दोष है? आचार्य कह रहे ये तुम देख रहे कि बेटी ने लड्डू खिलाया, तुम अभि को देख रहे लेकिन अभिप्राय माँ के अंदर देखो, माँ सफेद लड्डू खिलाके क्या करना चाहती थी? पति को मारना चाहती थी। आचार्य ने कहा क्रिया नहीं देखो, क्रिया में छुपे भीतर के भाव को देखो। इसलिए वर्तमान में भी यही है, कि पैकिंग क्या है, माल क्या है? आचार्य भगवन् कहते हैं, अब बताओ सुख देने से पाप हुआ, कि दु:ख देने से पुण्य हुआ? भैया! सुख और दु:ख के भीतर तुम्हारा भाव क्या है, तुम सुख के साधन जुटाकर के, उसे किस राह पर ले जाना चाहते हो? आपको मैं बता दूँ। सागर महिला आश्रम में एक समय वह था कि बच्ची पढ़ती थी, मोराजी में बच्चे पढ़ते थे, घी अपने घर से लाना पड़ता था, पापड़ अपने घर से लाना पड़ते थे, लाईट नहीं रहती थी, जब लाईट बंद हो जाये, तब क्या करें? तो उसमे कुछ ऐसे भी छात्र हुए जो अपने खाने का घी बचाकर के सिर्फ दीपक के जलाने में उपयोग करते थे, आर्यिका विशुद्धमति माताजी घी खाती नहीं थी, अगर खायेंगे तो पढ़ेंगे कैसे? क्यों कि घी का दीपक जला के, पढ़ना है, मिट्टी तेल का दीपक जलायेंगे तो आँखों में जलन होगी, घी का दीपक जलायेंगे तो आँखों में जलन नहीं होगी। घी का दीपक जलाना है, इसलिए वह घी अपना बचा लेती थी। तात्पर्य ये कि अभिप्राय को निहारो, दूसरे लोग क्या कहते ये कंजूस है, ये घी नहीं खाती, घी बचाती है,

अब उसके घी बचाने में अभिप्राय क्या है? अब बताओ। द्वार पर बहु का प्रवेश था, सेठ ने अपनी बेटी की शादी जिस घर में की बहु पहले से सोच रही थी कि कैसा घर होगा, कैसे परिवार के लोग होंगे? ये सब सोचते–सोचते ज्यों ही पहला कदम उसने चौखट के भीतर रखा, कि देखा सेठानी जी जो आरती लिए थी, आरती में से एक घी की बूंद नीचे गिर गयी, तो उस घी की बूंद को सेठ जी ने जमीन से उठा लिया, अब बहु सोच–सोचकर के बीमार हो गयी, कि मैं किस घर में आ गयी जिस घर मे सेठ जी, घी कि एक बूंद को जमीन से उठा लेते हैं, उस घर में मेरा क्या निर्वाह होगा? सोच–सोचकर बीमार पड़ गयी। अब मैं क्या कहूँ सेठ जी से, मैं इस परिवार में क्या सामान लाने की बात कहूँगी? सोचकर के बीमार हो गयी। सेठजी को पता पड़ा, बीमार हो गयी। सेठजी आये, बेटा क्या हो गया? अब क्या बोले? महिलायें शरीर की बीमारी से बीमार नहीं होती, महिलाओं की बीमारी होती है टेंशन, वैसे यह पुरुषों में भी होती है। टेंशन से ज्यादा बीमार होते हैं, यदि आज 100 प्रतिशत लोग बीमार है तो उसमे से 90 प्रतिशत सिर्फ मन के बीमार हैं। टेंशन से बीमार हैं। ब्लड प्रेशर, मन की बीमारी, अधिकांशतः बीमारियाँ मन से होती हैं अब बहु बीमार। एक डॉक्टर आया, डॉक्टर साहब ने कहा, हालत बहुत नाजुक है, सम्भालना गंभीर परिस्थिति है। डॉक्टर अपने शब्द रखते ही हैं। सेठजी ने कहा डॉक्टर साहब ये तिजोरी की चाबी रखिए, ये खोलो, जितना पैसा लगे उतना पैसा आप लगा दो लेकिन मेरी बहु स्वस्थ होना चाहिए। डॉक्टर साहब बोले पाँच लाख रुपये लग सकते हैं। सेठ जी ने पाँच गिड्डी उठाई एक एक लाख की और देने लगे। बहु उठी और बहु ने हाथ पकड़ लिया, सेठ जी साहब आप ऐसा क्यों कर रहे हो? बेटी आप से बढ़कर पैसा नहीं हो सकता। फिर पिताजी आप उस दिन घी की बूंद को जमीन से क्यों उठा रहे थे? आज मेरे लिए पाँच लाख और दस लाख रुपये खर्च करने को तैयार हो, बेटा ! ये बता दरवाजे पर घी की एक बूंद गिर गयी, एक बूंद की गंध से कितनी चींटी आ जायेगी, और दरवाजे पर कितने व्यक्ति निकलेंगे? कितने व्यक्ति सावधानी से निकलेंगे, पाँव के नीचे कितनी चींटी खत्म होगी? बेटा! अपना घर अहिंसा का घर है, दया का घर है और दरवाजे पर ही चींटी मरी दिखे तो क्या सिद्ध होगा? कि हम जैन धर्म के उपासक हैं क्या? अब सोचिए, एक घी की बूँद पोछने का अभिप्राय क्या है? इसलिए

जैन दर्शन बहुत गहरी बात करता है, कि उसके अंदर कंजूसी थी कि, दया कि भावना थी? देखने वाले ने क्या देखा और सेठ के अंदर क्या था? दया भाव। इसलिए आप क्या देख रहे, ये महत्त्वपूर्ण नहीं है, भीतर में भावना क्या है, ये महत्त्वपूर्ण है। पाप सुख और दुख से नहीं लगता है, डॉक्टर शल्य क्रिया करता है, छोटा बच्चा पहुँचते ही रोने लगता है, सुई देखी कि बच्चे का रोना शुरु, कोई बड़ा ऑपरेशन हो, तो बड़े–बड़े व्यक्ति भी रो पड़ते हैं, कष्ट होता है, लेकिन यदि डॉक्टर को पाप लगेगा क्या? नहीं लगेगा। लेकिन डॉक्टर के अंदर सिर्फ पैसे कमाने की भावना आ जाए, क्यों पहले बीमार करने की दवा दी जाये, हाँ, बाद में जब वह अच्छे से बीमार हो जाओ तो फिर जब तक लोगों को आना जाना चालू हो जायेगा तो फिर पता पड़ जायेगा कि आपके घर में देने वाले कितने है? उसके अनुसार फिर इलाज होगा, यदि ऐसी स्थिति आ जाये, तो उस डॉक्टर को पाप लगेगा। लेकिन डॉक्टर के अंदर पवित्र भावना है तो डॉक्टर को पुण्य लगेगा। अब सोचो, जो डॉक्टर चाकू चला रहा है, लेकिन भावना पवित्र है। तो उसको पुण्य लग रहा है, लेकिन चोर ने चाकू चलाने का प्रयत्न किया, चला भी नहीं पाया तब भी पाप लगेगा। इसलिए संविधान में बैठा हुआ जज अभिप्राय को देखता है, कि आप किस मानसिकता के साथ ये अधिकरण लिए थे, लड़ाई हाथ की थी, या लाठी की थी। अधिकरण बदलते जाते हैं, अपराध की श्रेणी बदलती जाती है, धारायें चेंज होती जाती हैं। तो आचार्य भगवन् कहते हैं कि भाव क्या था? होली का दिन था, दर्जी सिलाई कर रहा था, कपड़ा काट रहा था, उसी समय कुछ व्यक्ति पहुँचे, और उसके ऊपर रंग डाला तो दर्जी ये ध्यान नहीं दे पाया कि ये कैंची ऊपर चल जायेगी। ओ अचानक उठा और वह कैंची सीधी दूसरे के गले में घुस गयी, जो रंग डालने आया था उसके गले में ही कैंची घुस गयी और वहीं उसका मरण हो गया। अब बताइये क्या होगा? हत्या का पाप किसे लगेगा? सामने देखने वाला तो यही कहेगा कि दर्जी ने उसे मार डाला रिपोर्ट हुयी, दर्जी को अदालत में लाया गया। जज ने पूर्ण तरह से सुना, कि आप क्या कर रहे थे, मैं कैंची से कपड़ा काट रहा था। क्या हुआ? वह आये, तुमको पता है वह आये, नहीं पता, किस रास्ते से आये थे? हमारे दोनों रास्ते खुले थे, मैं तो अपने स्थान पर था। मैंने देखा भी नहीं कौन है? और मेरे अंदर मारने का भाव ही नहीं था, मेरा हाथ अचानक उठ

गया। जज ने पूर्ण रूप से बरी कर दिया, इसमें दर्जी का कोई अपराध नहीं है। सामने वाले का मरण हो गया लेकिन दर्जी का अपराध नहीं है, भैया ! कई बार आप देखते हो, कि वाहन चालक वाहन चला रहे हैं, लेकिन कोई दौड़ता हुआ बीच मे पहुँच जाए तो, क्या वाहन चालक को फाँसी दोगे क्या? लेकिन सामान्यतः तो ये देखा जायेगा कि उसके वाहन से मरण हो गया। भैया ! इसलिए जैन दर्शन कहता अभिप्राय को पकड़ो, सामने वाले को दुख तो हो गया, तो उसमे मेरा अभिप्राय क्या था? मेरा अभिप्राय दुःखी करने का था, क्या? मैंने अज्ञान पूर्वक दुखी किया है। क्या मैंने जानबूझ कर दुखी किया है? न मैंने अज्ञान पूर्वक दुखी किया है, न मैंने जानबूझ कर दुखी किया है, न मेरा दुख देने का अभिप्राय था, तो फिर क्या है? आचार्य कहते हैं –**'विशुद्धि संक्लेश अंगं'** भीतर मे भावों की विशुद्धि है, अब सामने वाला दुखी हो तो हो, सुखी हो तो हो। मुझे तो अपनी विशुद्धि का फल मिलता है। मेरे अंदर हित की भावना है, मैं प्रवचन कर रहा हूँ, किसी को कष्ट हो रहा होगा, कब से भूखा बैठा हूँ, कब से प्यासा बैठा हूँ? हो रहा होगा दुख, लेकिन मेरे अंदर भावना भूखा प्यासा रखने की नहीं है, मेरे अंदर भावना काल्याण की है तो मुझे पुण्य लगेगा कि पाप लगेगा क्यों? मुझे मेरी भावनाओं का पुण्य–पाप लगता है, मेरे अंदर आपको दुःख देने का अभिप्राय ही नहीं है। समझ रहे इस तत्त्व को भली–भांति समझना कि विशुद्धि भावों की निर्मलता है। यदि भावों में संक्लेश पल रहा है, कि ये कब दुखी हो जाये, कब दुख जो जाये, लोग ऐसे होते हैं, इसकी दुकान कब बंद हो जाए, ऐसा सोचते हैं, तो आचार्य कहते हैं ज्ञानी ! उसकी दुकान बंद हो, य न हो, लेकिन तू तो अपने पुण्य का ह्रास कर ही रहा है। ध्यान देना! जिनको ये तत्त्वज्ञान नहीं होता है, वह पड़ौसी पर ईर्ष्या करते हैं और पड़ौसी कि उन्नति पर ईष्या करके, वह अपने पुण्य को नष्ट कर लेते हैं। ध्यान देना। व्यापार के क्षेत्र में ध्यान देना, या एक कमरे चार विद्यार्थी हो, तो वह सोचेंगे ये ज्यादा न पढ़ ले, इसको मेरे से ज्यादा अंक न आ जायें, क्या होगा? ज्ञानावरणीय कर्म का का आस्रव होगा। आचार्य उमास्वामी जी ने लिखा–**तत्प्रदोषः प्रदोष** भावना, ये मुझसे आगे न बढ़ जाये। हम व्यापार में ये सोचते हैं, यदि कदाचित् मेरा वही व्यापार है, सामने वाले का वही व्यापार है, और कोई कदाचित् आपसे कहे भैया ! आप उनको जानते हो क्या? मुझे उनकी दुकान बता दो। तब

आप क्या करोगे, क्या कहोगे? उस समय आपके मन में क्या उतार चढ़ाव आयेंगे? भैया ! आओ बैठो, बिठाओगे ग्राहक को खुशी से चाय पानी कराओंगे, फिर पूछोंगे भैया ! उनकी दुकान से आप क्या लेते हो? क्या लेना है? अच्छा माल ले गये थे क्या माल लेके गये थे? अब चाहे वह माल आपकी दुकान पर हो य न हो, रेट पता हो, न पता हो, लेकिन आप पहले उससे पूछ लेता है, और पूछने के बाद कह देते भैया । इससे सस्ता तो हम आपको यही दे देते, अब मतलब क्या है? मतलब, ये कि कैसे ग्राहक को तोड़ना। आप सोचिए, कि उस समय हमारे अंदर जो पाप पल रहा है, उस पाप से हमारे ही पुण्य का नाश हो रहा है। चिंता मत करो वह ग्राहक तुमसे जुड़ जायेगा, जुड़ने के बाद, दो तीन बार तुमसे माल ले लेगा, पुराने सेठ को तो अनुभव था, कि वह ग्राहक कैसा है? लेकिन तुमको तो अनुभव नहीं है, और आखिर तुम्हें बड़ी खुशी मिलेगी, कि इसको हमने पटा लिया और अंत में कर्ज करेगा और लेके चला जायेगा। फिर कहो मैं लुट गया। फिर उसी सेठ के पास जाओगे, जिससे तुमने रोका था, उसको जानते हो क्या? उसका कुछ बकाया है, आप के पास, वह व्यक्ति कैसा है? तो तात्पर्य ये है भैया ! कि इस तरह के अभिप्राय को पकड़ना पड़ेगा, कि हम दिन में ऐसे कितनी बार पाप कर लेते हैं, हमें दिखता नहीं पाप क्योंकि हमारी धारणायें ये है कि जब कोई जीव मारो तब पाप होता है, या किसी पर गुस्सा करे तब पाप होता है, लेकिन आचार्य कहते हैं, **जहाँ विशुद्धि घटी वही पाप जहाँ संक्लेश बड़ा वहीं पाप, विशुद्धि का घटना पाप है, संक्लेश का बढ़ना पाप है।** पाप की परिभाषा तो समझो, और ऐसा यदि होगा, तो नियम से दुख होगा और यदि तुम्हारी विशुद्धि घटती नहीं है, तुम्हें संक्लेश बढ़ता नहीं है, तो पुण्य होगा, इसलिए सामने वाली की विशुद्धि बढ़ाने का मेरा अभिप्राय है। वर्तमान में भले ही कड़वी नीम दे रहा हूँ, लेकिन मेरा अभिप्राय है कि तुम स्वस्थ हो जाओ। तो बताइये मुझे नीम खिलाने का पाप लगेगा कि पुण्य? जो मिठाई खिला रहा है उसका अभिप्राय है, कि कब बीमार पड़ जाये ध्यान देना। ऐसा भी होता है, इसलिए देश के जितने भी उच्च पदस्थ अधिकारी है, वह भोजन को चेक करके लेते हैं क्यों? भोजन कराने वाला मुझे किस अभिप्राय से मुझे घर बुला रहा है? अभी चुनाव प्रचार चल रहे हैं, हर व्यक्ति भोजन पर बुलायेगा, लेकिन नेताओं को सम्भलकर के जाना पड़ता है, क्यों? न जाने किस

भोजन में क्या रखा है? विवेक से खाना पड़ता है, कौनसा भोजन मुझे बीमार बना देगा, कौनसा भोजन मुझे स्वस्थ रखेगा भैया ! अभिप्राय क्या–क्या छुपे होते हैं लोगों के। इसलिए आचार्य भगवन् कहते हैं, तत्काल को मत देखो, उसमें छुपी भावना को देखो, कि भावना क्या है? आप जानते हो, सुदर्शन चूर्ण जो होता है, कैसे बनता है? उसमें जहर होता है वह ज्वर के नााश के लिए होता है। बुखार के नाश के लिए होता है। अब बताइये जो वैद्य जहर दे रहा है, उस वैद्य को पाप लगेगा कि पुण्य लगेगा? यदि कहा जाये कि जहर देने से पाप लगता है कि पुण्य, तो आप क्या कहते? अभिप्राय तो आज कहने लगे, अभिप्राय तो तुमने आज सुन लिया, भावना तो तुमने आज, सुनली लेकिन आपसे प्रश्न कर दिया जाये कि जहर देने बाले को पुण्य लगेगा कि पापा, तो आप क्या कहोंगे? पाप। वैद्य ने जहर दिया कि नहीं दिया, बोलो? कुचला को शुद्ध करके तैयार किया, सो सुदर्शन चूर्ण बना, यदि वह कुचला को शुद्ध न करता तो उसका मलेरिया जैसा ज्वर कैसे उतरता। भैया ! इसलिए ये ध्यान देना पड़ता है, कि अभिप्राय क्या है? दिया तो जहर है, लेकिन जहर जो दिया है, उद्देश्य क्या था? एक और सुनो। घर मे एक वृद्ध थे, बहुत ज्यादा बीमार थे, अस्पताल में बहुत ज्यादा खर्च हो गया, खर्च होने के बाद सब परेशान हो गये, और साथ में उसकी तकलीफ से परेशान, तो सबने योजना बनायी कि इन को अब एक जहर का इंजेक्शन दे दिया जाये। क्यों? कब तक इनका पालन पोषण करेंगे, ऐसा सोचकर के उनको जहर का इंजेक्शन दे दिया जाये, अब बताइये क्या भावना चल रही है, अभिप्राय में क्या है? और ज्योंहि जहर का इंजेक्शन लगा, क्या हुआ? वह स्वस्थ हो गया तो भैया! अभिप्राय क्या है? अभिप्राय को समझना पड़ेगा, **अभिप्राय को समझे बिना निर्णय देने वाला मूर्ख शिरोमणि कहलाता है,** इसलिए वकील सिर्फ एक पक्ष सुनता है, दूसरा वकील दूसरा पक्ष बोलता है। लेकिन जज दोनों पक्षों को सुनने के बाद सामने वाले के अभिप्राय पर विचार करता है, कि अभिप्राय क्या रहा होगा? **यदि तुमने अभिप्राय को नहीं पकड़ा, तो कभी भी आत्मा के साथ निर्णय नहीं कर पाओगे,** क्यों? आचार्य महाराज त्याग कराते हैं, और तुम्हें लगता है, महाराज तो त्याग करा रहे है, भैया ! आचार्य का अभिप्राय भोजन का त्याग नहीं है, आचार्य का अभिप्राय है, कि अभी से त्याग करोगे तो मरण के समय आकुलता नहीं जागेगी, तो निराकुलता पूर्वक मरण हो, आखरी समय कोई आकुलता न हो, इसकी तैयारी आज से

करना पड़ती है। जैसे एक सैनिक का प्रवेश होते समय ही दौड़ाया जाता है, कुदाया जाता है, नीचे ऊपर गिरना भी पड़ता है, अभिप्राय तत्काल का नहीं है, अभिप्राय भविष्य का है, कि मेरा सैनिक कठिन से कठिन परिस्थिति में जाकर भी सुरक्षित रहे। भविष्य की सुरक्षा के लिए आज थोड़ा कष्ट देना पड़ता है। भगवान कुंदकुंद ने लिखा – सुख में पाया ज्ञान दुख के आने पर नष्ट हो जाता है, इसलिए हे आत्मन्। तू दुख में ज्ञान की भावना कर आज आपने सुना पुण्य और पाप अभिप्राय पर निर्भर है। अभिप्राय निर्मल होना चाहिए, विवेक सहित होना चाहिए और सामने वाले को अपना अभिप्राय दुख पहुँचाने का न हो, तो सामने वाले के भविष्य में, नियम से सुख पहुँचे, तब तो अपना कर्म ठीक कहलायेगा।यदि अभिप्राय गलत है, तो अज्ञान पूर्वक है, तो अभिप्राय गलत है, तो दुख होगा।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

❑❑❑

परिशिष्ट–2

इष्टोपदेश पाठ

यस्य स्वयं स्वभावाप्ति, रभावे कृत्स्न कर्मण:।
तस्मै संज्ञान रूपाय, नमोस्तु परमात्मने।।1।।

योग्योपादान योगेन, दृषद: स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसम्पत्ता वात्मनोप्यात्मता मता।।2।।

वरं व्रतै: पदं दैवं, नाऽव्रतैर्वत नारकम्।
छायाऽतपस्थयोर्भेद:, प्रतिपालयतोर्महान्।।3।।

यत्र भाव: शिवं दत्ते, द्यौ: कियद्‌दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्धे किं स सीदति॥4॥

हृषीकज–मनातंकं, दीर्घ कालोपलालितम्।
नाके नाकौकसां सौख्यं, नाके नाकौकसामिव।।5।।

वासना मात्र मेवैतत्, सुखं दु:खं च देहिनाम्।
तथा ह्युद्‌वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि।।6।।

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्त: पुमान् पदार्थानां, यथा मदन कोद्रवै: ।।7।।

वपुर्गृहं धनदाराः, पुत्राः मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्य स्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते।।8।।

दिग्देशेभ्यः खगा एत्य, संवसन्ति नगे–नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे ।।9।।

विराधकः कथं हन्त्रे, जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां, स्वयं दण्डेन पात्यते ।।10 ।।

रागद्वेष द्वयीदीर्घ, नेत्राकर्षण कर्मणा।
अज्ञानात् सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भृमत्यसौ।।11।।

विपद् भव पदावर्ते, पदिके वाति वाह्यते।
यावत्–तावद् भवत्यन्याः, प्रचुराः विपदाः पुरा।।12।।

दुरर्ज्येनाऽसुरक्षेण, नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि, ज्वरवानिव सर्पिषा।।13॥

विपत्तिमात्मनो मूढः, परेषामिव नेक्षते।
दह्यमान मृगाकीर्ण, वनान्तर तरुस्थवत।।14।।

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष, हेतुं कालस्य निर्गमम्।
वांछतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम्।।15॥

त्यागाय श्रेयसे वित्त, मवित्तः संचिनोति यः।
स्व शरीरं स पंकेन, स्नास्यामीति विलिम्पति।।16।।

आरंभे तापकान् प्राप्ता, वतृप्ति प्रतिपादकान्।

अंते सुदुस्त्यजान् कामान्, कामं क: सेवते सुधी :।।17।।

भवन्ति प्राप्य यत्सङ्ग,मशुचीनि शुचीन्यपि।
स काय: सन्ततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ।।18।।

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्याऽपकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्।।19॥

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य, इत: पिण्याकखण्डकम् ।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाऽऽद्रियन्तां विवेकिन: ॥20॥

स्वसंवेदन सुव्यक्तस्, तनुमात्रोनिरत्यय:।
अत्यन्त सौख्यवानात्मा, लोकालोक विलोकन:।।21।

संयम्य करणग्राम, मेकाग्रत्वेन चेतस:।
आत्मानमात्मान् ध्यायेत, दात्मनैवात्मनि स्थिति:।।22।।

अज्ञानोपास्ति रज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानि समाश्रय:।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वच:॥23॥

परीषहाद्य विज्ञाना, दास्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्म योगेन, कर्मणामाशु निर्जरा।।24।।

कटस्य कर्त्ताहमिति, सम्बन्ध: स्याद् द्वयो र्द्वयो:।
ध्यानं ध्येयं यादत्मैव,सम्बन्ध: कीदृशस्तदा ॥25॥

बद्धयते मुच्यते जीव:, सममो निर्मम: क्रमात्।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्त्येत्।।26

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावाः, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा॥27॥

दुःख–सन्दोह–भागित्वं, संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं मनोवाक्काय कर्मभिः॥28॥

न मे मृत्युः कुतो भीति, नें मे व्याधिकुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले।।29।।

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा।।30।।

कर्म कर्म हिताबन्धि, जीवोजीव हितस्पृहा।
स्वस्वप्रभाव भूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वांछति।।31।।

परोपकृति मुत्सृज्य, स्वोपकार परो भव।
उपकुर्वन् परस्याज्ञो, दृश्यमानस्य लोकवत्।।32।।

गुरूपदेशादभ्यासात्, संवित्तेः स्वपरांतरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्ष सौख्यं निरंतरम्।।33।।

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वा, दात्मैव गुरुरात्मनः।।34।।

नाज्ञोविज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्।।35।।

अभवच्चित्तविक्षेप, एकांते तत्त्वसंस्थितिः।

अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः॥36॥

यथात्यथा समायाति, सवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।।37।।

यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति संवितौ तत्त्वमुत्तमम्॥38॥

निशामयति निःशेष, मिन्द्र जालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्म लाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते।।39।।

इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः।
निजकार्य वशात् किंचि, दुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्।।40।।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति।।41।।

किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति, योगी योगपरायणः।।42।।

यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मा, दन्यत्र स न गच्छति।।।43।।

अगच्छस्तद्विशेषाणा मनभिज्ञश्च जायते।
अज्ञातद्विशेषस्तु, बध्यते न विमुच्यते।।।44।।

परः परस्ततो दुःख– मात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्, तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।।45।।

अविद्वान पुद्गल द्रव्यं, योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोः सामीप्यं, चतुर्गतिषु मुञ्चति।।46।।

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहार बहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः, कश्चिद् योगेन योगिनः।। 47

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी, बहिर्दुःखेष्वचेतन।।48।।

अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत्।
तत् प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद्द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः॥49॥

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य, इत्यसौ तत्त्वसङ्ग्रहः।
यदन्यदुच्यते किञ्चित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः।। 50

इष्टोदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन्सजने वने वा,
मुक्तश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः।।51।।

❑❑❑

परिशिष्ट–3

आगम ग्रन्थों के संस्कृत, प्राकृत सन्दर्भ, उद्धरण

पृष्ठ क्र.	श्लोक क्रमांक
20	देव जदि गुरु पूजा सु, चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु। उववासा दिसु रत्तो, सुहोव ओगप्पगो अप्पा।।69।। (प्र.सा.)
20	विसय कसाय ओगाढो, दुस्सुदि दुच्चित्त दुट्ठ गोट्ठि जुदो। उग्गो उमग्गपरो, उवओगो जस्स सो असुहो।।151।।
21	श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः, प्रासादात् परमेष्ठिनः। इत्याहुस्तद्गुण स्तोत्रं, शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः।।२।। आप्त परीक्षा
21	भत्तीए जिणवराणं, रवीयदि जं पुव्वसंचियं कम्मं! आइरिय पसाएण विज्झा मंता य सिज्झंति।। 571 मू. आ.
22	नास्तिकत्व परिहारस्तु, शिष्टाचार प्रपालनम्। पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नः, शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः।।2।। द्र.सं.टी.
28	''आदितस्त्रिषु पीतान्त लेश्याः।'' त.सू. 4/2
31	अरहंत णमोकारं भावेण य जो कुणदि पयद मदी। सो सव्व, दुक्ख मोक्खं, पावदि आचिरेण कालेण।। 506।। मू.आ.
32	पयडी सील सहावो, जीवंगाणं अणाइ संबंधो। कणयोवले मलं वा, ताणत्तित्थं, हवे सिध्दं।।2।। कर्म. का.
35	स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै, स्वस्मात् स्वस्याविनश्वरम्। स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थ, मात्मानं परमं पदं।।25।। (स्व. सं.)

36	मैंने चरण छुये दो तेरे, तुमने हृदय छुआ। मेरे आत्म प्रदेशों पर तब, अद्‌भुत असर हुआ। तेरे गुण मुझमें प्रगटे ज्यों, सर इंदीवर हो। मेरा अंतिम मरण समाधि तेरे दर पर हो। 156।
38	हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्म परिग्रहेभ्यो विरति–र्व्रतम् ॥7/1॥
38	'हिंसा–नृतचौर्येभ्यो, मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च। पाप प्रणालिकाभ्यो, विरतिः संज्ञस्य चारित्रम्।।42॥ (र.श्रा.)
39	खेत्त जणिदं असादं, सारीरं माणसं च असुरकयं। भुंजंति जहावसरं, भवट्ठिदि चरम समयोत्ति।।197॥ का.अ.
39	बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्याऽयुषा:॥15/6॥
41	अज्ज वि तिरयणसुद्धा, अप्पज्झाए वि लहइ इंदत्तं। लोयंतियदेवत्तं, तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।77॥ (मोक्खपाहुड)
48	ज्ञानाज्ञान दर्शन–लब्ध्य–श्चतुस्त्रित्रि–पञ्च भेदाः सम्यक्त्व–चरित्र–संयमासंयमाश्च॥5/2॥(त.सू.)
54	ज्यों पोली लकडी के भीतर, कोई कीट रहे। उस लकड़ी के ओर–छोर में, इकदम आग लगे।। उसी कीट सा मैं दु:खियारा, सद्‌गुरु जलधर हो। मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो।। स.भ.(212)
55	अज्ज वि तिरयण सुद्धा, अप्पा झाए वि लहइ इंदत्तं। लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।77॥ (मोक्खपाहुड़)
66	अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं। अण्णं जं परदव्वं, सचित्ताचित्त मिस्सं वा।।20॥ (समयसार)
66	ववहारणयो भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को। ण दु णिच्छयस्य जीवो देहो य कदावि एकट्‌ठो।।27॥ (समयसार)

69	सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा। अंतरहेऊ भणिदा, दंसण मोहस्स खयपहुदी।।53॥ (नियमसार)
74	'नान्यथा मुनि भाषणम्'
74	''सुन साधु वचन, हर्षी मैना, नहीं झूठ होय मुनि के बेना।''
91	रत्नत्रय विशुद्धः सन्, पात्रस्नेही परार्थकृत्। प्रतिपालियतधर्मो हि, भवाब्धेस्तारको गुरुः।।30/2।। (क्षत्रचूडामणि)
93	यह तन नश्वर, यह धन नश्वर नश्वर यौवन है। अग्नि बोली तेरा ये धन, मेरा ईन्धन है।। पर्यायें तो नाशवान हैं, आप अनश्वर हो। मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो।।242 (स.भ.)
97	ओ देवता! हृदय में, बसता रहा जो। मैं पूजता विनय से, पुजता रहा जो॥ आशीष में सरलता निज भेजता है। मेरा विराग गुरु ही, मम देवता है॥ विराग उपदेश
98	विपत्तिमात्मनो मूढ़ः, परेषामिव नेक्षते। दह्यमान–मृगाऽऽकीर्ण, वनांतर–तरुस्थवत्॥14॥ काल अनंतों रहूँ, वहीं थिर, कोई फिकर न हो मेरा अंतिम मरण समाधि तेरे दर पर हो।
108	झुका लिये अपने चरणों में, इंद्रों के माथा। उन मुनियों के तपश्चरण की गाऊँ में गाथा।। चारित्र भक्ति (स.भ)
110	सुदपरिचिदाणुभूया सव्वस्स वि कामभोग बन्ध कहा। एयत्तस्सुवलंभो णवरिण सुलहो विहत्तस्स।।4॥ समयसार
113	पोषत तो दुख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै। दुर्जन–देह–स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै।।

113	राचन–जोग स्वरूप न याको विरचन–जोग सही है। यह तन पाय महा तप कीजे यामें सार यही है।।10॥ वैराग्य भावना
117	यत्र काये मुनेः प्रेम, ततः प्रच्याव्य देहिनम्। बुद्धया तदुत्तमे काये, योजयेत् प्रेम नश्यति।।40 (स.तं.)
117	जो लो तन से ममता है। तो लो ही तन बनता है।। जब तू तन से मोह तजे। तब ही आतम तत्त्व भजे।। वि.शा.वि.
126	आत्मानुभूतिरिति शुद्ध नयात्मिका या। ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्धवा। आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प, मेकोऽस्ति नित्यमव बोध घनः समन्तात्।। (अ.क.)13
132	क्षतिं मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शील व्रतेर्विलंघनम्। प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचार–मिहाति–सक्तताम्।।
133	सामायिक पाठ–9 येनात्माऽबुध्यतात्मैव, परत्वेनैव चापरम्। अक्षयानन्त बोधाय, तस्मै सिद्धात्मने नमः॥1॥ समाधि तंत्र
143	अर्घावतारन असि प्रहारन में, सदा समता धरन। छहढाला 6/6
145	विवरीया भिणिवेसं, परिचत्ता जोण्ह कहिय तच्चेसु। जो जुंजदि अप्पाणं, णिय भावो सो हवे जोगो।।139।।
148	णाणेण झाण सिद्धि, झाणादो होइ कम्म णिज्जरणं। णिज्जर फलं तु मोक्खं, णाणब्भासो तदोकुज्जा।। अष्ट पाहुड
153	द्रव्यकर्म मलैर्मुक्तं भावकर्म विवर्जितं। नोकर्म रहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः॥ परमानंद स्त्रोत 8

157	अज्ञान–तिमिरव्याप्ति–मपाकृत्य यथायथम्। जिनशासन माहात्म्य, प्रकाशः स्यात्प्रभावना॥18॥
159	(रत्नकरण्ड–श्रावकाचार) 'काय–वाङ्.–मनः कर्म योगः'॥1/6॥ (त.सू.)
160	मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो। अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥56॥ (द.सं)
160	चलो फिरो मत, हिलो डुलो मत बोल नहीं बोलो। कुछ न सोचो, कुछ न चाहो बस निश्चल होलो।। राग द्वेष अरु मोह करो मत, विधि आवश्यक है। ममता तजना, समता भजना ही सामायिक है।। भक्तिभारती (प्रतिक्रमणं)
161	एको मे सासदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो। सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा॥102॥ (नियमसार)
162	वैराग्य तत्त्व विज्ञानं, निर्ग्रन्थश्च जितेन्द्रियः। परीषहजयश्चेति, सामग्री ध्यान जन्मनः। (तत्त्वानुशासन)
164	बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो, नित्यं शिवं वाञ्छति नाऽस्य लाभः। तथापि बालो भय–काम–वश्यो, वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः॥34॥(स्वम्भू स्तोत्रम्)
168	उपयोगो लक्षणम्॥ (2 अ. 8 सू)
184	राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठः, पापे पापाः खले खालाः। राजानमनुवर्त्न्ते, यथा राजा तथा प्रजाः।। (1) व्यास प्रणीत परस्परोपग्रहो जीवानाम्
198	पणतीससोलछ्प्पण चदुदुगमेगं च जवहज्झाएह। परमेटिठ वाचयाणं अण्णं च गुरुवएसेण।।49।।
201	अपमानादयस्तस्य, विक्षेपो यस्य चेतसः। नापमानादयस्तस्य, न क्षेपो यस्य चेतसः॥38॥ (समाधितंत्र)

201	खम्मामि सव्व–जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे। मित्ती मे सव्व भूदेसु, वैरं मज्झं ण केण वि॥3॥ (श्र. प्र.)
205	समता सर्व–भूतेषु, संयमः शुभ – भावना। आर्त्त–रौद्र–परित्याग–स्तद्धि सामायिकं मतं॥5॥
205	खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे। मित्ती मे सव्व भूदेसु, वैरं मज्झं ण केण वि॥3॥(श्र.प्र.)
216	सुदपरिचिदाणुभूया, सव्वस्स वि कामभोगबन्धकहा। एयत्तस्सुवलंभो, णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥4॥ समयसार
226	तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छे – त्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्। येनाऽविद्यामयं रूपं, त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्॥53॥ (समाधितंत्र)
249	मनोज्ञाऽमनोज्ञेन्द्रिय–विषय–राग–द्वेष–वर्जनानि पञ्च ॥8/7॥ (त.सू.)
258	खेतों में हरियाली होवे, घर–घर खुशहाली। रक्षाबंधन पर्व दशहरा, घर–घर दीवाली॥ यही कामना यही, भावना, सदा निरन्तर हो। मेरा अंतिम मरण समाधि तेरे दर पर हो॥ (स.भ) 80
269	ऐसे मिथ्यादृग ज्ञान चरण, वश भ्रमत भरत दु:ख जन्ममरण। तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान॥1॥ 2 (ढाल)
275	स्मयेन योऽन्यानत्येति, धर्मस्थान गर्विताशयः। सोऽत्येति धर्ममात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्बिना (26)॥
276	''चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो'' मोहक्खोह विहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो॥ प्र.सा. 7

❑❑❑